50

ॐ

श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी विधान



राजमल पवैया

तारादेवी पवैया प्रकाशन का अध्यात्म सागर की विशिष्ट शीतल तरंगों से दोलायमान आनंदामृत से भरपूर एक गरिमामयी श्रेष्ठ प्रकाशन

ॐ

तारादेवी पवैया ग्रंथमाला का इक्यावनवां पुष्प

श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी विधान

राजमल पवैया

संपादक

श्री डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री नीमच

अध्यक्ष अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद

प्रकाशक

भरत पवैया एम. काम. एल. एल. बी.

संयोजक

तारादेवी पवैया ग्रंथमाला

४४ इब्राहीमपुरा भोपाल - ४६२ ००१

प्रथम आवृत्ति	भारत की स्वतंत्रता की ५० वीं स्वर्ण जंयती के शुभ अवसर पर प्रकाशित १५-८-९७	न्योछावर **४०/-**

ॐ

श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी विधान

श्री भट्टारक ज्ञानभूषण के ग्रंथ पर आधारित

श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी विधान के पश्चात् आपके आशीर्वाद से

भावी प्रकाशन

१. **श्री नियमसार कलश विधान**
२. **कसाय पाहुड विधान**
३. **आत्मानुशासन विधान**
४. **तत्त्वार्थ सार विधान**
५. **ज्ञानार्णव विधान**
६. **श्री पंचबालयति विधान**
७. **कर्म दहन विधान**
८. **बारस अणुबेक्खा विधान**

संयोजक

भरत पवैया

दूरभाष	तारादेवी पवैया प्रकाशन	४४ इब्राहीमपुरा
५३१३०९	भोपाल	४६२००१

विनम्र निवेदन

विक्रम पंद्रहवी शताब्दी में हुए आचार्य भट्टारक ज्ञानभूषण जी महाराज द्वारा रचित महान आध्यात्मिक ग्रंथ श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी पर आधारित यह तत्त्वज्ञान तरंगिणी विधान आपके कर कमलों में प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता सहित निर्भारता प्रतीत हो रही है। एक बड़ा कार्य सहज ही पूरा हो गया।

संपादन के लिए श्री डा. देवेन्द्र कुमरा जी शास्त्री नीमच का आभारी हूं। मुझे उनका मार्ग दर्शन सदैव मिलता रहता है ।

इसके बीजाक्षर एवं ध्यानसूत्र के लिए फलटण (महाराष्ट्र) की क्षुल्लिका द्वय क्षुल्लिका श्री सुशीलमति जी एवं क्षुल्लिका श्री सुव्रता जी का कृतज्ञ हूँ। उनकी मुझपर सदैव महती कृपा रहती है।

सुन्दर कंपोजिंग के लिए शुभ श्री आफ्सेट के श्री नीरज जैन एवं मनोहर मुद्रण के लिए अंजना ऑफ्सेट के स्वामी श्री योगेश सिंहल को धन्यवाद है। तथा भारत बाइन्डर्स के मालिक जनाब हूमायूँ भाई ग्रन्थमाला की जिल्दों में सरेस का प्रयोग न करके सिन्थेटिक फेवीकोल का प्रयोग करते हैं। इसके लिये मैं उनका तहेदिल से शुक्रिया अदा करता हूँ ।

अपने सभी संरक्षकों का उनके योगदान के लिए आभारी हूं ।

भूलों के लिए क्षमाप्रार्थी

राजमल पवैया

४४ इब्रहीमपुरा
भोपाल ४६२ ००१
फोन ५३१३०९

भारत की स्वतंत्रता की पचासवी वर्षगांठ पर
१५-८-९७

ॐ

तारादेवी पवैया ग्रंथमाला

संरक्षक सूची

प्रधान संरक्षक

११०१/- परम आदरणीय महामहिम राष्ट्रपति डा. शंकर दयाल जी शर्मा
राष्ट्रपति भवन नई दिल्ली

११०१/- भारत की प्रथम महिला परम आदरणीय श्री. सौ. विमला शर्मा ध. प.
राष्ट्रपति डा. शंकर दयाल जी शर्मा, राष्ट्रपति भवन नई दिल्ली

संरक्षक

२१,०००/- श्री स्व. माते श्वरी सुवा बाई ध. प. स्व रतन लाल जी पहाड़िया पीसागंन
की पुण्य स्मृति में श्री रिखब चंद जी नेमी चंद्र जी पहाड़िया परिवार

१०,०००/- श्री दि. जैन मुमुक्षु मंडल, झबेरी बाजार, मुंबई

५,०००/- श्री पूज्य कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली

११०१/- श्री डा. गौरीशंकरजी शास्त्री एम.ए. (ट्रिपल) सप्ततीर्थ पी.एच.डी. अध्यक्ष
म.प्र.स्वतंत्रता संग्राम सैनिक संघ भोपाल

११०१/- श्री सौ. डा. राजकुमारी देवी ध.प. श्री डा. गौरीशंकरजी शास्त्री भोपाल

११०१/- बाल. ब्र. पद्मश्री सुमतिबेन शहा संस्थापक श्राविका संस्थान सोलापुर
द्वारा बा.ब्र. विद्युल्लता शहा सोलापुर

२५००/- स्व. बालचन्दजी, अशोक नगर द्वारा चौधरी फूलचन्दजी, न्यू मूंबई

१६००/- श्री इन्द्रध्वज मण्डल विधान एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर, तलोद

११००/- श्रीमती बसन्ती देवी धर्मपत्नी स्व. डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन, भिण्ड

११००/- कु, लिटिल (पल्लवी) सुपुत्री पूर्णिमा धर्मपत्नी शैलेन्द्र कुमार जैन, भिण्ड

११००/- श्रीमती सुहागबाई धर्मपत्नी बदामीलाल जैन, भोपाल

११००/- श्री मोहनलाल जैन म. प्र. ट्रांसपोर्ट, भोपाल

११००/- श्री हुकुमचन्द सुमतप्रकाश जैन, भोपाल

११००/- श्रीमती सुशील शास्त्री धर्मपत्नी श्री के. शास्त्री, नई दिल्ली

११००/- सौ. सुशीलादेवी धर्मपत्नी ताराचन्द जैन, इटावा

११००/- श्री जैन युवा फेडरेशन मुरार से प्राप्त सम्मान राशि

११००/- सौ. शशिप्रभा धर्मपत्नी महेशचन्द जैन, फिरोजाबाद
११००/- सौ. प्यारीबाई धर्मपत्नी बाबूलाल जी विनोद, भोपाल
११००/- स्व. परमेश्वरी देवी धर्मपत्नी सत्यप्रकाशजी गुप्ता, भोपाल
११००/- सौ. स्नेहलता धर्मपत्नी चन्द्रप्रकाश सोनी, इन्दौर
११००/- सौ. रानी देवी धर्मपत्नी सुरेशचन्द पाड्या, इन्दौर
११००/- श्री दि. जैन महिला मंडलं, भोपाल से प्राप्त सम्मान राशि
१०००/- श्री दि. जैन स्वाध्याय मंदिर, राजकोट
१०००/- देवलाली कवि सम्मेलन से प्राप्त सम्मान राशि
१०००/- सौ. निर्मला धर्मपत्नी भरत पवैया, भोपाल
१०००/- श्री भरत पवैया, भोपाल
१०००/- श्री उपेन्द्र कुमार नगेन्द्र कुमार पवैया, भोपाल
१०००/- श्री चौधरी फूलचन्दजी, वाशी न्यू मूंबई
१०००/- श्री कुन्दकुन्द कहान स्मृति सभागृह, आगरा
१०००/- श्री उम्मेदमल कमलकुमारजी बड़जात्या, दादर मूंबई
१०००/- श्री हुकुमचन्दजी सुमेरचन्दजी, अशोकनगर
१०००/- सौ. राजबाई धर्मपत्नी राजमल जी लीडर, भोपाल
१०००/- सौ. सुधा धर्मपत्नी महेन्द्रकुमार जी अलंकार लाज, भोपाल
१०००/- सौ. मधु धर्मपत्नी जितेन्द्र कुमार जी सराफ, भोपाल
११०१/- सौ. कमलादेवी धर्मपत्नी खेमचन्द जैन सराफ, भिण्ड
११०१/- सौ. मधु धर्मपत्नी डां. सत्यप्रकाश जैन, नई दिल्ली
५५५५/- श्री परमागम दि. जैन मंदिर ट्रस्ट, सोनागिर
११००/- सौ. जिनेन्द्रमाला धर्मपत्नी हेमचन्दजी जैन, सहारनपुर
११००/- सौ. श्री कान्तादेवी ध. प. शान्तिप्रसाद जैन, दिल्ली (राजवैद्य एंड संस)
११००/- सौ. रतनबाई धर्मपत्नी श्री सोहनलालजी जयपुर प्रिन्टर्स, जयपुर
११००/- सौ. वैजयंती देवी धर्मपत्नी बाबूलालजी पांड्या लाला परिवार, इन्दौर
११००/- पूज्य कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली
२५०१/- सौ. लाभुबेन ध. प. श्री अनिल कामदार, दादर मुंबई
१०००१/- पू. कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली
११०१/- सौ. माणिकबाई धर्मपत्नी फूलचंदजी झांझरी, उज्जैन
११०१/- सौ. सुनीता ध. प. विनय कुमार जी जैन ज्वेलर्स, देहरादून

११००/- सौ. अनीता ध. प. मोहित कुमार जी मेरठ
११००/- सौ. गजराबाई ध. प. चौधरी फूलचंद्रजी, न्यु मुंबई
११००/- सौ. स्व. तुलसाबाई ध. प. स्व. बालचंद्रजी अशोक नगर
११०१/- सौ. प्रेमबाई ध. प. शान्तिलाल जी खिमलासा
११०१/- सौ. स्नेहलता ध. प. देवेन्द्रकुमार जी बड़कुल अरविन्द कटपीस, भोपाल
११०१/- सौ. शान्तिबाई ध. प. श्री श्रीकमलजी एडवोकेट, भोपाल
११०१/- सौ. रेशमबाई ध. प. श्रीछगनलाल जी मदन मेडिको, भोपाल
११०१/- श्रीमती जैनमती ध. प. स्व. मदनलालजी भोपाल
११०१/- सौ. कमलाबाई ध. प. श्री माणिकचंद जी पाटोदी, लुहारदा
११०१/- सौ. तेजकुंवर बाई ध. प. श्री उम्मेदमल जी बड़जात्या दादर, मुंबई
१००१/- श्री दि. जैन मुमुक्षु मंडल नवरंग पुरा अहमदाबाद
११०१/- सौ. कोकिला बेन ध. प. श्री हिम्मतलाल शाह कहान नगर दादर, मुंबई
११०१/- श्री सुरेशचंदजी सुनीलकुमारजी, बेंगलोर
१०००/- श्री पूज्य कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली
११०१/- सौ. सविता जैन एम. ए. ध.प. श्री उपेन्द्रकुमार पवैया, भोपाल
११०१/- सौ. सुशीलादेवी ध. प. श्री चंद्र जैन सुभाष कटपीस, भोपाल
१००१/- श्री सौ. चंद्रप्रभा, ध. प. डां. प्रेमचंदजी जैन ४ अरविन्द मार्ग, देहरादून
११०१/- श्री आचार्य कुन्दकुन्द साहित्य प्रकाशन समिति, गुना
११०१/- सौ. शान्तिदेवी ध. प. श्री बाबूलालजी (बाबूलाल प्रकाश चंद्र), गुना
११०१/- सौ. उषादेवी ध. प. श्री राजकुमारजी (बाबूलाल प्रकाश चंद्र), गुना
११०१/- सौ. अशरफीदेवी ध. प. ज्ञानचंदजी धरनावादबाले, गुना
११०१/- सौ. पद्मादेवी ध. प. श्री डां. प्रेमचंद जी जैन, गुना
११०१/- सौ. धनकुमारजी विजयकुमारजी, गुना
११०१/- सौ. आशादेवी ध. प. अरविन्द कुमारजी, फिरोजाबाद
११०१/- सौ. श्री ज्ञानचंदजी मनोज कटपीस, भोपाल
११०१/- सौ. रजनीदेवी ध. प. श्री नरेन्द्र कुमारजी जियाजी सूटिंग, ग्वालियर
२००१/- सौ. मंजुला बेन ध. प. श्री मणिलालजी, दादर मुंबई
११०१/- स्व. सुआबाई मातुश्री रिखवचंद्र नेमीचंद पहाड़िया, पीसांगन (अजमेर)
११०१/- सौ. तुलसाबाई ध. प. श्री नवलचंदजी जैन, भोपाल
११०१/- श्री नवल कुमारी ध. प. स्व बाबूलालजी सोगानी, भोपाल

११०१/- श्रीमती कमलश्री बाई ध. प. स्व डालचंदजी जैन, भोपाल
११०१/- श्री परमागम मंदिर ट्रस्ट, सोनागिर
११०१/- श्री दि. जैन मुमुक्षु मंडल, हिम्मत नगर
११०१/- सौ. मंजुला ध. प. शान्तिलाल गांधी, मैनेजर, सेन्ट्रलबैंक, जोरहाट
११०१/- श्रीमती सुखवती बाई ध.प. स्व. श्री बाबूलाल जी ठेकेदार, भोपाल
११०१/- स्व. श्रीमतीबाई ध. प. कालूरामजी, सत्यम टेक्सटाइल, भोपाल
११०१/- सौ. शकुन्तलादेवी ध. प. रतनलाल श्री सोगानी, भोपाल
२५००/- सौ. रमाबेन धर्मपत्नी सुमन भाई माणेकचंद्र दोशी, राजकोट
११००/- सौ. मीनादेवी एडवोकेट धर्मपत्नी डां. राजेन्द्र भारिल्ल, भोपाल
१०००/- श्रीमती पुष्पा पाटोदी, मल्हारगंज, इन्दौर
११००/- श्री जेठाभाई एच. दोशी सेबिन ब्रदर्स, सिकंदराबाद
११००/- सौ. सुशीलाबाई धर्मपत्नी लक्ष्मीचंद जैन विकास आटो, भोपाल
११००/- सौ. मीना जैन धर्मपत्नी राजकुमार जैन सेन्ट्रल इन्डिया बोर्ड एन्ड पेपर मिल, भोपाल
११००/- सौ. रजनी जैन धर्मपत्नी अरविन्द कुमार जैन अनुराग ट्रेडर्स, भोपाल
१०००/- स्व. गुलाब बाई धर्मपत्नी स्व. पातीराम जी जैन, भोपाल
१०००/- श्रीमती मातेश्वेरी चौधरी मनोज कुमार जैन माटुन्गा, मुबंई
११००/- श्री कोकिलाबेन पंकजकुमार पारिख दादर, मुंबई
११००/- स्व. श्री कंकुबेन रिखवदास जी द्वारा शान्तिलालजी दादर मुंबई
११००/- श्री हीराभाई चिमनलाल शाह प्रदीप सेल्स पाय धुनी मुबई
११००/- श्रीमती दक्षाबेन विनयदक्ष चेरिटेबल ट्रस्ट दादर, मुंबई
१०००/- सौ. फैन्सीबाई धर्मपत्नी सेसमलजी कात्रज, पूना
११००/- स्व. सौ. मिश्रीबाई धर्मपत्नी राजमल जी फर्म एस रतनलाल, भोपाल
११००/- सौ. हीरामणी धर्मपत्नी श्री मांगीलालजी जैन , भोपाल
११०१/- सौ. पूनम जैन धर्मपत्नी श्री देवेन्द्र कुमार जैन, सहारनपुर
२१०१/- श्री पंडित कैलाशचंद जी कुन्द-कुन्द कहान स्वाध्यायमंदिर देहरादून
११०१/- सौ. मनोरमादेवी धर्मपत्नी श्री जयकुमार जी बज कोहेफिजा, भोपाल
११०१/- श्री भवुतमलजी भंडारी, बेंगलोर
११०१/- श्री फूलचंदजी विमलचंद जी झांझरी, उज्जैन
१११११/- स्व. श्री जयकुमार जी की स्मृति में मेसर्स मनीराम मुंशी लाल उद्योग समूह, फिरोजाबाद

११०१/- सौ. अनीता धर्मपत्नी राजकुमार जी, भोपाल
११०१/- सौ. मीनादेवी धर्मपत्नी चन्द्रप्रकाश जी, इटावा
११०१/- सौ. मोतीरानी धर्मपत्नी कैलाश चंद्र जी , भिण्ड
११०१/- सौ. ब्रजेश धर्मपत्नी अभिनंदन प्रसाद जी, सहारनपुर
२१०१/- सौ. रत्नप्रभा धर्मपत्नी मोतीचंदजी लुहाडिया, जोधपुर
५१११/- श्री केशरीचंद जी पूनमचंद जी सेठी ट्रस्ट, नई दिल्ली
११०१/- सौ. मीनादेवी धर्मपत्नी केशवदेव जी, कानपुर
११०१/- श्री श्यामलाल जी विजयर्गीय पी. वी. ज्वेलर्स, ग्वालियर
११०१/- सौ. मधु धर्मपत्नी विनोद कुमार जी, ग्वालियर
११०१/- स्व. चमेलीदेवी धर्मपत्नी निर्मल कुमारजी एडवोकेट, ग्वालियर
११०१/- स्व. रघुवरदयाल जी की स्मृति में खेमचंद जी सत्यप्रकाश जी, भिण्ड
११०१/- चि. अंकुर पुत्र सौ. सुधा ध.प.सुनील कुमार जैन, भिण्ड
११०१/- सौ. मायादेवी धर्मपत्नी सुभाष कुमार जी, भिण्ड
११०१/- सौ. विमलादेवी धर्मपत्नी उत्तम चंद जी बरोही वाले , भिण्ड
११०१/- स्व. श्री मूलचंद भाई जैचंद भाई भू. पूर्व मंत्री तारंगा जी
११०१/- श्री दोसी बसंतलाल जी मूलचंद जी , मुंबई
११०१/- श्री कनुभाई एम. दोसी, मुंबई
११०१/- श्रीमती लीलावती बेन छोटालाल मेहता, मुंबई
११०१/- सौ निर्मलादेवी धर्मपत्नी छोटेलालजी एन. पाण्डे, मुंबई
११०१/- श्री शान्तिलाल जी रिखवदास जी दादर, मुंबई
१११११/- स्व. मातेश्वरी सुवाबाई धर्मपत्नी स्व. रतनलालजी, पीसांगन की स्मृति में श्री रिखवचंदजी नेमीचंदजी पहाड़िया परिवार द्वारा
११०१/- कुन्द कुन्द स्मृति भवन आगरा
२५०१/- श्री शान्तिनाथ दि. जैन ट्रस्ट केकड़ी द्वारा श्री मोहनलाल कटारिया
११०१/- श्री दि. जैन समाज, भीलवाड़ा
११०१/- श्री रामस्वरूपजी महावीर प्रसाद जी अग्रवाल, केकड़ी
११०१/- श्री लादूराम श्री ताराचंदजी अग्रवाल, केकड़ी
२१०१/- सौ. चमेली देवी धर्मपत्नी शिखरचंद जी सर्राफ , विदिशा
११०१/- सौ. सुषमादेवी धर्मपत्नी श्री डा. आर. के. जैन, विदिशा
११०१/- श्रीमती बदामी बाई धर्मपत्नी स्व. श्री बाबूलाल जी (५०१), भोपाल

११०१/-	स्व. शक्कर बाई धर्मपत्नी स्व. बिहारीलाल जी, बैरसिया
११०१/-	स्व. लक्ष्मीबाई धर्मपत्नी स्व. बंशीलाल जी, भोपाल
११०१/-	सौ. रतनबाई ध.प. नन्नूमल जी भंडारी, भोपाल
११०१/-	सुश्री बा .ब्र. पुष्पा बेन झांझरी, उज्जैन
११०१/-	श्रीमती ताराबाई झांझरी. ध.प. स्व. श्री राजमल जी झांझरी, गौतमपुरा
५००१/-	श्री दिगम्बर जैन मंदिर, लशकरी गोठ, गोराकुन्ड, इन्दौर
११०१/-	सौ. चंदन बाला ध.प. श्री प्रकाशचंद जी भंडारी, भोपाल
११०१/-	सौ. राजकुमारी ध.प. श्री महावीर प्रसादजी सरावगी, कलकत्ता
११०१/-	सौ. स्नेह प्रभा ध.प. श्री सुगन चंद जी मानोरिया, अशोकनगर
२५०१/-	श्री भरतभाई खेमचंद जेठालाल शेठ राजकोट
११०१/-	ब्र. सुशीला श्री, ब्र. कंचनबेन, ब्र. पुष्पा बेन, सोनगढ
११०१/-	सौ. विमलादेवी ध.प. श्री बाबूलालजी, हाटपीपलावाले, भोपाल
११०१/-	श्रीमती विमलादेवी ध.प. स्व. श्री भगवानदासजी भंडारी, गंजबासोदा
११०१/-	स्व. कुमारी शिखा सुपुत्री श्री नीलकमल बागमलजी पवैया, भोपाल
११०१/-	सौ. स्नेहलता ध.प. श्री जैनबहादुर जैन, कानपुर
२१०१/-	सौ. कंचनबाई ध.प. श्री सौभाग्यमलजी पाटनी, बंबई
२५०१/-	श्री ताराबाई मातेश्वरी श्री मांगीलालजी पदमचंदजी पहाडिया,इन्दौर
११०१/-	सौ. शशिबाला ध.प. श्री सतीश कुमारजी सुपुत्र श्री पन्नालालजी, भोपाल
११०१/-	श्री आनंद कुमारजी देवेन्द्र कुमारजी पाटनी, इन्दौर
११०१/-	सौ. प्रभादेवी ध.प. श्री गुलाबचंदजी जैन, बेगमगंज
११०१/-	श्री समरतबेन ध.प. श्री चुन्नीलाल रायचंद मेहता, फतेपुर
११०१/-	श्री ताराबेन ध.प. स्व. धर्मरत्न बाबुभाई चुन्नीलाल मेहता, फतेपुर
११०१/-	कुमारी समता सुपुत्री श्री आशादेवी पांड्या सुपुत्री स्व. श्री किशनलालजी पांड्या, इन्दौर
११०१/-	स्व. श्री राजकृष्णजी जैन (श्री प्रेमचंद्र जी जैन के पिता जी) दिल्ली
११०१/-	स्व. श्रीमती कृष्णादेवी ध. प. श्री स्व. राजकृष्ण जी
११०१/-	स्व. श्रीमती पदमावती ध. प. श्री प्रेमचन्द्रजी जैन अहिंसा मंदिर (दिल्ली)
११०१/-	सौ. श्रीमती चन्द्रा ध.प. श्री उमेश चन्द्र जी जैन द्वारा श्री संजीवकुमार राजीव कुमारजी, भोपाल.
११०१/-	सौ. पाना बाई ध. प. श्री मोहल लाल जी सेठी गौहाटी (आसाम)

३००१/-	श्रीमती रत्नम्मा देवी ध. प. स्व. श्री रत्न वर्मा हैगडे मातेश्वरी राजर्षि श्री वीरेन्द्र हैगडे धर्माधिकारी धर्मस्थल (कर्नाटक)
१५००/-	आकाशवाणी एवं दूरदर्शन केन्द्र, भोपाल से प्राप्त पारिश्रमिक
११०१/-	सौ. कलाबेन श्री हसमुख भाई वोरा, मुंबई
११०१/-	श्री स्वर्गीय जसवंती बेन श्री प्रवीण भाई वोरा, मुंबई
११०१/-	सौ. पुष्पाबेन कान्तिभाई मोटाणी, मुंबई
११०१/-	पूज्य श्री स्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली ६४ ऋद्धि विधान के समय कवि सम्मेलन में
११०१/-	सौ. वसुमति बेन श्री मुकुन्दभाई खारा, मुंबई
११०१/-	श्री कटोरी बाई ध.प. स्व. जयकुमार जी जैन मातेश्वरी ब्रिगेडियर श्री एम.के.जैन,दिल्ली
११०१/-	स्वर्गीय पानाबाई ध.प. सत्यनारायण सरावगी मातेश्वरी राजूभाई, कानपुर
११०१/-	सौ. राजकुमारी ध.प. श्री कोमलचन्दजी गोधा जयपुर
२१०१/	सौ. रतनबाई ध.प. श्री सोहनलालजी जयपुर प्रिन्टर्स, जयपुर
११०१/-	प्रदीप सेल्स कारपोरेशन पायधुनी,मुंबई
११०१/-	सौ.कमलाबेन हिराभाई शाह, प्रदीप सेल्स पायधुनी,मुंबई
११०१/-	श्री दिलीप भाई प्रदीप सेल्स कार्पोरेशन, मुंबई
११००/-	प्रदीपभाई प्रदीप सेल्स कार्पोरेशन पायधुनी, मुंबई
११०१/-	सौ. कुसुमबाई पाटनी ध.प. श्री शान्तिलालजी पाटनी, छिंदवाड़ा
११०१/-	सौ. मंजु पाटनी ध.प. श्री संतोषकुमार पाटनी बासिम
११०१/-	स्व. कुसुम देवी ध. प. स्व. श्री कोमल चंद जी की स्मृति में अजय राज जी जैन भोपाल
११०१/-	सौ. इन्द्राणी देवी ध. प. श्री बागमल जी पवैया भोपाल
११०१/-	सौ. शकुन्तला ध. प. श्री धीरेन्द्र कुमार जी जैन भोपाल
११०१/-	स्व. पुतली बाई ध. प. स्व दीपचंद जी पांड्या (अतुल पब्लिसिटी भोपाल)
११०१/-	श्री झंकारी भाई खेमराज बाफना चेरीटेबिल ट्रस्ट खैरागढ
१११०१/-	सौ. कमल प्रभा ध. प. श्री मानिक चंद जी लुहाडिया नई दिल्ली
१११०१/-	स्व. श्री उमरावदेवी ध. प. श्री जगनमल जी सेठी इम्फाल
११०१/-	सौ. आभा देवी ध. प. प्रकाश चंद जी जैन रायपुर
११०१/-	सौ. कमला देवी ध. प. श्री राधेश्याम जी अग्रवाल भोपाल
११०१/-	श्री अमर सिंह जी अमरेश समस्तीपुर (बिहार)
२५०१/-	श्रीमती रतन बाई ध. प. स्व. श्री केशरी मल जी पांड्या इन्दौर

११०१/- सौ. मधु ध. प. श्री वीरेन्द्र कुमार जी जैन नई दिल्ली
२१०१/- जैन जाग्रति महिला मंडल गुना (म. प्र.)
११०१/- सौ. ज्योति ध. प. श्री सुरेश चंद जी जैन पारस स्टोर्स गुना
११०१/- श्री शकुन्तला देवी ध. प. स्व. श्री दरबारी लाल जी जैन दिल्ली
११०१/- श्री शान्तिदेवी ध.प. स्व. पांडे मूलचंदजी जैन इटावा मातेश्वरी श्री वीरेन्द्र कुमार सिलचर, नरेन्द्र कुमार जी भोपाल
११०१/- सौ. सुमनेश ध.प. श्री वीरेन्द्रकुमार जैन सिलचर (आसाम)
११००१/- श्रीमंत सेठ शितावराय जी लक्ष्मी चंद जी साहित्योद्धारक फंड विदिशा
११०१/- श्री सौ. किरण चौधरी ध. प. श्री महेन्द्र कुमार जी चौधरी भोपाल
११०१/- श्री सौ. शशि ध. प. श्री आदित्य रंजन जैन राज ट्रेक्टर्स बीना
११०१/- श्री सौ. चमेली बाई ध. प. श्री कस्तूर चंद जी जैन सिलवानी वाले भोपाल
११०१/- सौ. कमलेश ध. प. गेंदालाल जी सराफ चंदेरी
११०१/- श्री रामप्रसाद जी हजारीलाल जी भंडारी भोपाल
११०१/- श्री विश्वंभर दास जी महावीर प्रसाद जी जैन सराफ दिल्ली
५००१/- श्री फूलचंद जी विमलचंद जी झांझरी उज्जैन
११०१/- श्री दि. जैन शिक्षण समिति, रामाशाह मंदिर, मल्हारगंज, इन्दौर
११०१/- सौ. अंजु देवी ध. प. अजय सोगानीमोटर हाऊस भोपाल
११०१/- स्व. शान्ताबेन ध.प. श्री शान्ति भाई जवेरी मुंबई
११०१/- श्री बसंती बाई ध.प. स्व. श्री हरख चंद जी छावड़ा मुंबई
११०१/- सौ. शशि ध.प. श्री अशोककुमारजी छावड़ा सूरत
११०१/- स्व. कान्ताबेन मोतीलालजी पारिख की स्मृति में प्र. रमा बेन पारिख देवलाली
११०१/- श्री मदन लालजी अनिल कुमारजी जैन, अनिल बेंगल्स, भोपाल
११०१/- श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री मानिक चंद जी जैन गुड़ बाले, भोपाल
११०१/- श्री जिन प्रभावना ट्रस्ट प्रो. सुमत प्रकाश जी जैन भोपाल
१११११/- श्री जैन स्वाध्याय मंडल पंढरपुर
११००१/- श्री केशरी चंद्र जी पूनम चंद्र जी सेठी ट्रस्ट, नई दिल्ली
११०१/- सौ. प्रतिभा देवी ध. प. श्री मनोज कुमार जैन मुजफ्फर नगर
११०१/- सौ. ममता देवी ध. फ. श्री आदीश कुमार जी पीरागढ़ी नई दिल्ली
११०१/- प्रमिला देवी ध. प. श्री मांगीलाल जी पहाड़िया इन्दौर

११०१/- श्री गोकल चंद जी चुन्नी लाल जी की स्मृति में सुपुत्र श्री मांगी लाल जी पहाड़िया इन्दौर
११०१/- सौ. सुधा ध. प. श्री प्रवीण कुमार जी लुहाड़िया नई दिल्ली
११०१/- सौ. पुष्पादेवी ध. प. श्री सतीश कुमार जी जैन नई दिल्ली
११०१/- सौ. रमा जैन ध. प. श्री दृगेन्द्र कुमार जी नई दिल्ली
११०१/- अशोक कुमार जी सुपुत्र श्री दरबारीमल जी नई दिल्ली
११०१/- श्री स्व. मेमोदेवी ध. प. श्री अजित प्रसाद जी पीतल वाले नई दिल्ली
११०१/- सौ. कौशल्या देवी ध. प. श्री इन्द्र सेन जी शाहदरा दिल्ली
११०१/- स्व. निर्मला देवी ध. प. श्री पृथ्वी चंद्र जी जैन नई दिल्ली
११०१/- सौ. विमला देवी ध प. श्री विमल कुमार जी सेठी इन्दौर
११०१/- सौ. कमला देवी ध. प. वाणी भूषण पं. ज्ञान चंद्र जी विदिशा
११०१/- श्री कंचन बाई ध. प. स्व. हुकुम चंद्र जी पाटनी मातेश्वरी आनंद कुमार जी देवेन्द्र कुमार जी इन्दौर
११०१/- श्री स्व. सुन्दर बाई ध. प. श्री छोटेलाल जी पांडे झांसी की स्मृति में सुपुत्र श्री सुरेन्द्र कुमार जी
११०१/- सिंघई श्री सुन्दरलालजी सुभाष ट्रान्सपोर्ट प्रा. लि. भोपाल
११०१/ स्व. पंडित आनंदीलालजी जैन विदिशा
११०१/- सौ. ताराबाई ध. प. श्री राजमल जी मिट्ठूलाल जी नरपत्या, भोपाल
११०१/- सौ. कुसुम जैन ध. प. प्रो. श्री महेश चन्द्र जी जैन गोहद
११०१/- सौ. आशा देवी ध. प. श्री पी. सी. जैन प्रबंधक स्टेट बैंक भोपाल
११०१/- सौ. धनश्री बाई ध. प. श्री कपूर चंद्र जी जैन भोपाल (डेडी)
११०१/- सौ. सावित्री बाई ध. प. चौधरी सुभाष चंद्र जी जैन भोपाल
११०१/- स्व. श्री आभा देवी ध. प. श्री सुरेन्द्र कुमार जी सौगानी भोपाल
११०१/- सौ. श्री चंद्रकान्ता ध. प. श्री महेन्द्र कुमार जी जैन सामन सुखा भोपाल
११०१/- सौ. सविता देवी ध.प. श्री अरुणकुमारजी जैन, भोपाल
११०१/- सौ. चम्पा देवी ध. प. श्री लक्ष्मी चंद्र जी महावीर टेन्ट हाऊस, भोपाल
११०१/- सौ. वीणा देवी ध. प. श्री राजेन्द्र कुमार जी जैन आम्रपाली भोपाल
११०१/- सौ. विद्यादेवी ध. प. श्री देवेन्द्र कुमार जी सौगानी भोपाल
११०१/- श्री देवेन्द्र कुमार जी पाटनी मल्हारगंज इन्दौर
११०१/- सौ. शकुन्तला देवी ध. प. श्री पदम चंद्र जी भोंच जयपुर
११०१/- सौ. भंवरी देवी ध. प. श्री घीसालाल जी छावड़ा जयपुर

११०१/-	सौ. कंचन देवी ध. प. श्री जुगराज जी कासलीवाल कलकत्ता
११०१/-	सौ. शान्ति देवी ध. प. पारसमल जी पाटनी अजमेर
११०१/-	सौ. गुलाब देवी ध.प. श्री लक्ष्मी नारायण जी जैन शिवसागर आसाम
११०१/-	सौ. शान्ति देवी ध. प. स्व. श्री सेठ मुन्शीलाल जी फिरोजाबाद
११०१/-	सौ. शकुन्तला देवी ध. प. स्व. श्री जय कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/-	सौ. सुलोचना देवी ध. प. श्री सुरेशचंद्र जी जैन फिरोजाबाद
११०१/-	सौ. सुषमा देवी ध. प. श्री प्रमोद कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/-	सौ. राजमती देवी ध.. प. श्री उग्रसेन जी सर्राफ फिरोजाबाद
११०१/-	सौ. निशादेवी ध. प. श्री प्रदीप कुमार जी सर्राफ फिरोजाबाद
११०१/-	सौ. विमला देवी ध. प. श्री चंद्रसेन जी जैन बड़ामुहल्ला फिरोजाबाद
११११/-	सौ. सरोज देवी ध. प. श्री कोमल चंद्र जैन बामौरा वाले भोपाल
११११/-	श्री पूनम चंद्र जी वरदीचंद्र जी पाटनी पारमार्थिक ट्रस्ट रतलाम
११११/-	सौ. विमला देवी ध. प. स्व. श्री सोहन लाल जी अग्रवाल रतलाम
११११/-	श्री गोपी जी लखमी चंद्र जी अजमेरा रतलाम
११११/-	स्व. कंचन बाई जुहारमल जी एवं स्व. अनिल पाटौदी की स्मृति में दिगंबर जैन सोशल ग्रुप रतलाम
११११/-	सौ. तारादेवी ध.प. श्री महेन्द्र कुमार मोठिया, रतलाम
११११/-	श्रीमती सूरज बाई ध. प. स्व. मन्नालाल जी रावका जैन रतलाम
११११/-	श्रीमती विमला देवी ध. प. कैलाश चंद्र जी पाटौदी रतलाम
११०१/-	श्री सरजू बाई मातेश्वरी श्री सुरेश चंद्र जी जैन, भोपाल
११०१/-	स्व. श्री लक्ष्मीबाई ध.प. श्री मिट्ठूलाल जी नरपत्या भोपाल
११०१/-	श्रीमती संतोष जैन ध. प. स्व. श्री रतन कुमार जी जैन , जैन को. हमीदिया रोड भोपाल
११०१/-	श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल अहमदाबाद (चौंसठ ऋद्धि विधान पर)
११०१/-	स्व. फूलाबाई एवं स्व. श्रीपालजी (माता-पिता) की स्मृति में, राजमल बागमल पवैया, भोपाल
११०१/-	श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर
५००१/-	श्री हीराभाई शाह प्रदीप सेल्स कारपोरेशन मंबुई
११०१/-	श्री ए. आनंद कुमार जी समयसार सदन मैसूर
११०१/-	श्री रेशम बाई ध. प. स्व. श्री लाभमल जी भोपाल
११०१/-	सौ. मिनी देवी.ध प. श्री शान्ति कुमार जी विनोद भोपाल

११०१/- सौ. चंद्र प्रभा देवी ध. प. श्री डॉ. कपूर चंद जी कौशल भोपाल
११०१/- श्री स्व. कमला देवी ध. प. श्री पदम कुमार जी जैन करनाल
११०१/- श्री नथमल जी लूणियां नवरंग पटना
११०१/- श्री सौ. सुधा बेन ध. प. श्री शशिकान्त वकील मुबंई
११०१/- सौ. नीलाबेन ध. प. श्री विक्रम भाई कामदार मूबंई
११०१/- श्री उल्लास भाई जोवलिया मुबंई
५००१/- श्री सौ. मंजुला बेन कबीनभाई पारिख मुबंई
११०१/- श्री अनंत भाई अमोलख भाई मूबंई
११०१/- श्री सौ. मधुकान्ता बेन रमेश भाई मेहता मूबंई
५००१/- श्री पूज्य कान जी स्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली
५००१/- श्री दिगबंर जैन मुमुक्षु समाज अशोक नगर
११०१/- श्री रत्नीबाई ध. प. श्री बाबूलाल जी अशोक नगर
११०१/- श्री सौ. सरोज देवी ध. प. श्री डॉ. बाबूलाल जी अशोक नगर
११०१/- श्री धीरज लाल जी मलूकचंद जी कामदार मुबंई
११०१/- श्री बा. ब्र. सुकुमाल जी झांझरी उज्जैन
३००१/- श्री जैन युवा फेडरेशन द्वारा श्री प्रदीप झांझरी उज्जैन
११०१/- सौ. गीता गोइनका ध. प. श्री सांवल प्रसाद जी गोइनका भोपाल
११०१/- सौ. स्नेह लता गोइनका ध. प. श्री अरविन्द गोइनका भोपाल
११०१/- सौ. राजकुमारी तिवारी ध. प. श्री देवी शंकर जी तिवारी भोपाल
११०१/- सौ. रेशम बाई ध. प. श्री सौभाग्यमल जी स्व. सेनानी भोपाल
५००१/- स्व. श्री गजरादेवी की स्मृति में श्री फूलचंद जी चौधरी न्यू मुबंई
११०१/- श्री ओखी बाई ध. प. श्री स्व. जसराज जी बागरेचा बेंगलोर
११०१/- श्री शान्ति लाल जी भायाणी मद्रास चेन्नई
५००१/- स्वस्ति श्री भट्टारक चारु कीर्त्ति स्वामी जी जैनमठ श्री क्षेत्र श्रवण बेलगोला
११०१/- कुमारी समता सुपुत्री आशा देवी जैन गोराकुन्ड इन्दौर
११०१/- दि. जैन शिक्षण समिमति मल्हारगंज इन्दौर
११०१/- ब्र. हीराबेन दि. जैन महिला श्राविका श्रम कंचन बाग इन्दौर
११०१/- श्री किशोरी बाई अध्यापिका महू
११०१/- श्री दिगंबर जैन मंदिर समिति पिपलानी भोपाल
११०१/- श्री गीतादेवी c/o श्री राकेश कुमार जैन दिल्ली
११०१/- श्री कुसुम लता ध. प. डॉ. बी. सी. जैन देहरादून

११०१/ चि. शशांक एवं लोकान्त सुपौत्र श्री हेमचंद्र जी जैन देहरादून
११०१/- चि. कुमारी सुरभि सुपौत्री श्री हेमचंद्र जी जैन देहरादून
११०१/- श्री सौ. स्नेहलता ध. प. श्री चौधरी शान्ति लाल जी भीलबाड़ा
२१०१/- श्री सौ. शशि प्रभा ध प. श्री प्रकाश चंद जी लुहाड़िया इन्दौर
११०१/- सौ. केशरबाई ध. प. श्री नेमीचंद जी आमल्या वाले गुना
११०१/- स्व. श्री पुष्पा देवी ध. प. श्री केवल चंद जी कुंभराज वाले उज्जैन
११०१/- सौ. मंजुला बेन ध. प. श्री जयंती लाल जी शाह मुनाई वाले मुंबई
५००१/- श्री महावीर दि. जैन ट्रस्ट चिमन गंज उज्जैन द्वारा ब्र. श्री सुकुमार जी झांझरी
११०१/- सौ. मनोरमा देवी ध. प. श्री नेमी चंद जी पहाड़िया पीसागंज (अजमेर)
२००१/- श्रीमती सेठानी पुष्पा बाई ध. प. स्व. कृषि पंडित श्रीमंत सेठ ऋषभ कुमार जी खुरई
११०१/- सौ. मीनादेवी ध. प. श्री संतोष कुमार जी जैन एडवोकेट भोपाल
११०१/- श्री सुभाष चंद जी अनुज कुमार जी जैन सराय अगस्त
११०१/- श्री सौ. मेमोदेवी ध. प. श्री विजय सेन जी जैन दिल्ली
११०१/- श्री सौ. सुशीला देवी ध. प. श्री लक्ष्मी चंद जी होजखास नई दिल्ली
११०१/- श्री संतोष देवी ध. प. स्व. मदन लाल जी जैन करोल बाग दिल्ली
११०१/- सौ. उषा देवी ध. प. श्री सुनील कुमार जी करोल बाग दिल्ली
११०१/- श्री डा. सुरेका एम. एस. ध. प. श्री डा. गिरीश एम. डी. दिल्ली
११०१/- श्री सौ. पूनम ध. प. श्री सुनील कुमार जी जैन आनंदपुरी मेरठ
११०१/- श्री जवर चंद जी ज्ञान चंद जी परमार्थिक ट्रस्ट सनावद
११०१/- श्री कँवर सेन जी ज्ञान चंद जी परमार्थिक ट्रस्ट सनावद
११०१/- श्री एस. पी. जैन नरीमन प्वाइन्ट मुंबई
११०१/- श्री सौ रक्षा देवी ध. प. श्री अमृत भाई चंद्र लोक कालोनी इन्दौर
११०१/- श्री सौ. गजरा बाई ध. प. श्री कमल चंद जी गुड़ा भोपाल
११०१/- श्री सौ. सुशीला बाई ध प. श्री पं. जवाहर लाल जी बड़कुल विदिशा
११०१/- श्री सौ. रेखा ध. प. श्री सुनीत कुमार जी गुना
११०१/- श्री ज्ञानमती ध. प. श्री प्रकाश चंद जी जैन सिरसागंज
११०१/- श्री सौ. बंसती देवी ध. प. श्री छीतरमल जी बाकलीवाल पीसांगज
११०१/- श्री सौ. उमग कुंवर ध. प. श्री गुलाबचंद जी दोसी पीसांगज
११०१/- श्री सौ. गुणमाला देवी ध. प. श्री रामजी जैन दिल्ली
११०१/- श्री जवाहर लाल जी हजारी मल जी सर्राफ दाहौद (गुजरात)

विषय सूची

१.	मंगलाचरण	२१
२.	आचार्य ज्ञान भूषण भट्टारक पूजन	२५
३.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी समुच्चय पूजन	२९
४.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी प्रथम अध्याय पूजन	३३
५.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी द्वितीय अध्याय पूजन	५१
६.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी तृतीय अध्याय पूजन	७६
७.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी चतुर्थ अध्याय पूजन	९३
८.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी पंचम अध्याय पूजन	१११
९.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी षष्टम अध्याय पूजन	१२८
१०.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी सप्तम अध्याय पूजन	१४७
११.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी अष्टम अध्याय पूजन	१६६
१२.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी नवम अध्याय पूजन	१८४
१३.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी दशम अध्याय पूजन	२०४
१४.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी एकादशम अध्याय पूजन	२२२
१५.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी द्वादशम अध्याय पूजन	२४३
१६.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी त्रयोदशम अध्याय पूजन	२६०
१७.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी चतुर्थदशम अध्याय पूजन	२८०
१८.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी पंचादशम अध्याय पूजन	२९९
१९.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी षष्टादशम अध्याय पूजन	३१८
२०.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी सप्तादशम अध्याय पूजन	३३७
२१.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी अष्टादशम अध्याय पूजन	३५४
२२.	अंतिम महाअर्घ्य	३७८
२३.	महाजयमाला	३७९
२४.	शान्ति पाठ, क्षमापना	३८२

ॐ

श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी विधान

भारत के गौरव
भोपाल के सपूत



परम आदरणीय महामहिम राष्ट्रपति श्री डा. शंकर दयाल शर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी भारत की प्रथम महिला श्री सौ. विमला शर्मा को यह विधान सादर समर्पित -

- राजमल पवैया

चित्र २८-५-९७

ॐ

श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी विधान

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

ओङ्कारंभक्ति संयुक्तं नित्यंध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ओङ्काराय नमो नमः ॥



अरहंता असरीरा आइरियातहउवज्झया मुणिणो ।
पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंचपरमेट्ठी ॥

राजमल पवैया रचित शताधिक पुस्तकों में से कुछ पुस्तकें

१. चतुर्विंशति तीर्थंकर विधान
२. तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्र विधान
३. सम्मेद शिखर विधान
४. वृहद् इन्द्रध्वजमंडल विधान
५. शान्ति विधान
६. विद्यमान बीस तीर्थंकर विधान
७. चौसठ ऋद्धि विधान
८. पंचमेरु विधान
९. नंदीश्वर विधान
१०. जिन गुण संपत्ति विधान
११. तीर्थंकर महिमा विधान
१२. याग मंडल विधान
१३. पंचपरमेष्ठी विधान
१४. पंच कल्याणक विधान
१५. कर्म दहन विधान
१६.जिन सहस्रनाम विधान
१७. कल्पद्रुम विधान
१८. गणधर वलय ऋषिमंडल विधान
१९. जैन पुजांजलि
२०. तीर्थ क्षेत्र पुजांजलि
२१. श्रुत स्कंध विधान
२२. पूजन किरण
२३. पूजन दीपिका
२४. मंगल पुष्प द्वतीय
२५. मंगल पुष्प तृतीय
२६.. समकित तरंग
२७. नित्यपाठ अपूर्व अवसर
२८. तीस चौबीसी विधान
२९.आदिनाथ भरत बाहुबलि पूजन
३०. शांति कुन्थु अरनाथ
३१. नेमि पार्श्वनाथ महावीर
३२. गोम्मटेश्वर बाहुबलि
३३. भगवान महावीर
३४. जैन धर्म सार्व धर्म
३५. वीरों का धर्म
३६. जन मंगल कलश
३७. जीवन दान
३८. सिद्ध चक्र वंदना
३९. तीनलोक तीर्थ यात्रा गीत
४०.भक्तामर विधान
४१. चतुर्विंशति स्तोत्र
४२. जिनेन्द्र चालीसा संग्रह
४३. चतुर्दश भक्ति
४४. जिन सहस्रनाम हिन्दी
४५. जिन वंदना
४६. मुनि वन्दना
४७. आत्म वन्दना
४८. पंचास्तिकाय विधान
४९. अनुभव
५०. परमब्रह्म
५१. सैतालीस शक्ति विधान
५२.कुन्दकुन्द महिमा
५३. कुन्दकुन्द वाणी
५४. इन्द्रध्वज विधान
५५. एक सौ सत्तर तीर्थंकर विधान
५६. कुन्दकुन्द वचनामृत
५७. श्री कल्पद्रुम मंडल विधान
५८. श्री तत्वार्थ सूत्र विधान
५९ श्री दसलक्षण विधान
६०. श्री प्रवचन सार विधान
६१. श्री नियमसार विधान
६२. श्री अष्टपाहुड़ विधान
६३. श्री समयसार विधान
६४. श्री रत्नकरंड श्रावकाचार विधान
६५. श्री परमात्म प्रकाश विधान
६६. श्री षटखंडागम सत्प्ररूपणा विधान
६७. कार्तिकेयानुप्रेक्षा विधान
६८. श्री पुरुषार्थ सिद्धि उपाय विधान
६९. श्री योगसार विधान
७०. श्री द्रव्य संग्रह विधान
७१. श्री कसायपाहुड विधान
७२. समाधि शतक विधान
७३ श्री गोम्मटसार विधान
७४. श्री समयसार कलश विधान
७५. श्री पद्मनन्दि श्रावकाचार विधान
७६. श्री धर्मोपदेशामृत विधान
७७. तत्त्वानुशासन विधान
७८. श्री दानोपदेश विधान
७९. इष्टोपदेश विधान
८०. श्री तत्त्वज्ञान तंरगिणी विधान
८१. श्री श्रवण बेलगोला विधान
८२. श्री ज्ञानार्णव विधान
८३. श्री आत्मानुशासन विधान
८४. श्री कर्म दहन विधान
८५. श्री बारस अणुवेक्खा विधान
८६. श्री पंच बालयति विधान
८७. श्री नियमसार कलश विधान

जिनेन्द्र स्तुति

छंद-गीतिका

अंत भव का निकट आया आपके दर्शन किये ।
पुष्प सम्यक् ज्ञान के प्रभु आपने मुझको दिये ॥
सदाचारी आचरण हे प्रभु सिखाया आपने ।
धर्म श्रावक तथा मुनि का बताया प्रभु आपने ॥
आपका उपकार स्वामी भूल सकता हूं नहीं ।
मिला सत्पथ अब कुपथ पर कभी जा सकता नहीं ॥
शरण पाकर आपकी मैं तत्त्व निर्णय करूँगा ।
नाथ समकित प्राप्त करके मोह भ्रम तम हरूँगा ॥
आज उर अम्बुज सहज जिन रवि किरण पाकर खिला।
जिन बिम्ब दर्शन का सुफल हे नाथ अब मुझको मिला॥

अभिषेक स्तुति

मैंने प्रभु के चरण पखारे ।
जनम, जनम के संचित पातक तत्क्षण ही निरवारे ॥१॥
प्रासुक जल के कलश श्री जिन प्रतिमा ऊपर ढारे ।
वीतराग अरिहंत देव के गूंजे जय जय कारे ॥२॥
चरणाम्बुज स्पर्श करत ही छाये हर्ष अपारे ।
पावन तन मन, नयन भये सब दूर भये अंधियारे ॥३॥

करलो जिनवर की पूजन

करलो जिनवर की पूजन, आई पावन घड़ी।
आई पावन घड़ी मन भावन घड़ी॥१॥
दुर्लभ यह मानव तन पाकर, कर लो जिन गुणगान।
गुण अनन्त सिद्धों का सुमिरण, करके बनो महान॥करलो.॥२॥
ज्ञानावरण, दर्शनावरणी, मोहनीय अंतराय।
आयु नाम अरु गोत्र वेदनीय, आठों कर्म नशाय॥करलो.॥३॥
धन्य धन्य सिद्धों की महिमा, नाश किया संसार।
निज स्वभाव से शिवपद पाया, अनुपम अगम अपार॥करलो.॥५॥
रत्नत्रय की तरणी चढ़कर चलो मोक्ष के द्वार।
शुद्धातम का ध्यान लगाओ हो जाओ भवपार॥करलो.॥६॥

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु
अरिहंतों को नमस्कार है, सिद्धों को सादर वंदन।
आचार्यों को नमस्कार है, उपाध्याय को है वन्दन।।१।।
और लोक के सर्वसाधुओं को है विनय सहित वन्दन।
पंच परम परमेष्ठी प्रभु को बार-बार मेरा वन्दन।।२।।
ॐ ह्रीं श्री अनादि मूलमंत्रेभ्यो नमः पुष्पांजलिं क्षिपामि।
मंगल चार, चार हैं उत्तम चार शरण में जाऊं मैं।
मन वच काय त्रियोग पूर्वक, शुद्ध भावना भाऊं मैं।।३।।
श्री अरिहंत देव मंगल हैं, श्री सिद्ध प्रभु हैं मंगल।
श्री साधु मुनि मंगल हैं, है केवलि कथित धर्म मंगल।।४।।
श्री अरिहंत लोक में उत्तम, सिद्ध लोक में है उत्तम।
साधु लोक में उत्तम हैं, है केवलि कथित धर्म उत्तम।।५।।
श्री अरिहंत शरण में जाऊं, सिद्ध शरण में मैं जाऊं।
साधु शरण में जाऊं, केवलि कथित धर्मशरणा पाऊं।।६।।
ॐ ह्रीं नमो अर्हते स्वाहा पुष्पांजलिं क्षिपामि।

अर्घ्य

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य धरूँ।
जिन गृह में जिन प्रतिमा सम्मुख सहस्त्रनाम को नमन करूँ॥
ॐ ह्रीं भगवत् जिन, सहस्त्रनामेभ्यो अर्घ्यं नि. ।

जल गंधाक्षत, पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ धरूँ।
जिन गृह में जिनराज पंच कल्याणक पाँचों नमन करूँ॥
ॐ ह्रीं जिन पंच कल्याणकेभ्यो अर्घ्यं ।

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य करूँ।
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम जिन बिम्बों को नमन करूँ॥
ॐ ह्रीं त्रैलोक्य संबंधी कृत्रिम, अकृत्रिम जिनालय जिन बिम्बेभ्यो अर्घ्यं ।

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ करूँ।
जिन गृह में सर्वज्ञ दिव्यध्वनि जिनवाणी को नमन करूँ॥
ॐ ह्रीं श्री जिन मुखोद्भूत श्रुतज्ञानेभ्यो अर्घ्यं ।

जल गंधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फलं अर्घ करूँ।
जिन गृह में पाँचों परमेष्ठी के चरणों में नमन करूँ॥
ॐ ह्रीं श्री अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु पंच परमेष्ठीभ्यो अर्घ्यं ।

स्वस्ति मंगल

मंगलमय भगवान् वीर प्रभु मंगलमय गौतम गणधर।
मंगलमय श्री कुन्दकुन्द मुनि मंगल जैन धर्म सुखकर।।१।।
मंगलमय श्री ऋषभदेव प्रभु मंगलमय श्री अजित जिनेश।
मंगलमय श्री संभव जिनवर मंगल अभिनंदन परमेश।।२।।
मंगलमय श्री सुमति जिनोत्तम मंगल पद्मनाथ सर्वेश।
मंगलमय सुपार्श्व जिन स्वामी मंगल चन्द्राप्रभु चन्द्रेश।।३।।
मंगलमय श्री पुष्पदंत प्रभु, मंगल शीतलनाथ सुरेश।
मंगलमय श्रेयांसनाथ जिन मंगल वासुपूज्य पूज्येश।।४।।
मंगलमय श्री विमलनाथ विभु, मंगल अनन्तनाथ महेश।
मंगलमय श्री धर्मनाथ जिन मंगल शांतिनाथ चक्रेश।।५।।
मंगल कुन्थुनाथ जिन मंगल मंगल श्री अरनाथ गुणेश।
मंगलमय श्री मल्लिनाथ प्रभु मंगल मुनिसुव्रत सत्येश।।६।।
मंगलमय नमिनाथ जिनेश्वर मंगल नेमिनाथ योगेश।
मंगलमय श्री पार्श्वनाथ प्रभु, मंगल वर्धमान तीर्थेश।।७।।
मंगलमय अरिहंत महाप्रभु, मंगल सर्व सिद्ध लोकेश।
मंगलमय आचार्य श्री जय मंगल उपाध्याय ज्ञानेश।।८।।
मंगलमय श्री सर्वसाधुगण , मंगल जिनवाणी उपदेश।
मंगलमय सीमन्धर आदिक, विद्यमान जिन बीस परेश।।९।।
मंगलमय त्रैलोक्य जिनालय, मंगल जिन प्रतिमा भव्येश।
मंगलमय त्रिकाल चौबीसी, मंगल समवशरण सविशेष।।१०।।
मंगल पंचमेरु जिन मंदिर, मंगल नन्दीश्वर द्वीपेश।
मंगल सोलह कारण दशलक्षण, रत्नत्रय व्रत भव्येश।।११।।
मंगल सहस्त्र कूट चैत्यालय मंगल मानस्तम्भ हमेश।
मंगलमय केवलि श्रुतकेवलि मंगल ऋद्धिधारि विद्येश।।१२।।
मंगलमय पांचों कल्याणक, मंगल जिन शासन उद्देश।
मंगलमय निर्वाण भूमि, मंगलमय अतिशय क्षेत्र विशेष।।१३।।
सर्व सिद्धि मंगल के दाता हरो अमंगल हे विघ्नेश।
जब तक सिद्ध स्वपद ना पाऊं तब तक पूजूं हे ब्रह्मेश।।१४।।

पुष्पांजलि क्षिपामि

शुभ ध्यानों से शुभ फल मिलता अशुभ ध्यान फल अशुभ सदा।
शुद्ध ध्यान से ही मिलता है शुद्ध ध्यान फल मोक्ष सदा॥

ॐ

श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी विधान

मंगलाचरण

मंगलं सिद्ध परमेष्ठी मंगलं तीर्थंकरम् ।
मंगलं शुद्ध चैतन्यं आत्म धर्मोस्तु मंगलम् ॥
मंगलं ज्ञान भूषण कृत तत्त्व ज्ञान तरंगिणी ।
मंगलं शुद्ध चिद्रूप शुद्धात्मा मंगलयम् ॥

चामर

वीतराग श्री जिनेन्द्र ज्ञान रूप मंगलम् ।
गणधरादि सर्व साधु ध्यान रूप मंगलम् ॥
आत्म धर्म विश्व धर्म सार्व धर्म मंगलम् ।
वस्तु का स्वभाव ही अनाद्यनंत मंगलम् ॥
तत्त्वज्ञान श्रुत तरंगिणी सदैव मंगलम् ।
ज्ञान भूषण स्वरूप यह विधान मंगलम् ॥

पुष्पांजलि क्षिपामि

पीठिका

दोहा

श्री ज्ञान भूषण सुमुनि आत्म ध्यान तल्लीन ।
सप्तम षष्टम झूलते निज स्वभाव आधीन ॥

गीतिका

ज्ञान भूषण मुनि रचित है तत्त्वज्ञान तरंगिणी ।
तीन शत सत्तानवे श्लोक श्रुत अनुसारिणी ॥

पर के प्रति शुभ परिणामों से पुण्य बंध हो जाता है ।
पर के प्रति परिणाम अशुभ से पाप बंध हो जाता है ॥

शताब्दी पंद्रह हुई मुनि युक्त पंच महाव्रततम् ।
अध्याय अष्टादश रचे हैं श्रेष्ठ मंगल दायकम् ॥
आज रचता हूँ विधान सुतत्त्वज्ञान तरंगिणी ।
भाव भाषा अर्थ युत यह दिव्य ध्वनि सुख दायिनी ॥
भूल इसमें रह न जाए यही है प्रभु प्रार्थना ।
शुद्ध निज चिद्रूप पाऊं यही है प्रभु याचना ॥
सकल कीर्त्ति सुमुनि के श्री भुवन कीर्त्ति सुशिष्य थे ।
ज्ञान भूषण इन्हीं के परिपूर्ण योग्य सुशिष्य थे ॥
वर्ष बीते पांच सौ इस ग्रंथ की रचना हुए ।
इसे पढ़कर बहु सुमुनि चिद्रूप निज में रत हुए ॥
पाँच सौ छत्तीस थे श्लोक शुभ इस ग्रंथ में ।
तीन सौ सत्तावने उपलब्ध अब हैं ग्रंथ में ॥
शेष का कुछ पता मिलता ही नहीं दुर्भाग्य है ।
किन्तु जो उपलब्ध हैं वह बड़ा ही सदभाग्य है ॥
इसे पढ़कर ज्ञान करके हम त्वरित आगे बढ़े ।
मुक्ति के सोपान पर हम क्रमिक हे स्वामी चढ़े ॥
यह विधान लिखा गया है भाव से अभिभूत हो ।
शुद्ध निज चिद्रूप का ही ध्यान हृदय प्रसूत हो ॥
भावना मंगलमयी है सभी का कल्याण हो ।
मुक्ति पथ पर चलें हम सब कर्म का अवसान हो ॥

गीत

शुद्ध चिद्रूप का यदि ध्यान हृदय को भाए ।
तो फिर आनंद अतीन्द्रिय का स्वाद आ जाए ॥

यदि परिणाम स्वयं से ही होएक निष्ठतो हो दुखक्षय ।
संवर युत निर्जरा पूर्वक होता प्राप्त मुक्ति आलय ॥

फिर तो संसार के फंदों में नहीं उलझूंगा ।
शुद्ध चिद्रूप का ही ध्यान करके सुलझूंगा ॥
इसके अन्तर्मुहूर्त्त ध्यान का कहना क्या है ।
ज्ञान कैवल्य प्रभो स्वयं प्रकट हो जाए ॥
बने अरहंत औ सर्वज्ञ मोह को जयकर ।
घातिया चार नाश वीतराग पद पाए ॥
शुद्ध चिद्रूप ही है गुण अनंत का दाता ।
जो भी इसको जपे तो स्वयं सिद्ध हो जाए ॥
करता हूँ यह विधान भाव पूर्वक स्वामी ।
शुद्ध चिद्रूप का वैभव महान मिल जाए ॥

छंद दिग्वधू

शुद्धातम चेतन हूं इस जग से न्यारा हूं ।
मैं नित्य निरंजन हूं सब जानन हारा हूँ ॥
मैं ज्ञाता दृष्टा हूँ चेतन चिद्रूपी हूँ ।
गुण ज्ञान अनंत सहित मैं सिद्ध स्वरूपी हूँ ॥
मैं अमल अखंड अतुल अविकल अविनाशी हूँ ।
अविकारी अजर अमर मैं स्वपर प्रकाशी हूं ॥
मैं ज्ञानानंद मयी ध्रुवधाम स्वरूपी हूँ ।
पुद्गल से भिन्न अरे चैतन्य अनपी हूँ ॥
चिच्चममत्कार चेतन मैं शुद्ध स्वभावी हूँ ।
निज दर्शन सुख बलमय पर द्रव्य अभावी हूँ ॥
परभावों में पड़कर मैं निज को भूल गया ।
पुद्गल की संगति कर निज के प्रतिकूल गया ॥
है संग अचेतन का भव भव में भटका हूँ ।
बनकर अनात्मा प्रभु चहुँगति में अटका हूँ ॥

अविरत सम्यक् दृष्टि जीव ही चौथा गुणस्थान वर्त्ती ।
शुद्ध स्वरूपाचरण युक्त है निज स्वरूप का अनुवर्ती ॥

रत्नत्रय धारूँ तो अंतर उजियारा हो ।
भव बंधन कट जाएं जग से छुटकारा हो ॥
चिद्रूप शुद्ध अपना प्रतिपल प्रतिक्षण ध्याऊँ ।
अपनी स्वशक्ति से प्रभु भव सागर तर जाऊँ ॥

दोहा

परम शुद्ध चिद्रूप की महिमा अपरंपार ।
तत्त्वज्ञान बरसात पा हो जाऊँ भव पार ॥

पुष्पांजलि क्षिपामि

भजन

नास्तिकता को छोड़ जीव जब निःशंकित हो जाता है ।
निज स्वभाव का अनुभव करता परमात्मा पद पाता है ॥
क्रोधादिक कषाय को जयकर आत्म तत्व में हो तत्पर ।
शुद्ध स्वरूप भाव में तन्मय वीतराग पद अजरामर ॥
मिथ्या भाव अनिष्ट छोड़कर जो भव भाव विलय करता।
श्रेष्ठ स्वभाव प्रकाशित करके कर्म घातिया जय करता ॥
इष्ट धर्म संयोग जहाँ हो वहीं स्वभाव प्रगट होता ।
केवलज्ञान प्रकाशित होता कर्म अघाति विघट होता ॥
कमल समान प्रफुल्लित अपने ही स्वभाव का अनुभव कर।
क्षायिक सम्यक् दर्शन प्रगटा अब तो कर्म निर्जरा कर ॥
शुद्ध दृष्टि जब हो जाती है सब संकल्प विकल्प रहित।
परमानंद भाव होता है होता सकल विजल्प रहित ॥
एक मात्र शुद्धात्म तत्व निज वन्दनीय है तीनों काल ।
यही सिद्ध अरहंत साधु है अर्चनीय है महाविशाल ॥

छह द्रव्यों से भरा ठसाठस विश्व अनादि अनंत महान ।
पुद्गल जीव अधर्म धर्म आकाश काल छह द्रव्य प्रधान॥

ॐ

आचार्य ज्ञानभूषण भट्टारक पूजन

स्थापना

छंद रोला

श्री आचार्य ज्ञान भूषण की महिमा गाऊं ।
भट्टारक मुनि के चरणों में शीष झुकाऊं ॥
जिनशासन भट्टारक परम जिनेन्द्र हमारे ।
महावीर प्रभु गुण अनंत की महिमा धारे ॥
दिव्य ध्वनि जिनवर की सबके मन को भायी ।
सुमुनि ज्ञान भूषण ने उसको हृदय सजायी ।
जीवों के कल्याण हेतु जिनशास्त्र बनाया ॥
महिमामयी जिनागम का ही यश फैलाया ।
अतः आज पूजन करता हूँ महा विनय से ।
दो आशीर्वाद जुड़ जाऊँ आत्म निलय से ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य ज्ञान भूषण भट्टारक अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्री आचार्य ज्ञान भूषण भट्टारक अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्री आचार्य ज्ञान भूषण भट्टारक अत्र सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद गीतिका

सुविधि पूर्वक नीर लाऊँ जन्म मृत्यु जरा हरूँ ।
भावना भव नाशिनी भा आत्मा का हित करूं ॥
तत्त्वज्ञान तरंगिणी का स्वाध्याय सदा करूं ।
चिद्रूप शुद्ध महान का ही ध्यान कर कल्मष हरूं ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य ज्ञान भूषण भट्टारकाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

स्वयं सिद्ध है इसका कर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता ईश नहीं ।
नहीं किसी के आधारित ना, शेष नाग आधार कहीं ॥

सुगिरि चंदन से करूं मैं तिलक अपने शीष पर ।
भवातप का नाश करदूं विभावों से रीस कर ॥
तत्त्वज्ञान तरंगिणी का स्वाध्याय सदा करूं ।
चिद्रूप शुद्ध महान का ही ध्यान कर कल्मष हरूं ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य ज्ञान भूषण भट्टारकाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

अक्षती निज भाव लाऊं प्राप्त अक्षय पद करूं ।
भव समुद्र अथाह क्षय कर मुक्ति कामिनि को वरूं ॥
तत्त्वज्ञान तरंगिणी का स्वाध्याय सदा करूं ।
चिद्रूप शुद्ध महान का ही ध्यान कर कल्मष हरूं ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य ज्ञान भूषण भट्टारकाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

निज स्वभावी पुष्प लाऊं काम की पीड़ा हरूं ।
प्राप्त कर निष्काम पद निज मोक्ष लक्ष्मी को वरूं ॥
तत्त्वज्ञान तरंगिणी का स्वाध्याय सदा करूं ।
चिद्रूप शुद्ध महान का ही ध्यान कर कल्मष हरूं ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य ज्ञान भूषण भट्टारकाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

ज्ञान भावी सुचरु लाऊं सरस अनुभवमयी शुद्ध ।
क्षुधा की मैं व्याधि नाशूं क्योंकि मैं हूँ स्वयं बुद्ध ॥
तत्त्वज्ञान तरंगिणी का स्वाध्याय सदा करूं ।
चिद्रूप शुद्ध महान का ही ध्यान कर कल्मष हरूं ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य ज्ञान भूषण भट्टारकाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

ज्ञान ज्योति प्रकाश पाकर मोह भ्रम तम को हरूं ।
ज्ञान रवि कैवल्य पाकर विषमताएं क्षयकरूं ॥
तत्त्वज्ञान तरंगिणी का स्वाध्याय सदा करूं ।
चिद्रूप शुद्ध महान का ही ध्यान कर कल्मष हरूं ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य ज्ञान भूषण भट्टारकाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

एक ब्रह्म या प्रकृति पुरुष दो अथवा पांच द्रव्य हैं भ्रान्ति।
एक एक कण कण स्वतंत्र है सूर्य चंद्र सम स्वतंत्र क्रान्ति॥

ज्ञान भावी धूप लाऊं शुक्ल ध्यान महान कर ।
कर्म वसु क्षय करूं तत्क्षण मोक्ष सौख्य महान वर ॥
तत्त्वज्ञान तरंगिणी का स्वाध्याय सदा करूं ।
चिद्रूप शुद्ध महान का ही ध्यान कर कल्मष हरूं ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य ज्ञान भूषण भट्टारकाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

ज्ञान भावी फल मिलेंगे आत्मा के ध्यान से ।
शीघ्र ही जुड जाऊंगा मैं शाश्वत निर्वाण से ॥
तत्त्वज्ञान तरंगिणी का स्वाध्याय सदा करूं ।
चिद्रूप शुद्ध महान का ही ध्यान कर कल्मष हरूं ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य ज्ञान भूषण भट्टारकाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

ज्ञान भावी पद अनर्घ्य महान ही मैं पाऊंगा ।
अर्घ्य वसु विधि चढ़ाकर मैं आत्मा को ध्याऊंगा ॥
तत्त्वज्ञान तरंगिणी का स्वाध्याय सदा करूं ।
चिद्रूप शुद्ध महान का ही ध्यान कर कल्मष हरूं ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य ज्ञान भूषण भट्टारकाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

जयमाला

छंद (हेदीनबंधु)

चैतन्य चंद्रिका ने मुझे आके जगाया ।
मिथ्यात्व मोह नींद को सम्पूर्ण भगाया ॥
सोया था मैं अनादि से विभाव के ही संग ।
अपने स्वभाव भाव से अब मुझको मिलाया ॥
मोहादि राग द्वेष सभी दूर हो गए ।
चिद्रूप शुद्ध भाव गीत आके सुनाया ॥
निधि भेदज्ञान की दी मुझे बड़े प्रेम से ।
परिणति विभाव दुष्टा को भी दूर हटाया ॥

विश्व अनादि निधन है इसका कभी नहीं होता है नाश।
यह सर्वज्ञ कथन है मानो उर में धरो पूर्ण विश्वास ॥

सम्यक्त्व ने दर्शन दिए शिव धार मिल गयी ।
संसार के किनारे पै ला मुझको बिठाया ॥
संयम की तरणी आ गई भव पार कराने ।
मैंने स्वशक्ति को जगा निज चरण बढ़ाया ॥
कुछ देर तो है किन्तु अब अंधेर नहीं है ।
सिद्धों का निमंत्रण मिला तो राग विलाया ॥
चिद्रूप शुद्ध प्राप्ति का अब समय आ गया ।
उपकार आपका न कभी भूल पाएंगें ॥
कल्याण के ही मार्ग पर हे सुमुनि लगाया ।
आचार्य ज्ञान भूषण ने मुझको बताया ॥
आचार्य सकला कीर्त्ति श्री गुरु प्रधान थे ।
श्री भुवनादिकीर्त्ति भट्ट, महा ज्ञानवान थे ॥
थे शिष्य ज्ञान भूषण उनके बहुत प्रसिद्ध ।
रच तत्त्व ज्ञान तरंगिणि कार्य किया सिद्ध ॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्य ज्ञान भूषण भट्टारकाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

विमल भावना ज्ञान की पावन परम अनूप ।
कृपा ज्ञान भूषण मिले पाऊं ध्रुव चिद्रूप ॥

इत्याशीर्वाद :

भजन

आत्मा सौन्दर्य का वैभव मिला है आज मुश्किल से ।
नहीं कोई कसर बाकी दिखाई दी है मुश्किल से ॥
ज्ञान श्रद्धान से भूषित स्वगुण चारित्र है शोभित ।
अनंतों गुण का धारी यह मिला है आज मुश्किल से ॥

शून्य नहीं है वस्तु अनंत गुणात्मक ठोस द्रव्य प्रत्येक ।
विश्व समान स्वतंत्र स्वयम्भू द्रव्यों में गुण बहु प्रत्येक ॥

ॐ

पूजन क्रमांक १

तत्त्वज्ञान तरंगिणी समुच्चय पूजन

स्थापना

गीतिका

तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिन शास्त्र को वंदन करूं ।
विषमताएँ नष्ट करके कर्म के बंधन हरूँ ॥
ज्ञानभावी भावना का सदा ही आदर करूं ।
शुद्ध निज चिद्रूप रस ही हृदय में हे प्रभु भरूं ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

गीतिका

जन्म मरण विनाश हित निज भाव श्रुत जल मिल गया।
हृदय कमल प्रसिद्ध मेरा आज पूरा खिल गया ॥
तत्त्व ज्ञान तरंगिणी पा हृदय पुलकित हो गया ।
स्व परिणति को देखते ही ज्ञान उर में झिल गया ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

भवातप का ज्वर न हो अब शान्ति सागर हो हृदय ।
ज्ञान का अंबुज खिले प्रभु प्राप्त हो ध्रुव निज निलय ॥
तत्त्व ज्ञान तरंगिणी पा हृदय पुलकित हो गया ।
स्व परिणति को देखते ही ज्ञान उर में झिल गया ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

गुण अनंत प्रत्येक द्रव्य में हैं पर्याय अनंतानंत ।
मेरा जीव द्रव्य भी ऐसा गुण अनंतमय ध्रुव जीवंत ॥

भाव अक्षय अखंडित हैं अचल है मेरा स्वभाव ।
भव समुद्र अपार क्षय हो दूर हों सारे विभाव ॥
तत्त्व ज्ञान तरंगिणी पा हृदय पुलकित हो गया ।
स्व परिणति को देखते ही ज्ञान उर में झिल गया ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

कामशर पीड़ा न हो प्रभु शील पुष्प महान हो ।
राग हो विध्वंस सारा स्वपद सिद्ध प्रधान हो ॥
तत्त्व ज्ञान तरंगिणी पा हृदय पुलकित हो गया ।
स्व परिणति को देखते ही ज्ञान उर में झिल गया ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

क्षुधा का यह द्वंद मुझसे अब सहा जाता नहीं ।
स्वपद निर्मल शान्त के बिन अब रहा जाता नहीं ॥
तत्त्व ज्ञान तरंगिणी पा हृदय पुलकित हो गया ।
स्व परिणति को देखते ही ज्ञान उर में झिल गया ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

मोह भ्रम तम नाश कर दूँ ज्ञान दीप प्रजालकर ।
मुक्ति के पथ पर चलूँ मैं आत्म तत्त्व संभाल कर ॥
तत्त्व ज्ञान तरंगिणी पा हृदय पुलकित हो गया ।
स्व परिणति को देखते ही ज्ञान उर में झिल गया ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

धर्म ध्यानी शुक्ल धूप महान हो पावन परम ।
अष्टकर्म विनाश करने को करूँ मैं ध्यान श्रम ॥
तत्त्व ज्ञान तरंगिणी पा हृदय पुलकित हो गया ।
स्व परिणति को देखते ही ज्ञान उर में झिल गया ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

जैसे द्रव्य स्वतंत्र सभी हैं वैसे ही मैं पूर्ण स्वतंत्र ।
कोई भी परतंत्र नहीं है मैं भी कभी नहीं परतंत्र ॥

भव वृक्ष पर विषफल लगे हैं इन्हें अब तोडूँ नहीं ।
मोक्षफल की प्राप्ति के हित हाथ अब जोडूँ नहीं ॥
तत्त्व ज्ञान तरंगिणी पा हृदय पुलकित हो गया ।
स्व परिणति को देखते ही ज्ञान उर में झिल गया ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

भाव अर्घ्य बना गुणों के पद अनर्घ्य महान लूं ।
अष्टकर्मो से रहित हो सिद्ध स्वपद विहान लूँ ॥
तत्त्व ज्ञान तरंगिणी पा हृदय पुलकित हो गया ।
स्व परिणति को देखते ही ज्ञान उर में झिल गया ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

महाअर्घ्य

छंद रोला

अपने निज परमात्मा को ही देखो भालो ।
ज्ञानांजन आँजो नयनों में निज सुख पालो ॥
बहुत समय से रही रतौंधी की बीमारी ।
भेद ज्ञान की औषधि पी निज आत्म संभालो ॥
जड़ पुद्गल तन से ममत्व हो तो दुख ही दुख ।
दुख हरने को निज स्वरूप में निज को ढालो ॥
राग द्वेष की पवन सतत पीड़ा देती है ।
आत्मस्थ हो अनुभव रस निर्मित चरु खालो ॥
भेदज्ञान की सुविधि तुम्हारे ही भीतर है ।
निज पुरुषार्थ जगाकर निज हित उसे निकालो ॥
एक शुद्ध चिद्रूप शक्ति ही सुखदायक है ।
इससे जो विपरीत भाव है उसे हटा लो ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पित करूं करूं स्वयं का ज्ञान ।
तत्त्वज्ञान की शक्ति ले करूं आत्म कल्याण ॥

कोई छोटा बड़ा नहीं है सभी द्रव्य हैं महिमावान ।
गुण अनंत का पिंड आत्मा बना बनाया है भगवान ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्यं नि. ।

जयमाला

मत्त सवैया

है अनंतानुबंधी की तो चांडाल चौकड़ी दुखदायी ।
शिवपथ में सर्वाधिक वाधक पलभर में भव दुखदायी ॥
यह अप्रत्याख्यानावरणी की चौकड़ी महा दुखमय जानो।
अविरति का पाठ पढ़ाती है पल भर को भी ना सुख मानो॥
प्रत्याख्यानावरणी की भी चौकड़ी सदा ही दुखमय है ।
जब तक प्रमाद उर रहता है होती न कभी भी सुखमय है ॥
वाधक संज्जवल चौकड़ी है यह शिवपथ पार नहीं होता।
चारित्र मोह के कारण तो संहार कषाय नहीं होता ॥
इन चारों की चौकड़ी महा दुखमयी कष्टकर ही जानो ।
इनके क्षय का ही अब प्रयत्न करने का उद्यम उर ठानो॥
उर ज्ञान स्वदीप जलाओ अब अंधियारे को कर चूर चूर।
आनंदामृत के तुम सागर शाश्वत शिवसुख भरापूर ॥
जब ध्यान धूप होगी उर में तो कर्म सभी जल जाएँगे ।
पद नित्य निरंजन पाने के पावन प्रसंग भी आएंगे ॥
भव फल से उकताए हो तो तुम श्रद्धान आत्मा का कर लो!
निश्चित शिवफल पाना है तो भव दुख अवसान सभी कर लो॥
पदवी अनर्घ्य पाना है तो तुम भव अर्घ्यो से दूर रहो ।
निज शुद्ध आत्मा के दर्शन कर ज्ञान धार में सतत बहो॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

परम शुद्ध चिद्रूप के जो सुनते है बोल ।
वे ही पाते मोक्ष सुख अगम अकंप अडोल ॥

इत्याशीर्वाद :

50

श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी विधान

धर्मोपदेशामृत विधान एवं कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा विधान का लोकार्पण करने के पश्चात्



परम आदरणीय महामहिम राष्ट्रपति श्री डा. शंकर दयाल शर्मा
पीछे श्री विनय कुमार जैन देहरादून, श्री मनोज कुमार फिरोजाबाद जैन
एवं लेखक

चित्र २८-५-९७

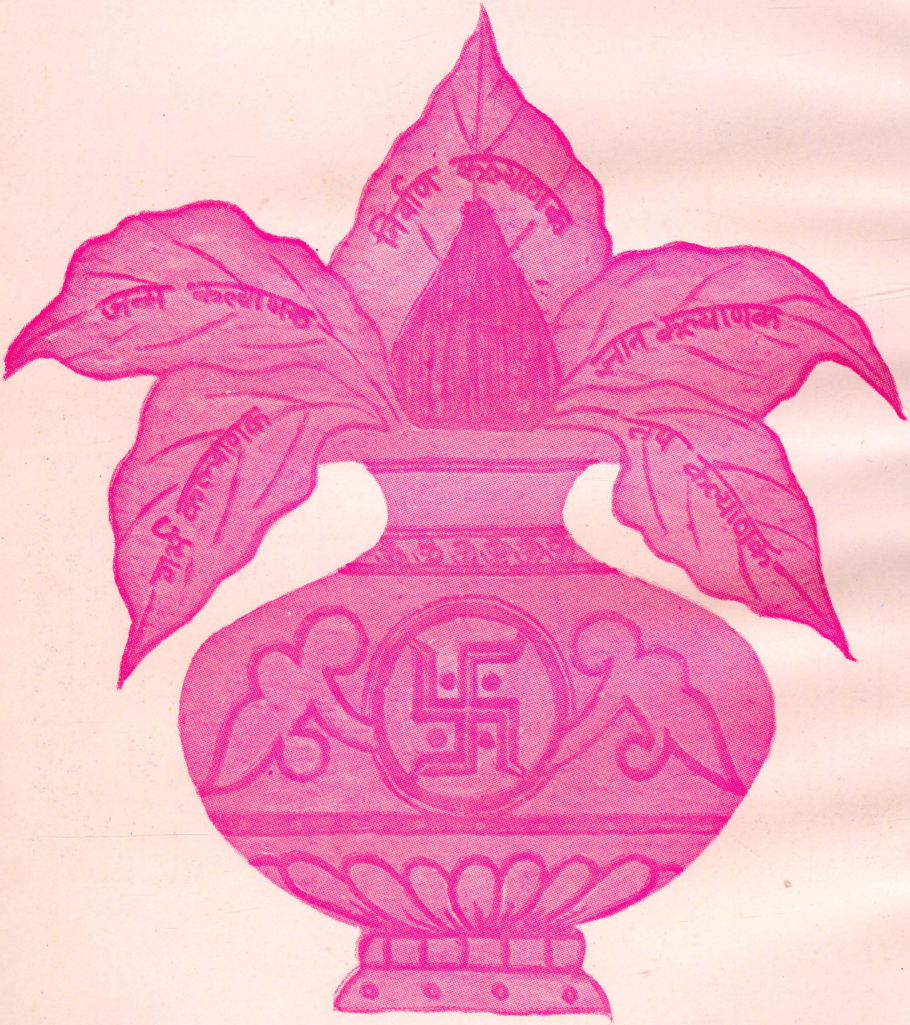
ॐ

श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी विधान

जय सुद देवता

वर्धताम् जिनशासनम्

मंगल कलश



मंगल कलश विश्व मंगलमय। शुद्ध आत्मा शाश्वत शिवमय ॥

आत्म ज्ञान ही है मंगलमय। स्वानुभूति उत्तम मंगलमय ॥

द्रव्य सिद्धि होती स्वगुणों से द्रव्यों का परिचय होता ।
गुण भी पृथक पृथक स्वतंत्र हैं ऐसा बोध सहज होता॥

ॐ

पूजन क्रमांक २

तत्त्वज्ञान तरंगिणी प्रथम अध्याय पूजन

स्थापना

गीतिका

तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिन शास्त्र को वन्दन करूं ।
यह प्रथम अध्याय पूजूँ मोह के बंधन हरूं ॥
जानकर चिद्रूप का लक्षण करूं निज साधना ।
शाश्वत सुख प्राप्ति की ही है हृदय में भावना ॥

ॐ ह्रीं प्रथम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं प्रथम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं प्रथम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद सखी

यह जन्म मरण दुखदायी । है अल्प नहीं सुखदायी ।
निज भावमयी जल लाऊँ । निज तत्त्व ज्ञान प्रभु पाऊं ॥

ॐ ह्रीं प्रथम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

संसारताप ज्वर दुखमय । पल भर को कभी न सुखमय॥
निज शीतल चंदन लाऊं । दृढ़ तत्त्वज्ञान उर लाऊं ॥

आकुलता क्षय हो जाती है होती कर्त्ता बुद्धि विनाश ।
ऐसा भान त्वरित होता है, जब होता है ज्ञान प्रकाश ॥

ॐ ह्रीं प्रथम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

शिवसुख की वेला आयी। निज ज्ञान तरगं सुहायी ।
अक्षय पद निज प्रगटाऊँ। दृढ़ तत्त्वज्ञान उर लाऊं ॥

ॐ ह्रीं प्रथम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

बन शील स्वगुण का स्वामी । निष्काम बनूं गुणधामी ॥
चिरकाम व्याधि विनशाऊं । दृढ़ तत्त्वज्ञान उर लाऊं ॥

ॐ ह्रीं प्रथम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

यह क्षुधा व्याध विषपायी । भव भव तक है दुखदायी ॥
चिर क्षुधारोग विनशाऊं । दृढ़ तत्त्वज्ञान उर लाऊं ॥

ॐ ह्रीं प्रथम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

मोहान्ध घोर अज्ञानी । कब तक होऊंगा ज्ञानी ॥
निज ज्ञान दीप उजियाऊं । दृढ़ तत्त्वज्ञान उर लाऊं ॥

ॐ ह्रीं प्रथम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

निज ध्यान धूप उर लाऊं । वसु कर्म नाश सुख पाऊं ॥
पद नित्य निरंजन पाऊं । दृढ़ तत्त्वज्ञान उर लाऊं ॥

ॐ ह्रीं प्रथम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

अब महामोक्ष फल लाऊं । धुव ध्यान महान सजाऊं ॥
फल शुक्ल ध्यान का पाऊं । दृढ़ तत्त्वज्ञान उर लाऊं॥

ॐ ह्रीं प्रथम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

द्रव्य और गुण का परिचय दृढ़ तत्त्व माध्यम से होता ।
द्रव्यों का परिणमन सदा, पर्याय स्वभाव सहित होता ॥

गुण अर्घ्य बनाऊं स्वामी। दुख क्षय हो अंतर्यामी ॥
अब तो अनर्घ्य पद पाऊं । दृढ़ तत्त्वज्ञान उर लाऊं ॥

ॐ ह्रीं प्रथम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि. ।

अर्घ्यावलि

प्रथम अध्याय

शुद्ध चिद्रूप के लक्षण का विधान

(१)

प्रणम्य शुद्धचिद्रूपं सानंदं जगदुत्तमम् ।
तल्लक्षणादिकं वच्मि तदर्थी तस्य लब्धये ॥१॥

अर्थ- निराकुलतारूप अनुपम आनन्द भोगने वाले, समस्त जगत में उत्तम शुद्ध चैतन्य स्वरूप को नमस्कार कर उसकी प्राप्ति का अभिलाषी मैं उसके लक्षण आदि का प्रतिपादन करता हूं ।

१. ॐ ह्रीं शुद्धचिद्रूपस्वरूपाय नमः ।

आनन्दघनस्वरूपोऽहम् ।

छंद तांटक

परम निराकुल सुख स्वरूप आनंद रूप जग में उत्तम ।
एक शुद्ध चैतन्य स्वरूप ज्ञान दर्शन ही सर्वोत्तम ॥
इसको ही पाने की रुचि को सादर वन्दन करता हूं ।
इसको ही पाने की विधि का अब प्रतिपादन करता हूं॥१॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(२)

पश्यत्यवैति विश्वं युगपत्पन्नोकर्मकर्मणामणुभिः ।
अखिलैर्मुक्तो योऽसौ विज्ञेयः शुद्धचिद्रूपः ॥२॥

अर्थ- जो समस्त जगत को एक साथ देखने जानने वाला है। नो कर्म और कर्म के

उपादेय अरु हेय ज्ञान सब, तत्त्व ज्ञान से ही होता ।
पर्यायों मे स्वतः सिद्ध वैभव भी सहज प्रगट होता ॥

परमाणुओं से रहित है वही शुद्ध चिद्रूप है ।

२. ॐ ह्रीं कर्मनोकर्मरहितशुद्धचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

निरंजनचिद्रूपोऽहम् ।

ताटंक

यही शुद्ध चिद्रूप जानकर इसको पाने का ही श्रम ।
सतत करूँ सक्षम होकर मैं ज्ञान प्राप्ति का ही उद्यम ॥
युगपत लोकालोक जानता नो कर्मो से रहित महान ।
कर्म वर्गणाओं से विरहित है निष्कर्म परम बलवान ॥
एक शुद्ध चिद्रूप शक्ति जब निज अंतर में जग जाती ।
सकल कलुषता धुल जाती है इसकी ही महिमा आती ॥२॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

अर्थान् यथास्थितान् सर्वान् समं जानाति पश्यति ।
निराकुलो गुणी योऽसौ शुद्धचिद्रूप उच्यते ॥३॥

अर्थ- जो पदार्थ जिस रूप में स्थित है उन्हें उसी रूप से एक जानने देखनेवाला आकुलता रहित और समस्त गुणों का भण्डार शुद्ध चिद्रूप कहा जाता है। यहां इतना विशेष है कि पहिले श्लोक से सिद्धों को शुद्ध चिद्रूप कहा है और इस श्लोक में अर्हत भी शुद्ध चिद्रूप है यह बात बतलाई है ।

३. ॐ ह्रीं विज्ञानघनस्वरूपाय नमः ।

निराकुलस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

जो पदार्थ जैसा सुस्थित है उसी तरह मैं जान रहा ।
देख रहा आकुलता विरहित वही शुद्ध चिद्रूप कहा ॥
गुण अनंत भंडार यही है यही सिद्ध शिव तीनों काल ।
ये ही तो अरहंत महा प्रभु यही शुद्ध चिद्रूप विशाल ॥३॥

पूर्ण शुद्ध पर्याय जीव की यही कार्य परमात्मा जान ।
इससे सहज शुद्ध कारण परमात्मा का हो जाता ज्ञान ॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

स्पर्शरसगंधवर्णै शब्दैर्मुक्तो निरंजनः स्वात्मा ।
तेन च स्वैरग्राह्योऽसावनुभवनाद्ग्रहीतव्यः ॥४॥

अर्थ-यह स्वात्मा स्पर्श रस गंध वर्ण और शब्दों से रहित है निरंजन है। इसलिये किसी इन्द्रिय द्वारा गृहीत न होकर अनुभव से स्वानुभव प्रत्यक्ष से इसका ग्रहण होता है ।

४. ॐ ह्रीं स्पर्शरसगन्धवर्णरहितचिन्मयस्वरूपाय नमः ।

अशब्दस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

यह तो है रस गंध वर्ण स्पर्श रहित अरु शब्दातीत ।
है प्रत्यक्ष स्वानुभव से ही इन्द्रिय द्वारा नहीं गृहीत ॥
अन्तर्मुख जब प्राणी होता तब होता है इसका ज्ञान ।
यही शुद्ध चिद्रूप आत्मा परम शुद्ध है लो पहचान ॥
नित्य निरंजन यही स्वात्मा अनुभव से होता है प्राप्त ।
इसका अवलंबन लेने से प्राणी हो जाता है आप्त ॥४॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(५)

सप्तानां धातूनां पिंडो देहो विचेतनो हेयः ।
तन्मध्यस्थोऽवैतीक्षतेऽखिलं यो हि सोऽहं चित् ॥५॥

अर्थ- यह शरीर शुक्र रक्त मज्जा आदि सात धातुओं का समुदाय स्वरूप है। चेतना शक्ति से रहित और त्यागने योग्य है एवं जो इसके भीतर समस्त पदार्थों को देखने जानने वाला है वह मैं आत्मा हूं ।

५. ॐ ह्रीं सप्तधातुरहितशुद्धात्मस्वरूपाय नमः ।

निर्देहस्वरूपोऽहम् ।

जब परिणमन स्वभाव द्रव्य का हो जाता है सम्यक् ज्ञान।
पर सन्मुखता क्षय हो जाती आत्म स्वसन्मुख होता ज्ञान॥

वीरछंद

यह शरीर तो सप्त धातु का पिंड रक्त मज्जादिक युक्त।
सतत चेतना रहित त्यागने योग्य विविध जड़ कण संयुक्त॥
इसके भीतर देखन जानन हारा जो है वह आत्मा ।
वही शुद्ध आत्मा मैं ही हूँ मैं ही तो हूँ परमात्मा ॥५॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

आजन्म यदनुभूतं तत्सर्वं यः स्मरन् विजानाति ।
कररेखावत् पश्यति सोऽहं बद्धोऽपि कर्मणाऽत्यंतम् ॥६॥

अर्थ- जन्म से लेकर आज तक जो पदार्थ अनुभवे हैं उन सब को स्मरण कर हाथ की रेखाओं के समान जो जानता देखता है वह ज्ञानावरण आदि कर्मो से कड़ी रीति से जकड़ा हुआ भी मैं वास्तव में शुद्ध चिद्रूप ही हूं ।

६. ॐ ह्रीं ज्ञानावरणादिकर्मबंधनरहितनिर्बन्धस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानानन्दस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

जब से जनम लिया तब से ही देखन जानन हारा है ।
ज्ञानावरणी कर्मो ने घेरा है किन्तु न हारा है ॥
वास्तव में चिद्रूप शुद्ध मैं ही तो हूँ अनुभव में दक्ष ।
जो देखा जाना है अब तक जान रहा हूँ मैं प्रत्यक्ष ॥६॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

श्रुतनागमात् त्रिलोके त्रिकालजं चेतनेतरं वस्तु ।
यः पश्यति जानाति च सोऽहं चिद्रूपलक्षणो नान्यः ॥७॥

अर्थ- तीनों लोक और कालों में विद्यमान चेतन और जड़ पदार्थो को आगम से श्रवण कर जो देखता जानता है वह चैतन्यरूप लक्षण का धारक मैं स्वात्मा हूं। मुझ सरीखा

दृष्टि निमित्ताधीन नष्ट हो जाती होती निज आधीन ।
अपनी ही महिमा आती है प्राणी हो ता ज्ञान प्रवीण ॥

अन्य कोई नहीं हो सकता। इन श्लोकों से आचार्य उपाध्याय और सामान्य मुनियों का भी शुद्ध चिद्रूप पद से ग्रहण किया है । स्वयं ग्रन्थकार भी शुद्ध चिद्रूप पद से किन किन का ग्रहण हैं इस बात को दिखाते है

७. ॐ ह्रीं त्रिकालत्रिलोकगतचेतनेतरवस्तुविकल्परहितशुद्धस्वरूपाय नमः ।

ज्ञायकस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

तीन लोक तीनों कालों में विद्यमान जो जड़ चेतन ।
आगम से सुन देख रहा हूं जान रहा हूं मैं चेतन ॥
मैं चेतनारूप लक्ष्मी का धारी निर्मल आत्मा हूँ ।
मुझसे बढ़कर कहीं न कोई मैं ही तो शुद्धात्मा हूँ ॥७॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

शुद्धचिद्रूप इत्युक्ते ज्ञेयाः पंचाईदादयः ।
अन्येऽपि तादृशाः शुद्धशब्दस्य बहुभेदतः ॥८॥

अर्थ- शुद्ध चिद्रूप पद से यहां पर अर्हत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और सर्वसाधु इन पांचो परमेष्ठियों का ग्रहण है तथा इनके समान अन्य शुद्धात्मा भी शुद्धचिद्रूप शब्द से लिये हैं क्योंकि शुद्ध शब्द के बहुत से भेद है ।

८. ॐ ह्रीं निर्मलशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

समतास्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

एक शुद्ध चिद्रूप शब्द में पांचों परमेष्ठी गर्भित ।
अर्हंत सिद्धाचार्य साधु अरुउपाध्याय पांचों शोभित ॥
शुद्ध शब्द के बहुत भेद हैं बहुत अर्थ हैं शुद्ध स्वरूप ।
इसके सम ही अन्य सभी हैं शुद्ध आत्माएँ चिद्रूप ॥८॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

जन्म मरण से रहित अनादि अनंत आत्मा का अस्तित्व।
ऐसा ज्ञान ,मरण भय क्षय कर दर्शाता है निज अस्तित्व॥

(९)

नो दृक् नो धीर्न वृत्तं न तप इह यतो नैव सौख्यं न शक्ति-
र्नादोषो नो गुणीतो न परम पुरुषः शुद्धचिदरूपतश्च ।
नोपादेयोप्यहेयो न च पररहितो ध्येयरूपो न पूज्यो-
नान्योतत्कृष्टच तस्मात्प्रतिसमयमहं तत्स्वरूपं स्मगमि ॥९॥

अर्थ- यह चिद्रूप ही सम्यक्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। तप सुख शक्ति और दोषों का अभाव स्वरूप है। गुणवान और परम पुरुष है उपादेय ग्रहण करने योग्य और अहेय (न त्यागने योग्य) है। पर परिणति से रहित ध्यान करने योग्य है। पूज्य और सर्वेत्कृष्ट है। किन्तु शुद्ध चिद्रूप से भिन्न सम्यग्दर्शन आदि कोई पदार्थ नहीं, इसलिये प्रति समय. मैं उसी का स्मरण मनन करता हूं ।

९. ॐ ह्रीं सौख्यार्णवस्वरूपाय नमः ।

पवित्रोऽहम् ।

वीरछंद

सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूप शुद्ध चिद्रूप महान ।
दोष रहित है तप सुख ज्ञान शक्ति से भूषित है गुणवान॥
उपादेय है यह अहेय है पर परिणति बिन ध्याने योग्य।
पूज्य तथा सर्वोत्कृष्ट है यही सुस्मरण करने योग्य ॥
किन्तु नहीं कोई पदार्थ चिद्रूप शुद्ध से है उत्कृष्ट ।
प्रतिपल प्रतिक्षण सतत चिन्तवन इसका करना हो आकृष्ट॥
इसे प्राप्त करने का श्रम ही परमोत्तम श्रम कहलाता ।
उड़ जाती भव की थकान सब जीव निराकुल हो जाता॥९॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

ज्ञेयो दृश्योऽपि चिद्रूपो ज्ञाता दृष्टा स्वभावतः ।
न तथाऽन्यानि द्रव्याणि तस्माद् द्रव्योत्तमोस्ति सः ॥१०॥

मैं न किसी की रक्षा करता कोई न मेरी कर सकता ।
मार न सकता कभी किसी को कोई न मुझे मार सकता॥

अर्थ- यद्यपि यह चिद्रूप ज्ञेय ज्ञान का विषय दृश्य दर्शन का विषय है। तथापि स्वभाव से ही यह पदार्थो का जानने और देखने वाला है परन्तु अन्य कोई पदार्थ ऐसा नहीं जो ज्ञेय और दृष्य होने पर जानने देखने वाला हो इसलिये यह चिद्रूप समस्त द्रव्यों में उत्तम है ।

१०. ॐ ह्रीं ज्ञप्तिशक्तिस्वरूपाय नमः ।

दृशिशक्तिसंपन्नोऽहम् ।

ताटंक

ज्ञेय ज्ञान का विषय दृश्य दर्शन का विषय श्रेष्ठ उत्तम ।
यह स्वभाव से देखन जानन हारा है अति सर्वोत्तम ॥
ऐसा कोई विषय न जग में नहीं जानता जो चिद्रूप ।
ऐसा कोई दृश्य न जग में नहीं देखता जो चिद्रूप ॥
एक शुद्ध चिद्रूप ज्ञान में दृष्टित होता भली प्रकार ।
एक शुद्ध चिद्रूप शुद्ध ही ले जाता है भव के पार ॥१०॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

स्मृतेः पर्यायाणामवनिजलभृतामिन्द्रियार्थागसां च ।
त्रिकालानां स्वान्योदित वचनततेः शब्दशास्त्रादिकां ॥
सुतीर्थानामन्नप्रमुखकृतरुजां क्ष्मारुहाणां गुणानां ।
विनिश्चेयः स्वात्मा सुविमलमतिभिर्दृष्टबोधस्वरूपः ॥११॥

अर्थ- जिनकी बुद्धि विमल है स्व और पर का विवेक रखने वाली है उन्हें चाहिये कि वे दर्शन ज्ञान स्वरूप अपनी आत्मा को बाल कुमार युवा आदि अवस्थाओं और क्रोध, मान, माया आदि पर्यायों के स्मरण से पर्वत और समुद्र के ज्ञान से रूप रस गंध आदि इन्द्रियों के विषय और अपने अपराधों के स्मरण से भूत भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों के ज्ञान से अपने पराये वचनों के स्मरण से व्याकरण न्याय आदि शास्त्रों के मनन ध्यान से निर्वाण भूमियों के देखने जानने से शस्त्र आदि से उत्पन्न हुए घावों के ज्ञान से भांति भांति के वृक्षों की पहिचान से और भिन्न भिन्न पदार्थो के भिन्न भिन्न गुणों

है स्वतंत्र अस्तित्व द्रव्य का हो जाता है जब यह ज्ञान।
तब पर में एकत्व ममत्व बुद्धि का हो जाता अवसान ॥

के ज्ञान से पहिचाने ।

११. ॐ ह्रीं स्मरणपर्यारहिताखण्डज्ञानस्वरूपाय नमः ।

शान्तस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

स्वपर विवेक बुद्धि है जिनकी वही जानते हैं **चिद्रूप** ।
दर्शन ज्ञान स्वरूप आत्मा का निर्णय ही है शिवरूप ॥
बाल तरुण वृद्धावस्था अरु क्रोध मान **मायादि कषाय** ।
पर्वत उदधि रूप रस इन्द्रिय **विषय ज्ञान में सारे आय** ॥
आदि आदि पर पदार्थ के गुण भेद **आदि सबको जानो**।
इन सबसे है भिन्न प्रथक चिद्रूप शुद्ध यह **पहचानो** ॥११॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

ज्ञप्त्वा दृक् चिदित ज्ञेया सा रूपं यस्य वर्तते ।
स तथोक्तोन्यद्रव्येण मुक्तत्वात् शुद्ध इत्यसौ ॥१२॥

अर्थ- ज्ञान और दर्शन का नाम चित् है। जिसके यह विद्यमान हो वह चिद्रूप आत्मा कहा जाता है। तथा जिस प्रकार कीट कालिमा आदि अन्य द्रव्यों से रहित सुवर्ण शुद्धसुवर्ण कहलाता है । उसी प्रकार जिस समय यह चिद्रूप समस्त परद्रव्यों से रहित हो जाता है उस समय शुद्धचिद्रूप कहा जाता है। वही शुद्ध चिद्रूप निश्चय से मैं हूं इस प्रकार शुद्धचिद्रूपोऽहं इन छह वर्णो का परिष्कृत अर्थ समझना चाहिये ।

१२. ॐ ह्रीं ज्ञानदर्शनस्वरूपाय नमः ।

शुद्धोऽहम् ।

वीरछंद

ज्ञान और दर्शन ही चित है जहाँ **विद्य है यह चिद्रूप** ।
जैसे कीट कालिमा विरहित होता **शुद्ध स्वर्ण** निज रूप॥
उसी भांति चिद्रूप शुद्ध है भाव **द्रव्य नो कर्म** रहित ।
कंचन सम ये सदा खरा है इसमें हो जाओ परिमित ॥१२॥

नहीं किसी ने भी उत्पन्न किया है मुझे हुआ यह ज्ञान ।
मैं उत्पन्न नहीं कर सकता कभी किसी को पाया ज्ञान ॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

कथ्यते स्वर्णवत् तज्ज्ञैः सोहं नान्योस्मि निश्चयात् ।
शुद्धचिद्रूपोऽहमिति षड्वर्णार्थो निरुच्यते ॥१३॥

१३. ॐ ह्रीं कर्ममलरहितामलचिद्रूपाय नमः ।

चिन्मात्रस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

उसी भांति चिद्रूप शुद्ध भी पर पदार्थ से सदा विहीन ।
वही शुद्ध चिद्रूप स्वयं मैं शुद्ध स्वरूपी ज्ञान प्रवीण ॥
ज्ञान भावना को भाते ही हो जाती है इसकी शुद्धि ।
हो जाती अन्तमुहूर्त्त में अंतर में शिव सुख की वृद्धि ॥१३॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

दृष्टैर्ज्ञातः श्रुतैर्वा विहितपरिचितै र्निंदितः संस्तुतैश्च,
नीतः संस्कारकोटिं कथमपि विकृतिं नाशनं संभवं वै ।
स्थूलैः सूक्ष्मैरजीवैरसुनिकरयुतैः अप्रियै अप्रियैस्तै-
रन्यैर्द्रव्यैर्न साध्यं किमपि मम चिदानन्दरूपस्य नित्यं ॥१४॥

अर्थ- मेरा आत्मा चिदानंद स्वरूप है मुझे परद्रव्यों से चाहे वे देखे हों परिचय में आयें हों बुरे हों भले प्रकार संस्कृत हों विकृत हों नष्ट हों उत्पन्न हों स्थूल हों सूक्ष्म हों जड़ हों चेतन हों , इन्द्रियों को प्रिय हों वा अप्रिय हों कोई प्रयोजन नहीं ।

१४. ॐ ह्रीं स्तुतिनिन्दादिविकल्परहितनित्यस्वरूपाय नमः ।

चिदानन्दस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

मेरा आत्मा चिदानंद चिद्रूप स्वरूप त्रिकाली है ।
पर द्रव्यों से नहीं प्रयोजन निज में महिमा शाली है ॥

अतः नहीं अभिमान मुझे है हीन भाव का नाश हुआ ।
वस्तु स्वरूप ज्ञान करते ही उर में विमल प्रकाश हुआ॥

जड़ चेतन हों सूक्ष्म स्थूल विकृति हों या वे होवें नष्ट।
बुरे भले कैसे भी होवें कोई न मुझसे हैं उत्कृष्ट ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं मैं ही तो आनंद स्वरूप ।
सकल वेदनाओं से विरहित मेरा तो है शुद्ध स्वरूप ॥१४॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

विक्रियाभिरशेषाभिरङ्गकर्मप्रसूतिभिः ।
मुक्तो योऽसौ चिदानन्दो युक्तोऽनन्तदृगादिभिः ॥१५॥

अर्थ- यह चिदानंद शरीर और कर्मो के समस्त विकारों से रहित है और अनंत दर्शन अनंत ज्ञान आदि आात्मिक गुणों से संयुक्त है ।

१५. ॐ ह्रीं अशेषविकाररहितनिर्विकारस्वरूपाय नमः ।

अनन्तगुणस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

देह कर्म के सभी विकारों से विरहित है आत्म स्वरूप ।
अनंत दर्शन ज्ञान आत्मिक गुण युत चिदानंद चिद्रूप ॥
यही शुद्ध चिद्रूप ज्ञानमय मेरे मन को भाया है ।
इसका ही अब ज्ञान हुआ है ये ही मुझे सुहाया है ॥१५॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

आसावनेकरूपोऽपि स्वभावादेकरूपभाग् ।
अगम्यो मोहिनां शीघ्र गम्यो निर्मोहिनां विदां ॥१६॥

अर्थ- यद्यपि यह चिदानंद स्वरूप आत्मा अनेक स्वरूप है तथापि स्वभाव से यह एक ही स्वरूप है जो मूढ़ हैं मोह की श्रृंखला से जकड़े हुए हैं वे इसका जरा भी पता नहीं लगा सकते; परन्तु जिन्होंने मोह को सर्वथा नष्ट कर दिया है वे इसका बहुत जल्दी पता लगा लेते है ।

द्रव्य प्रयोजन भूत क्रिया अपनी अपनी करते प्रत्येक ।
अतः जगत का कोई द्रव्य निरर्थक नहीं जान लो एक ॥

१६. ॐ ह्रीं अचिन्त्यस्वरूपाय नमः ।

एकोऽहम् ।

वीरछंद

चिदानंद चैतन्य आत्मा का स्वरूप है विविध प्रकार ।
निज स्वभाव से एक रूप है इसकी महिमा अपरम्पार ॥
जो जकड़े हैं मोह श्रृंखला से वे नहीं जान पाते ।
जिनने जीता मोह सर्वथा वे ही इसे जान पाते ॥
इसे जानने की विधि केवल तत्त्व ज्ञान में गर्भित है ।
जो चिद्रूप शुद्ध अभिलाषी उसके उर में शोभित है ॥१६॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

चिदरूपोऽयमनाद्यंतः स्थित्युत्पत्तित्तव्ययात्मकः ।
कर्मणाऽस्ति युतोऽशुद्धः शुद्धः कर्मविमोचनात् ॥१७॥

अर्थ- यह चिदानंद स्वरूप आत्मा अनादि अनंत है उत्पाद व्यय और ध्रौव्य तीनों अवस्था स्वरूप है। जब तक कर्मो से युक्त बना रहता है तब तक अशुद्ध और जिस समय कर्मो से सर्वथा रहित हो जाता है उस समय शुद्ध हो जाता है ।

१७. ॐ ह्रीं अनाद्यनन्तचिद्रूपायस्वरूपाय नमः ।

स्वतन्त्रोऽहम् ।

वीरछंद

ये ही आत्मा चिदानंद मय है उत्पाद ध्रौव्य व्यय युक्त ।
एक अनादि अनंत शाश्वत फिर भी अरे कर्म संयुक्त ॥
जब तक कर्म दोष है तब तक यह अशुद्ध कहलाता है।
कर्म रहित जब हो जाता है तभी शुद्ध हो जाता है ॥
पर में परिवर्त्तन करने का लघु विचार भी है अज्ञान ।
इसको छोड़े बिना न होता है चेतन को सम्यक् ज्ञान ॥

गुण वस्तुत्व हेतु से होती सभी प्रयोजन भूत क्रिया ।
नहीं किसी ईश्वर के कारण होती कोई कभी क्रिया ॥

सम्यक् ज्ञान स्वरूप शुद्ध चिद्रूप आत्मा तीनो काल ।
कभी अशुद्ध नहीं होता है रहता शुद्ध सदैव विशाल ॥१७॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

शून्याशून्यस्थूलसूक्ष्मास्तिनास्तिनित्याऽनित्याऽमूर्तिमूर्तित्वमुख्यैः ।
धर्मैर्युक्तोऽप्यन्यद्रव्यैर्विमुक्तः चिद्रूपोयं मानसे मे सदास्तु ॥१८॥

अर्थ- यह चैतन्य स्वरूप आत्मा शून्यत्व अशून्यत्व स्थूलत्व सूक्ष्मत्व अस्तित्व नास्तित्व नित्यत्व अनित्यत्व अमूर्तित्व मूर्तित्व आदि अनेक धर्मो से संयुक्त है और पर द्रव्यों के सम्बन्ध से विरक्त है; इसलिये ऐसा चिद्रूप सदा मेरे हृदय में विराजमान रहो ।

१८. ॐ ह्रीं शून्याशून्यादिधर्मसंपन्ननिजचिद्रूपाय नमः ।

विरागस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

यह चैतन्य स्वरूप आत्मा है अनेक धर्म से युक्त ।
पर धर्मो से सदा रहित है ब्रह्म स्वरूपी गुण संयुक्त ॥
शून्य अशून्य स्थूल सूक्ष्म अस्ति नास्ति या पूर्व अपूर्व ।
पर द्रव्यों से विरत सदा ही निज चिद्रूप रहे उर पूर्व ॥
निज चिद्रूप सुगुण मणि भूषित ज्ञान मात्र करता भगवान।
एक मात्र ज्ञायक का स्वर ही भव वन में है महा महान॥१८॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

ज्ञेयं दृश्यं न गम्यं मम जगति किमप्यस्ति कार्यं न वाच्यं,
ध्येयं श्रव्यं न सभ्यं नच विशदमतेः श्रेयमादेयमन्यत् ।
श्रीमत्सर्वज्ञवाणीजलनिधिमथनात् शुद्धचिद्रूपरत्नं,
यस्माल्लब्धं मयाहो कथमपि विधिनाऽप्राप्तपूर्वं प्रियं च ॥१९॥

अर्थ- भगवान सर्वज्ञ की वाणी रूपी समुद्र के मथन करने से मैंने बड़े भाग्य से शुद्ध

अरहंतों सिद्धों के सम मैं दर्शन ज्ञान स्वभावी जीव ।
सभी जीव हैं दर्शन ज्ञान स्वभावी कोई नहीं अजीव ॥

चिद्रूपरूपी रत्न प्राप्त कर लिया है। और मेरी बुद्धि पर पदार्थो को निज न मानने से स्वच्छ हो चुकी हैं; इसलिये अब मेरे लिये संसार में कोई पदार्थ न जानने लायक रहा और न देखने योग्य, ढूंढने योग्य कहने ध्यान करने योग्य सुनने योग्य प्राप्त करने योग्य आश्रय करने योग्य और ग्रहण करने योग्य ही रहा। क्योंकि यह शुद्ध चिद्रूप अप्राप्त पूर्व पहिले कभी भी प्राप्त न हुआ था ऐसा है और अतिप्रिय है ।

१९. ॐ ह्रीं अपूर्वनिजात्मस्वरूपाय नमः ।

चिद्रूपरत्नस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

श्री सर्वज्ञ देव की वाणी सुनकर किया तत्त्व निर्णय ।
महा भाग्य से परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्त हो गया हृदय ॥
इस जग में अब कोई द्रव्य न रहा जानने के प्रभु योग्य।
नहीं देखने योग्य कोई भी अति प्रिय चिद्रूपी के योग्य॥
जो है योग्य वही चिद्रूप शुद्ध बुद्ध महिमा शाली ।
सावन भादो स्वरस सरसता नित्य यहाँ है दीवाली ॥१९॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

शुद्धश्चिदरूपरूपोहमिति मम दधे मंक्षु चिद्रूपरूपम्,
चिद्रूपेणैव नित्यं सकलमलभिदा तेन चिद्रूपकाय ।
चिद्रूपाद् भूरिसौख्यात् जगतिवरतरात्तस्य चिद्रूपकस्य,
माहात्म्यं वेत्ति नान्यो विमलगुणगणे जातु चिद्रूपके ज्ञात् ॥२०॥

अर्थ- शुद्धचित्स्वरूपी मैं समस्त दोषों के दूर करने वाले चित्स्वरूप के द्वारा चिद्रूप की प्राप्ति के लिये सौख्य के भंडार और परम पावन चिद्रूप से अपने चिद्रूप को धारण करता हूं। मुझसे भिन्न अन्य मनुष्य उसके विषय में अज्ञानी है। इसलिये वह चित्स्वरूप का भले प्रकार ज्ञान नहीं रख सकता और ज्ञान के न रखने से उसके माहात्म्य को न जानकर उसे धारण भी नहीं कर सकता ।

मात्र जानना और देखना और न कोई मेरा काम ।
मुझको अपना ज्ञान हो गया पर कर्त्तृत्व न मेरा काम ॥

२०. ॐ ह्रीं सकलमलरहितविमलचिद्रूपाय नमः ।

अत्यानन्दस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

दोष विनाशक चित्स्वरूप से मैंने प्राप्त किया चिद्रूप ।
जो न इसे धारण कर पाते वे ही रहते हैं विद्रूप ॥
परम सौख्य भंडार परम पावन चिद्रूप शुद्ध मेरा ।
इसको ही धारण करता है यही ध्रौव्य है गुण मेरा ॥
जड़ पुद्गल धन के अधिपति तो इस जग मध्य बहुत सारे।
पर चिद्रूप शुद्ध धन पति तो थोड़े से महिमा धारे ॥२०॥

ॐ ह्रीं भट्टारकज्ञानभूषणविरचितायां तत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपलक्षण प्रतिपादक प्रथमाध्याये सहजानन्दस्वरपाय पूणर्अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्य

छंद पद्धटिका

प्रभु ज्ञान भाव से हो अमुक्त। अज्ञान भाव से सदा मुक्त।
तुम परम शान्ति से हो अमुक्त। तुम हो अशान्ति से सदा मुक्त॥
हो कर्म भाव से आप मुक्त। शिव सुख अपूर्व से हो अमुक्त।
स्वचतुष्टय से हो प्रभु अमुक्त। पर चतुष्टय से हो सदा मुक्त॥
यह भव्य दशा पाऊं नामी । मैं मुक्त अमुक्त बनूं स्वामी ।
चैतन्य प्रभा से हो अमुक्त । भव विभ्रम से हो पूर्ण मुक्त॥

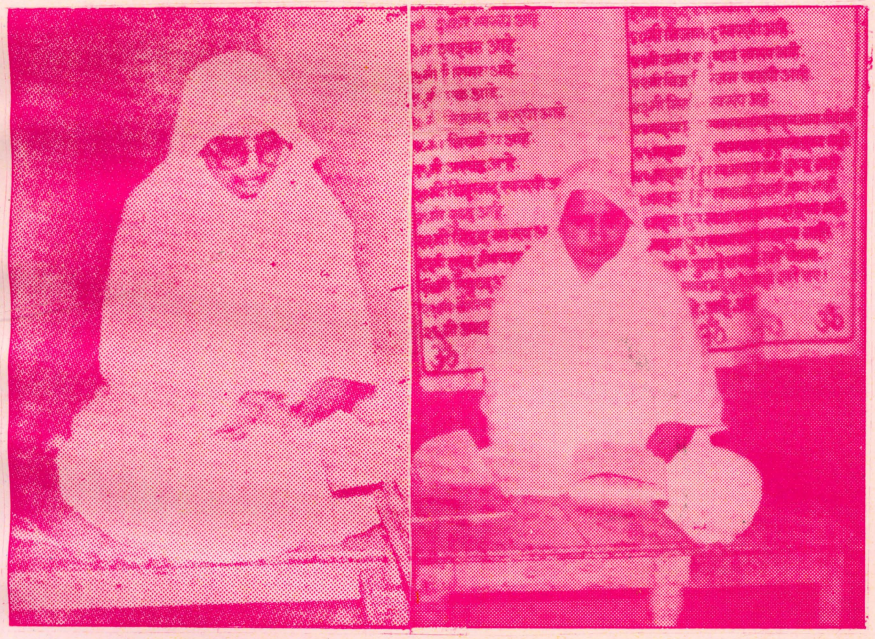
गीत

पूर्ण संयम की दशा आज मैंने पायी है ।
सुखमयी काल लब्धि स्वयं पास आयी है ॥
मैं अनादि से दुखी था स्वभाव को झूला ।
मोह रागादि भाव में ही प्रति समय फूला ॥
मुझे तो आत्म स्वछवि पूर्णतः ही भायी है ।

ॐ

श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी विधान

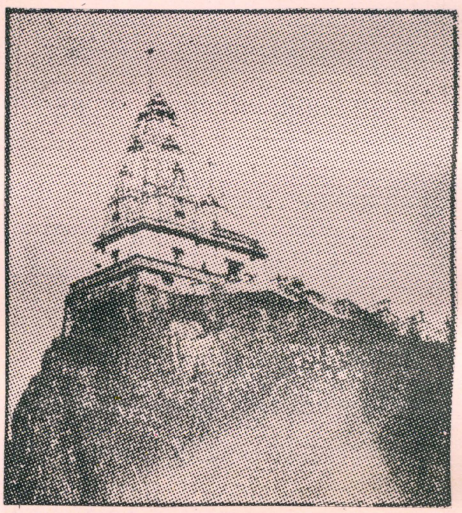
के बीजाक्षर एवं ध्यानसूत्र रचनाकार
स्व. १०८ श्री आचार्य वीरसागर जी महाराज की सुशिष्याएं



श्री क्षुल्लिका श्री सुशीलमति जी एवं क्षुल्लिका श्री सुव्रता जी
फलटण (महाराष्ट्र)

ॐ

श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी विधान



जय तीर्थराज सम्मेदाचल। जय गिरि सुमेरु सम सदा अचल ॥
दर्शन कर मन होता निर्मल। जगते उर भाव परम उज्ज्वल ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः

अतः न मुझको राग द्वेष होता है किसी भांति उत्पन्न ।
नहीं किसी का अवलबंन है पूर्ण स्वावलंबन सम्पन्न ॥

पूर्ण संयम की दशा आज मैंने पायी है ॥
आत्मा आप ही आनंद का विधाता है ।
कर्म जंजाल का ये सर्वदा ही घाता है ॥
गुण अनंतों ने भी इसकी ही महिमा गायी है ।
पूर्ण संयम की दशा आज मैंने पायी है ॥
पुष्प खिलता है पूर्ण ज्ञान प्रभा के बल से ।
सौख्य होता है पूर्ण आत्मा के ही बल से ॥
शुद्ध अनुभव की कृपा से स्वज्योति आयी है ।
पूर्ण संयम की दशा आज मैंने पायी है ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पित करूं जीतूँ सकल विरूप ।
पाऊं महिमा ज्ञान की लखूं शुद्ध चिद्रूप ॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्य नि. ।

जयमाला

ताटंक

ज्ञान भोर की चौखट पर निज वन्दनवार सजाऊंगा ।
निज परिणाम शुद्ध होते ही अनुभव वाद्य बजाऊंगा ॥
भाव शुभाशुभ की रजनी पूरी पूरी ढल जाएगी ।
शुद्ध ज्ञान दर्शन की ऊषा आकर मंगल गाएगी ॥
नाचेगा स्वभाव आंगन में भेद ज्ञान निधि प्रगटाकर ।
निज स्वरूप के दर्शन होंगे मोह तिमिर सब विघटाकर॥
अर्न्तदृष्टि सुनिर्मल होगी प्रगटेगा चैतन्य स्वरूप ।
गुण अनंत गाएंगे निज के गीत देखकर आत्म अनूप ॥
त्रस पर्याय सागरोपम दो सहस अधिकतम मिलती है ।

जब द्रव्यत्व स्वगुण को जाना हुई पराश्रित बुद्धि विनाश।
कर्त्ता बुद्धि विनष्ट हो गई हुआ हृदय में विमल प्रकाश॥

मूलभूल के कारण कलिका नहीं ज्ञान की खिलती है ॥
मूलभूल जब क्षय हो जाती तब ज्ञानाम्बुज खिलता है।
मोक्षमार्ग निष्कंटक अनुपम पुरुषार्थी को मिलता है ॥
जब निर्बैर अद्रोह बुद्धि जगती है तब होता समभाव ।
मोह प्रबल से रहित साम्य भावों का होता है सद्भाव ॥
निज चैतन्य लोक ही शाश्वत क्षणिक विनश्वर है यह लोक ।
अन्तर्नभ में अभी जगा लो ज्ञान भावना का आलोक ॥
व्यसन मुक्त होने पर ही होता है सदाचरण प्रारंभ ।
अणुव्रत भी होता है उत्तम क्षय होता अनादि का दंभ ॥
क्रम क्रम से आगे बढ़ता है पंच महाव्रत धरता है ।
निर्ग्रंथेश महामुनि होता कर्मो की रज हरता है ॥
दर्शन ज्ञान गुणाधिराज महिमामय ऊर्जा का है स्रोत ।
महिमामय त्रैकालिक ध्रुव के अनुभव रस से ओत प्रोत॥

ॐ ह्रीं प्रथम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि.।

आशीर्वाद

परम शुद्ध चिद्रूप की सुनो एक आवाज ।
जो ध्याता चिद्रूप निज हो जाता जिनराज ॥

इत्याशीर्वाद :

भजन

मोह मिथ्यात्व के भावों को क्षय करो चेतन ।
राग द्वेषादि के भावों को जय करो चेतन ॥
अविरति नाश करो शीघ्र ही संयम धारो ।
फिर कषायों को पूर्णतः विजय करो चेतन ॥
गुण अनंतों का कोष है तुम्हारे ही भीतर ।
कर्म फल चेतना को अब विलय करो चेतन ॥

द्रव्य सर्वथा नित्य तथा कूटस्थ मान्यता हुई विलय ।
वस्तु स्वभाव परिणमन लख परिवर्त्तन देख न होता भय॥

ॐ

पूजन क्रमांक ३

तत्त्वज्ञान तरंगिणी द्वितीय अध्याय पूजन

स्थापना

गीतिका

तत्त्व ज्ञान तरगिणी उत्साह पूर्वक मैं पढ़ूँ ।
ध्यान कर चिद्रूप का आनंद से आगे बढ़ूँ ॥
यह द्वितिय अधिकार करता मार्ग दर्शन भावमय ।
ध्यान निज सोर्वत्तम है राग द्वेष अभावमय ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर सवौषट् ।

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद मानव

जब तक है राग रूप जल तब तक ही भाव मरण है ।
निज तत्त्व ज्ञान होते ही मिलती परमात्म शरण है ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा अंतर में प्रभो सजाऊँ ।
ध्रुव धाम लक्ष्य में लेकर अनुभव के वाद्य बजाऊँ ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

जब तक है राग़ भावना भव ज्वर न कभी जाएगा ।
निजगुण शीतल चंदन हो तो राग नहीं आएगा ॥

सदा वस्तु स्थिति न एक सी रहती परिवर्तन होता ।
इसी ज्ञान से पर द्रव्यों के प्रति न राग द्वेष होता ॥

चिद्रूप शुद्ध की महिमा अंतर में प्रभो सजाऊँ ।
ध्रुव धाम लक्ष्य में लेकर अनुभव के वाद्य बजाऊँ ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

जब तक है भोग वासना तब तक ही जीवन क्षत है ।
अपना स्वभाव ही अक्षय पद दाता है अक्षत है ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा अंतर में प्रभो सजाऊँ ।
ध्रुव धाम लक्ष्य में लेकर अनुभव के वाद्य बजाऊँ ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

जब तक है काम वासना तब तक ही मैं पीड़ित हूँ ।
निष्काम भाव जगते ही अपने भीतर सीमित हूँ ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा अंतर में प्रभो सजाऊँ ।
ध्रुव धाम लक्ष्य में लेकर अनुभव के वाद्य बजाऊँ ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

तब तक है क्षुधारोग उर मैं तृप्त नहीं हो सकता ।
अनुभव नैवेद्य मिलें तो क्षय क्षुधा रोग हो सकता ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा अंतर में प्रभो सजाऊँ ।
ध्रुव धाम लक्ष्य में लेकर अनुभव के वाद्य बजाऊँ ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

जब तक मिथ्या भ्रम तम है तब तक ही है अंधियारा ।
जब ज्ञान दीप जलता है तब होता है उजियारा ॥

पर्यायें प्रतिसमय बदलती रहती हैं होता यह ज्ञान ।
क्षय पर्याय मूढ़ता होती हो जाता है सम्यक् ज्ञान ॥

चिद्रूप शुद्ध की महिमा अंतर में प्रभो सजाऊँ ।
ध्रुव धाम लक्ष्य में लेकर अनुभव के वाद्य बजाऊँ ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

जब तक दुर्ध्यान हृदय में तब तक कर्मो का बंधन ।
जब शुक्ल ध्यान होता है तब क्षय होता भव क्रन्दन ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा अंतर में प्रभो सजाऊँ ।
ध्रुव धाम लक्ष्य में लेकर अनुभव के वाद्य बजाऊँ ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

तब तक विष फल खाऊंगा तब तक ही दुख पाऊंगा ।
जब महामोक्ष फल पाऊं तब शाश्वत सुख पाऊंगो। ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा अंतर में प्रभो सजाऊँ ।
ध्रुव धाम लक्ष्य में लेकर अनुभव के वाद्य बजाऊँ ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

अर्घ्यावलि सदा चढ़ाई भवं वर्धक मैंने स्वामी ।
पदवी अनर्घ्य पाने को आया हूँ अन्तर्यामी ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा अंतर में प्रभो सजाऊँ ।
ध्रुव धाम लक्ष्य में लेकर अनुभव के वाद्य बजाऊँ ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

अर्घ्यावलि

द्वितीय अधिकार

शुद्ध चिद्रूप के ध्यान का प्रोत्साहन

क्षय संसार अवस्था होकर सिद्ध दशा हो सकती प्राप्त।
यह विश्वास हृदय में पूरा पूरा हो जाता है व्याप्त ॥

(१)

मृतपिंडेन विनाघटो न न पटस्तंतून् बिना जायते,
धातुर्नेव विना दलं न शकटः काष्ठं बिना कुत्रचित् ।
सत्स्वन्येष्वपि साधनेषु च यथा धांन्यं न बीजं विना,
शुद्धात्मस्मरणं विना किल मुनेर्मोक्षस्तथा नैव च ॥१॥

अर्थ- जिस प्रकार अन्य सामान्य कारणों के रहने पर भी असाधारण कारण मिट्टी के पिंड के विना घट नहीं बन सकता। तंतुओं के बिना पट, खंदक (जिस जगह गेरू आदि उत्पन्न होता है) के बिना गेरू आदि धातु, काठ के बिना गाड़ी और बीज के बिना धान्य नहीं हो सकता। उसी प्रकार जो मुनि मोक्ष के अभिलाषी हैं मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं, वे भी विना शुद्ध चिद्रूप के स्मरण के उसे नहीं पा सकते।

१. ॐ ह्रीं निजानन्दधामस्वरूपाय नमः ।

स्वशुद्धात्मस्वरूपोऽहम् ।

छंद ताटंक

ज्यों साधारण कारण रहने पर असाधारण कारण बिन।
कार्य नहीं उत्पन्नित होता घट ज्यों पिंड़ मृत्तिका बिन ॥
तन्तु बिना पट कभी न बनता खान बिन न धातु उत्पन्न।
काष्ठ बिना गाड़ी ना बनती बीज बिना न धान्य उत्पन्न॥
उसी भांति मुनि सौख्य अभिलाषी देखे अपना निज चिद्रूप।
करे ध्यान स्मरण उसी का तभी प्राप्त हो शुद्ध स्वरूप ॥१॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२)

बीजं मोक्षतरोर्भवार्णवतरी दुःखाटवीपावको,-
दुर्गं कर्मभियां विकल्परजसां वात्यागसां रोधनम् ।
शस्त्रं मोहजये नृणामशुभता पर्यायरोगौषधम्,
चिद्रूपस्मरणं समस्ति च तपोविद्यागुणानां गृहम् ॥२॥

प्रमेयत्व गुण की महिमा से आत्मा का कर सकता ज्ञान।
पाप कर्म तज देता भय से जान रहे अरहंत महान ॥

अर्थ- यह शुद्धचिद्रूप का स्मरण मोक्षरूप वृक्ष का कारण है। संसार रूपी समुद्र से पार होने के लिये नाव है। दुःखरूपी भयंकर बन के लिये दावानल है। कर्मो से भीत मनुष्यों के लिये सुरक्षित सुदृढ़ किला है। विकल्प रूपी रज के उड़ाने के लिये पवन का समूह है। पापों को रोकने वाला है। मोहरूप सुभट के जीतने के लिये शस्त्र है। नरक आदि अशुभपर्याय रूपी रोगों के नाश करने के लिये उत्तम अव्यर्थ औषध है। एवं तप विद्या और अनेक गुणों का घर है।

२. ॐ ह्रीं विकल्परजरहितनिरागसस्वरूपाय नमः ।

निरामयस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

यही शुद्ध चिद्रूप स्मरण मोक्ष वृक्ष का कारण जान ।
भव सागर से पार उतरने को ये ही उत्तम जलयान ॥
दुख रूपी वन भस्म हेतु दावानल की ज्वाला सम है ।
कर्मो से भयभीत मनुज को सुदृढ़ किला सर्वोतम है ॥
पवन समान विकल्प धूल को यह सम्पूर्ण उड़ाता है ।
पापों का अवरोधक मोह सुभट पर यह जय पाता है ॥
नरकादिक पयायों से सर्वथा जीव हो जाता मुक्त ।
तप विद्या आदिक गुण द्वारा गुण अनंत से होता युक्त ॥२॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

क्षत्तृटरुगवातशीतातपजलवचसः शास्त्रराजादिभीभ्यो-
भार्यापुत्रारिनैःस्वनलनिगडवाद्यश्वैरकंटकेभ्यः ।
संयोगायोगदंशिप्रपतनरजसो मानभंगादिकेभ्यो-
जातं दुःखं न विदुमः क्व च पटति नृणां शुद्धचिद्रूपभाजाम् ॥३॥

अर्थ संसार में जीवों को क्षुधा तृषा रोग वात ठंड उष्णता जल कठोरवचन शस्त्र राजा स्त्री पुत्र शत्रु निर्धनता अग्नि बेड़ी गौ भैंस घोड़े धन कंटक संयोग वियोग डांस मच्छर पतन धूलि मानभंग आदि से उत्पन्न हुये अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। परन्तु न मालूम

द्रव्यों में गुण प्रमेयत्व है अतः ज्ञान का विषय सुजान ।
केवलज्ञान सिद्ध होता है प्रमेयत्व गुण से लो जान ॥

जो मनुष्य शुद्धचिद्रूप के स्मरण करने वाले हैं उनके वे दुख कहां विलीन हो जाते हैं?।

३. ॐ ह्रीं क्षुधातृषादिदोषरहितनिर्दोषस्वरूपाय नमः ।

निर्मदस्वरूपोऽहम् ।

क्षुधा तृषादिक रोग कटुकवच शस्त्र नृपति शत्रु संयोग।
निर्धनता मानादि भंग कितने ही हैं संयोग वियोग ॥
ये सारे दुख भी मनुष्य के सब विलीन हो जाते हैं ।
जो चिद्रूप स्मरण करते वे ही बहु सुख पाते है ॥३॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

स कोपि परमानन्दश्चिद्रूपध्यानतो भवेत् ।
तदंशोपि न जायेत त्रिजगत्स्वामिनामपि ॥४॥

अर्थ शुद्ध चिद्रूप के ध्यान से वह एक अद्वितीय और अपूर्व ही आनन्द होता है । जिसका अंश भी तीन जगत के स्वामी इन्द्र आदि को प्राप्त नहीं हो सकता।

४. ॐ ह्रीं परमानन्दचिद्रूपाय नमः ।

ईश्वरस्वरूपोऽहम् ।

एक शुद्ध चिद्रूप ध्यान से होता है अपूर्व आनंद ।
अंश मात्र इन्द्रादिक सुख भी ऐसा होता नहीं अखंड ॥
यदि अखंड सुख की इच्छा हो तो चिद्रूप शुद्ध ध्याओ ।
क्रम क्रम से निज शक्ति प्रगटकर अंतिम क्षण इन को पाओ॥४॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(५)

सौख्यं मोजयोऽशुभास्रवहतिर्नाशोतिदुष्कर्मणा-
मत्यंन्तं च विशुद्धता नरि भवेदाराधानातात्विकी ।
रत्नानां त्रितयं नृजन्म सफल संसारभीनाशनं,
चिद्रूपोहमितिस्मृतेश्च समता सद्भ्यो यशःकीर्त्तिनम् ॥५॥

परद्रव्यों के साथ जान लो मात्र ज्ञेय ज्ञायक संबंध ।
कर्त्ता कर्म आदि अन्य विषयों का कभी नही संबंध ॥

अर्थ- मैं शुद्धचिद्रूप हूं ऐसा स्मरण होते ही नाना प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है । मोह का विजय, अशुभ आस्रव और दुष्कर्मो का नाश, मान्यता, अतिशय विशुद्धता, सर्वोत्तम आराधना सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र रूपी रत्नों की प्राप्ति, मनुष्य जन्म की सफलता, संसार के भय का नाश, सर्वजीवों में समता और सज्जनों के द्वारा कीर्ति का गान होता है ।

५. ॐ ह्रीं संसारभयरहितनिर्भयस्वरूपाय नमः ।

निर्मोहस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

एक शुद्ध चिद्रूप स्मरण होते ही बहु सुख हो पास ।
मोह विजय हो कर्म नाश हो अशुभ आस्रव पूर्ण विनाश॥
अति विशुद्ध तात्त्विक अराधना रत्नत्रय की होती प्राप्ति।
भव भय जाता समता आती कीर्त्ति शान्ति की होती व्याप्ति॥
यशोकीर्त्ति की विजय पताका है चिद्रूप शुद्ध के पास ।
यदि यश पाना है तो इसका ही कर अरे पूर्ण विश्वास ॥५॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

वृत्तं शीलं श्रुतं चाखिलखजयतपोदृष्टिसदभावनाश्च
धर्मो मूलोत्तराख्या वरगुणनिकरा आगसां मोचनं च ।
बाह्यांतः सर्वगत्यजनमपि विशुद्धान्तरङ्गं तदानी-
मूर्मीणां चोपसर्गस्य सहनमभवच्छुद्धचित्संस्थितस्य ॥६॥

अर्थ- जो महानुभाव शुद्ध चिद्रूप में स्थित है, उसके सम्यक्चारित्र शील और शास्त्र की प्राप्ति होती है। इन्द्रियों का विजय होता है। तप सम्यग्दर्शन उत्तम भावना और धर्म का लाभ होता है। मूल और उत्तरगुण प्राप्त होते हैं। समस्त पापों का नाश बाह्य और आभ्यंतर परिग्रह का त्याग, और अन्तरंग विशुद्ध हो जाता है एवं वह नाना प्रकार के उपसर्गो की तरंगों को भी झेल लेता है ।

ज्ञाता और ज्ञेय भिन्न है इसका भी हो जाता ज्ञान ।
सहज ज्ञान होता पदार्थ का आकुलता होती अवसान ॥

६. ॐ ह्रीं उसर्गादिविकल्परहितामरचिद्रूपायनमः ।

ज्ञानादिगुणनिकरोऽहम् ।

जो चिद्रूप शुद्ध में रहते शान्ति शील की होती प्राप्ति ।
इद्रिय विजय भावना उत्तम तप संयम की होती व्याप्ति ॥
उत्तम गुण से पापों का क्षय बाह्याभ्यंतर होती शुद्धि ।
सर्व परिग्रह त्याग सर्व उपसर्ग जयी होता सुवशुद्ध ॥
जब चिद्रूप शुद्ध बल होता तह उपसर्ग जयी होता ।
सर्वपरीषह जय करता है चेतन काल जयी होता ॥६॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

तीर्थेषूत्कृष्टतीर्थं श्रुतिजलधिभवं रत्नमादेयमुच्चैः
सौख्यानां वा निधानं शिवपदगमने वाहनं शीघ्रगामि।
वात्या कर्मोघरेणौ भववनदहने पावकं विद्धि शुद्ध-
चिद्रूपोहं विचारादिति वरमतिमन्नक्षराणां हि षट्कम् ॥७॥

अर्थ ग्रन्थकार उपदेश देते हंकि हे मतिमान् "शुद्धचिद्रूपोऽहं" मैं शुद्ध चित्स्वरूप हूं ऐसा सदा तुझे विचार करते रहना चाहिये। क्योंकि "शुद्धचिद्रूपोऽहं" ये छह अक्षर संसार से पार करने वाले समस्त तीर्थो में उत्कृष्ट तीर्थ हैं। शास्त्ररूपी समुद्र से उत्पन्न हुए ग्रहण करने के लायक उत्तम रत्न हैं। समस्त सुखों के विशाल खजाने हैं। मोक्ष स्थान में ले जाने के लिये बहुत जल्दी चलने वाले वाहन हैं। कर्मरूपी धूलि के उड़ाने के लिये प्रबल प़वन हैं, और संसार रूपी वन के जलाने के लिये जाज्वल्यमान अग्नि हैं।

७. ॐ ह्रीं सौख्यनिधानस्वरूपाय नमः ।

शिवोऽहम् ।

सतत शुद्ध चिद्रूप शुद्ध का जाप सदा करते रहना ।
भव समुद्र में यही मंत्र जप निज में ही बहते रहना॥
सर्वोत्कृष्ट तीर्थ सर्वोत्तम यह दाता है मोक्ष भवन ।
कर्म रूप रज क्षय कर देता भव वन का दावानल बन॥

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के रूप न होता यह जाना ।
तथा एक गुण कभी अन्य गुण रूप नहीं होता माना ॥

कर्म नाश बिन पूर्ण शुद्ध चिद्रूप नहीं होता है प्राप्त ।
कर्म नाश बिन कोई प्राणी कभी नहीं होता है आप्त ॥७॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

क्व यांति कार्यणि शुभाशुभानि क्व यांति संगाश्चिदचित्स्वरूपाः।
क्व यांति रागादय एव शुद्धचिद्रूपकोकहं स्मरणेन विद्मः ॥८॥

अर्थ हम नहीं कह सकते कि "शुद्धचिद्रूपोऽहं" मैं शुद्ध चित्स्वरूप हूं ऐसा स्मरण करते ही शुभ अशुभ कर्म, चेतन अचेतन स्वरूप परिग्रह और राग द्वेष आदि दुर्भाव कहां लापता हो जाते हैं?

८. ॐ ह्रीं शुभाशुभविकल्परहितशुद्धस्वरूपाय नमः ।

निःसङ्गोऽहम् ।

एक शुद्ध चिद्रूप शक्ति का ही स्मरण परम सुखरूप ।
यही शुद्ध चित्स्वरूप अपना ध्यान योग्य है परम अनूप॥
कर्म शुभाशुभ क्षय करता है राग द्वेष दुर्भाव विलय ।
चित्स्वरूप से परिग्रह चेतन और अचेतन होते लय ॥
एक शुद्ध चिद्रूप नाम का जो भी प्राणी करता जाप ।
भव का जाल काट देता है क्षय करता भव का संताप ॥८॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

मेरुः कल्पतरुः सुवर्णममृतं चिंतामणि केवलं-
साम्यं तीर्थकरो यथा सुरगवी चक्री सुरेन्द्रो महान् ।
भूभृद्भूरुहधातुपेयमणिधी, वृत्ताप्तगोमानवा-
मर्त्येष्वेव तथा च चिंतनमिह ध्यानेषु शुद्धात्मनः ॥९॥

अर्थ- जिस प्रकार पर्वतों में मेरु, वृक्षों में कल्पवृक्ष, धातुओं में स्वर्ण, पीने योग्य पदार्थों में अमृत, रत्नों में चिंतामणि रत्न, ज्ञानों में केवलज्ञान, चारित्रों में समतारूप चारित्र,

अगुरुलघुत्व स्वगुण बतलाता द्रव्य स्वंतत्र अखंड महान।
कर्त्ता कर्म बुद्धि क्षय होती हो जाता है निज का ज्ञान ॥

आप्तों में तीर्थकर, गायों में कामधेनु, मनुष्यों में चक्रवर्ती और देवों में इन्द्र, महान और उत्तम हैं। उसी प्रकार ध्यानों में शुद्ध चिद्रूप का ध्यान ही सर्वोत्तम है ।

९. ॐ ह्रीं चैतन्यचिंतामणिस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानामृतस्वरूपोऽहम् ।

श्रेष्ठ वस्तुओं की तुलना ज्यों रत्नों में चिन्तामणि रत्न ।
वृक्षों में है कल्वृक्ष श्रृंगों में मेरु धातु में स्वर्ण ॥
पेय पदार्थो में अमृत है नदियों में गंगा है ज्येष्ठ ।
बेलों में है चित्रा बेल शेष बेल सबकी सब नेष्ठ ॥
ज्ञानों में कैवल्य चरित में समता आप्तों में तीर्थश ।
गायों में है कामधेनु मनुजों में चक्रवर्त्ती राजेश ॥
देवों में है इन्द्र श्रेष्ठ ध्यानों में आत्म ध्यान बलवान ।
एक शुद्ध चिद्रूप ध्यान ही इन सबमें है महा महान ॥९॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

निधानानां प्राप्ति र्न च सुरकुरुहां कमधेनोःसुधाया- ।
सुचिंतारत्नानामसुरसुरनराकाशगेशेंदिराणाम् ।
खभोगानां भोगावनि भवनभुवां चाहमिंद्रादिलक्ष्म्याः-
न सन्तोषं कुर्यादिह जगति यथा शुद्धचिद्रूपलब्धिः ॥१०॥

अर्थ- यद्यपि अनेक प्रकार के निधान (खजाने), कल्पवृक्ष कामधेनु अमृत चिंता मणिरत्न सुर, असुर, नर और विद्याधरों के स्वामियों की लक्ष्मी, भोगभूमियों में प्राप्त इन्द्रियों के भोग और अहमिन्द्र आदि की लक्ष्मी की प्राप्ति भी संसार में संतोष सुख प्रदान करनेवाली हैं। परन्तु जिस प्रकार का संतोष शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति से होता है, वैसा इन किसी से नहीं होता।

१०. ॐ ह्रीं ज्ञानलक्ष्मीस्वरूपाय नमः ।

बोधामृतस्वरूपोऽहम् ।

श्रद्धा गुण चौथे में होता ज्ञान तेरवें में हो पूर्ण ।
सिद्ध अवस्था में होता है प्राणी को चारित्र आपूर्ण ॥

एक शुद्ध चिद्रूप ध्यान से होता जिस प्रकार संतोष ।
ऐसा सुख संतोष किसी से कभी न होता यह गुण कोष॥
कामधेनु अमृत चिन्तामणि कल्पवृक्ष सुर असुर प्रसिद्ध ।
भोग भूमि सुख महिमामय का विविध सौख्य भी विश्व प्रसिद्ध॥
नश्वर सांसारिक सुख पाकर मूढ़ों को होता संतोष ।
एक शुद्ध चिद्रूप शाश्वत संतोषों का पावन कोष ॥१०॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

ना दुर्वर्णो विकर्णो गतनयनयुगो वामनः कुब्जको वा,
छिन्नघ्राणः कुशब्दो, विकलकरयुतो, वागविहीनोऽपि पंगु ।
खंजो निःस्वोऽनधीत श्रुत इह बधिरः कुष्टरोगादियुक्तः
श्लाघ्यः चिद्रूपचिंतापर इतरजनो, नैव सुज्ञानवन्द्यिः ॥११॥

अर्थ- जो पुरुष शुद्धचिद्रूप की चिंता में रत है सदा शुद्धचिद्रूप का विचार करता रहता है। वह चाहे दुर्बल काला-कबरा बूचा अन्धा बौना कुबड़ा नकटा कुशब्द बोनलनेवाला हाथ रहित टोंटा गूंगा लूला गंजा दरिद्र मूर्ख बहरा और कोढ़ी आदि कोई भी क्यों न हों, विद्वानों की दृष्टि में प्रशंसा के योग्य है। सब लोग उसे आदरणीय दृष्टि से देखते हैं। किन्तु अन्य सुन्दर भी मनुष्य यदि शुद्धचिद्रूप की चिंता से विमुख है, तो उसे कोई अच्छा नहीं कहता ।

११. ॐ ह्रीं दुर्वर्णकुशब्दादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शुद्धचिद्घनस्वरूपोऽहम् ।

छंद ताटंक

जो चिद्रूप शुद्ध की चिन्ता में रत है वह ज्ञानी है ।
वही प्रशंसा योग्य जगत में निकट भव्य निज ध्यानी है ॥
वह लंगड़ा हो या लूला हो बहरा हो या हो काना ।
अंधा काला दुबला पतला रोगी हो या दुखियाना ॥

प्रदेशत्व गुण बतलाता प्रत्येक द्रव्य का है आकार ।
सुख दुख का संबंध नहीं है चाहे जैसा हो आकार ॥

पर वह आदरणीय प्रशंसा योग्य बुद्धि का धारी है ।
एक शुद्ध चिद्रूप ध्यान में रत विशुद्ध अविकारी है ॥११॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

रेणूनां कर्मणः संख्या प्राणिनो वेत्ति केवली ।
न वेदमीति क्व यांत्येते; शुद्धचिद्रूपचिंतने ॥१२॥

अर्थ- आत्मा के साथ कितने कर्म की रेणुओं का सम्बन्ध हता है? इस बात की सिवा केवली के अन्य कोई भी मनुष्य गणना नहीं कर सकता। परन्तु न मालूम शुद्धचिद्रूप की चिंता करते ही वे अगणित भी कर्म वर्गणायें कहां लापता हो जाती है ।

१२. ॐ ह्रीं कर्मरेणूसंख्याविकल्परहितज्ञानस्वरूपाय नमः ।

अनन्तगुणैश्वर्यस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

कितनी कर्म रेणुओं का आत्मा से होता है संबंध ।
मात्र जानते श्री केवली आप न जान सकेंगे बंध ॥
जब चिद्रूप शुद्ध की चिन्ता उर में जगती है भरपूर ।
तब ही कर्म वर्गणाएँ आत्मा से हो जाती हैं दूर ॥
सभी कर्म निर्जरित अवस्था को पाकर हो जाते क्षीण ।
ऐसा यह चिद्रूप शुद्ध है एक मात्र है ज्ञान प्रवीण ॥१२॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

तं चिद्रूपं निजात्मान स्मर शुद्धं प्रतिक्षणम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण सद्यः कर्मक्षयोभवेत् ॥१३॥

अर्थ- हे आत्मन्! तू शुद्ध चिद्रूप का प्रतिक्षण स्मरण कर। जिस (शुद्धचिद्रूप) के स्मरण मात्र से शीघ्र ही कर्म नष्ट हो जाते हैं ।

है संसार अवस्था में जीवों का देह प्रमाणाकार ।
सिद्ध दशा में निराकार है पर है आत्म प्रदेशाकार ॥

१३. ॐ ह्रीं कर्मक्षयविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अक्षयस्वरूपोऽहम् ।

कर्म नाश करने में सक्षम एक शुद्ध चिद्रूप महान ।
इसका ही स्मरण करो यह स्वाध्याय निज अधिक प्रधान॥
स्वाध्याय फल जब मिलता है तब चिद्रूप प्रकट होता ।
सांसारिक दुख का सागर भी पूरी तरह विघट होता ॥१३॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

उत्तमं स्मरण शुद्धचिद्रूपोऽहमिति स्मृतेः ।
कदापि क्वापि कस्यापि श्रुतं दृष्टं न केनचित् ॥१४॥

अर्थ- " मैं शुद्धचिद्रूप हूं" ऐसा स्मरण ही सर्वोत्तम स्मरण माना गया है। क्योंकि उससे उत्तम स्मरण कहीं भी किसी भी स्थान पर न हुआ न सुना और न देखा ।

१४. ॐ ह्रीं ब्रह्मधामस्वरूपाय नमः ।

निजबोधधामस्वरूपोऽहम् ।

छंद ताटंक

मैं ही हूँ चिद्रूप शुद्ध सर्वोत्तम यह स्मरण करो ।
इससे उत्तम नहीं स्मरण यह सदैव चिन्तवन करो ॥
प्रतिपल प्रतिक्षण सतत अनवरत ध्याओ अब शुद्धात्म स्वरूप।
यही शुद्ध चिद्रूप श्रेष्ठ है मंगलमयी महान अनूप ॥१४॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

शुद्धचिद्रूपसदृशं ध्येयं नैव कदाचन ।
उत्तमं क्वापि कस्यापि भूतमस्ति भविष्यति ॥१५॥

अर्थ- शुद्ध चिद्रूप के समान उत्तम और ध्येय ध्यान योग्य पदार्थ न कहीं हुआ, हैं न होगा इसलिये शुद्धचिद्रूप का ही ध्यान करना चाहिये ।

धर्म अधर्म काल नभ का आकार प्रदेशों के अनुसार ।
प्रदेशत्व गुण सब द्रव्यों में हम न बना सकते आकार ॥

१५. ॐ ह्रीं भूतभविष्यादिकालविकल्परहितचिद्रूपाय नमः ।

मंगलस्वरूपोऽहम् ।

इस समान उत्तम न कहीं है और न होता यह मानो ।
यही शुद्ध चिद्रूप ध्येय है ध्यान योग्य ये ही जानो ॥
सर्वोत्तम सर्वोच्च स्वपद का धारी है महान चिद्रूप ।
यही शुद्ध है यही बुद्ध है यही नियम है आत्म स्वरूप ॥१५॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

ये याता यांति यास्यन्ति योगिनः शिवसंपदं ।
समासाद्यैव चिद्रूपं शुद्धमानंदमंदिरम् ॥१६॥

अर्थ- जो योगी मोक्ष नित्यानंद रूपी सम्पत्ति को प्राप्त हुए होते हैं, और होंगे, उसमें शुद्धचिद्रूप की आराधना ही कारण है। बिना शुद्धचिद्रूप की भले प्रकार आराधना के कोई मोक्ष नित्यानंद नहीं प्राप्त कर सकता। क्योंकि यह शुद्ध चिद्रूप ही आनंद प्रदान करने वाला है ।

१६. ॐ ह्रीं शुद्धानन्दमन्दिरस्वरूपाय नमः ।

शिवसंपत्तिस्वरूपोऽहम् ।

जो भी योगी मोक्ष संपदा पाते आगे पाएंगे ।
वे चिद्रूप शुद्ध आराधन करके ही शिव जाएंगे ॥
बिना शुद्ध चिद्रूप मोक्ष मंदिर की होती प्राप्ति नहीं ।
बिना शुद्ध चिद्रूप नित्य आनंद पूर्ण की व्याप्ति नहीं ॥१६॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

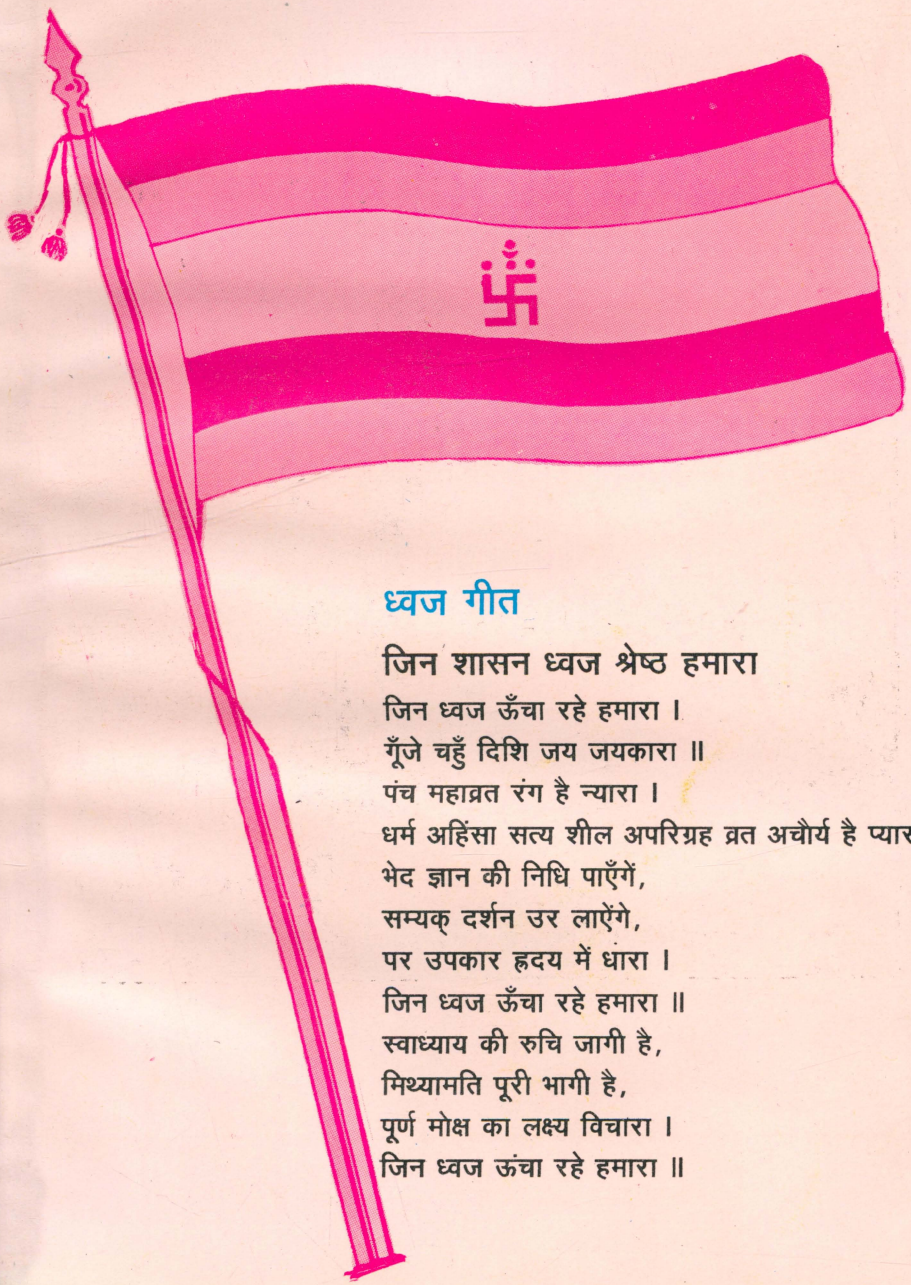
(१७)

द्वादशांगं ततो बाह्यं श्रुतं जिनवरोदितम् ।
उपादेयता शुद्धचिदरूपस्तत्र भाषितः ॥१७॥

अर्थ- भगवान जिनेन्द्र ने अंग प्रविष्ट (द्वादशांग) और अंग बाह्य दो प्रकार के शास्त्रों

ॐ

श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी विधान



ध्वज गीत

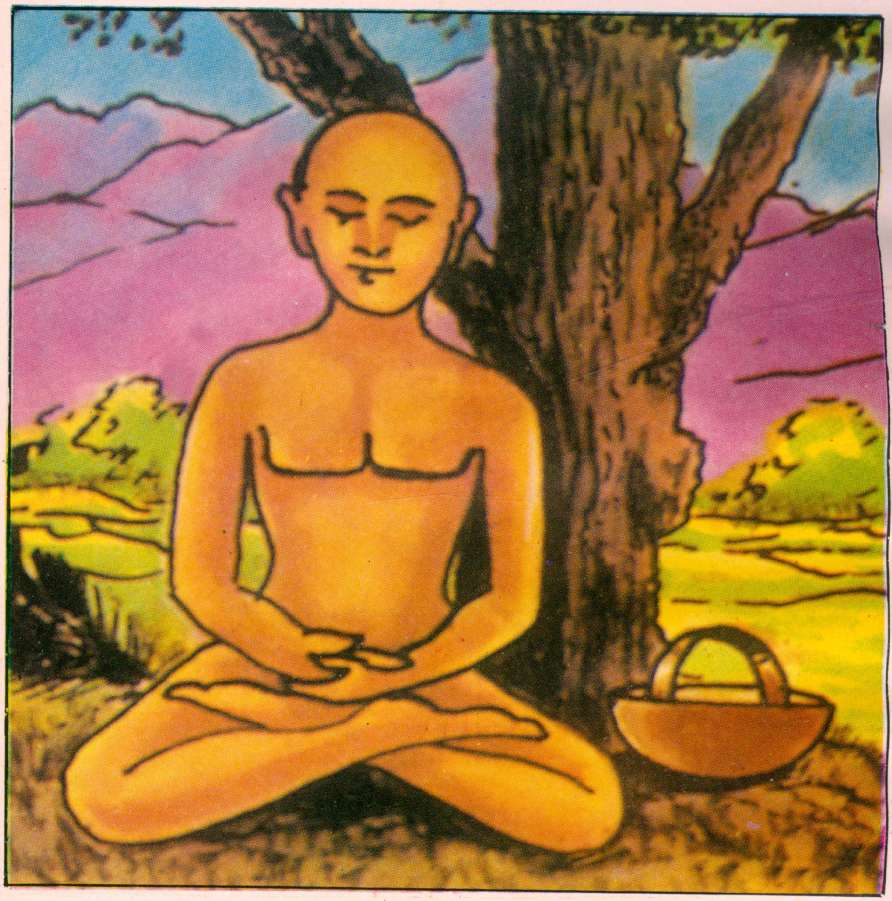
जिन शासन ध्वज श्रेष्ठ हमारा

जिन ध्वज ऊँचा रहे हमारा ।
गूँजे चहुँ दिशि जय जयकारा ॥
पंच महाव्रत रंग है न्यारा ।
धर्म अहिंसा सत्य शील अपरिग्रह व्रत अचौर्य है प्यारा ॥
भेद ज्ञान की निधि पाएँगें,
सम्यक् दर्शन उर लाऐंगे,
पर उपकार हृदय में धारा ।
जिन ध्वज ऊँचा रहे हमारा ॥
स्वाध्याय की रुचि जागी है,
मिथ्यामति पूरी भागी है,
पूर्ण मोक्ष का लक्ष्य विचारा ।
जिन ध्वज ऊंचा रहे हमारा ॥

ॐ

श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी विधान

तत्त्वज्ञान तरंगिणी के रचनाकार



आचार्य भट्टारक श्री ज्ञान भूषण जी महाराज

समयावधि पंद्रहवीं शताब्दी

सबके ही आकार प्रथक हैं यही जान हों ज्ञानालीन ।
सर्व मान्यतायें मिथ्या तज हो जायें हम ज्ञान प्रवीण ॥

का प्रतिपादन किया है। इन शास्त्रों में यद्यपि अनेक पदार्थों का वर्णन किया है। तथापि वे सब हेय (त्यागने योग्य) कहें हैं और उपादेय (ग्रहण करने योग्य) शुद्धचिद्रूप को बतलाया है ।

१७. ॐ ह्रीं द्वादशाङ्गश्रुतविकल्परहिताखण्डबोधस्वरूपाय नमः ।

परिपूर्णज्ञानस्वरूपोऽहम् ।

श्री जिनवर ने द्वादशांग अरु बाह्य अंग का कथन कहा।
उपादेय चिद्रूप शेष सब ही पदार्थ को हेय कहा ॥
हेय त्याग कर उपादेय को ग्रहण करो विवेक पूर्वक ।
नित्य शुद्ध चिद्रूप तुम्हारा ध्याओ इसे ज्ञान पूर्वक ॥१७॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानाद् गुणाः सर्वे भवंति च ।
दोषाः सर्वे विनश्यंति शिवसौख्यं च संभवेत् ॥१८॥

अर्थ- शुद्धचिद्रूप का भले प्रकार ध्यान करने से समस्त गुणों की प्राप्ति होती है राग द्वेष आदि दोष नष्ट हो जाते है और निराकुलता रूप मोक्ष सुख मिलता है ।

१८. ॐ ह्रीं शिवसौख्यस्वरूपाय नमः ।

अनाकुलसुखस्वरूपोऽहम् ।

भली भांति चिद्रूप शुद्ध का ध्यान परम गुणधारी है ।
राग द्वेष सब क्षय करता है ये ही शिव सुखकारी है ॥
परम शुद्ध चिद्रूप निर्विकारी भावों से हैं ओतः प्रोत ।
शान्ति सौख्य का सिन्धु यही है अनुभव रस का पावन स्रोत॥१८॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

चिद्रूपेण च घातिकर्महननाच्छुद्धेन धाम्ना स्थितम्,
यस्मादत्र हि वीतरागवुषो नाम्नापि नुत्यादि च ।

जीव अजीव आस्रव संवर बंध निर्जरा मोक्ष प्रधान ।
यही प्रयोजन भूत तत्त्व हैं सात इन्हें लो पूरा जान ॥

तद्बिंबस्य तदोकसो झगिति तत्काराय कस्यापि च,
सर्वं गच्छति पापमेति सुकृतं तत्स्य किं नो भवेत् ॥१९॥

अर्थ- शुद्धचिद्रूप से ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अंतरायरूप घातिया कर्मो का नाश हो जाता है। क्योंकि वीतराग शुद्धचिद्रूप का नाम लेने से उनकी स्तुति करने से तथा उनकी मूर्ति और मंदिर बनवाने से ही जब समस्त पाप दूर हो जाते हैं और अनेक पुण्यों की प्राप्ति होती है, तब उनके ध्यान करने से तो मनुष्य को क्या उत्तम फल प्राप्त न होगा? अर्थात् शुद्धचिद्रूप का ध्यानी मनुष्य उत्तम से उत्तम फल प्राप्त कर सकता है ।

१९. ॐ ह्रीं विरागवपुषस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानोकसस्वरूपोऽहम् ।

एक शुद्ध चिद्रूप ध्यान से घाति कर्म क्षय हो जाते ।
मात्र नाम लेने से सारे पुण्य चरण में आ जाते ॥
जिन गृह प्रतिमा बनवाने से अघ क्षय होते होता पुण्य ।
उससे अधिक ध्यान शुद्ध चिद्रूपी से होता है पुण्य ॥१९

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

कौऽसौ गुणोस्ति भुवने न भवेत्तदा यो-
दोषोऽथवा क इह यस्त्वरितं न गच्छेत् ।
तेषां विचार्य कथयंतु बुधाश्च शुद्ध-
चिद्रूपकोऽहमिति ये यमिनः स्मरन्ति ॥२०॥

अर्थ- ग्रन्थकार कहते हैं प्रिय विद्वानों ! आप ही विचार कर कहें। जो मुनिगण मै शुद्धचिद्रूप हूं ऐसा स्मरण करने वाले हैं उन्हें कौन से तो वे गुण हैं जो प्राप्त नहीं होते और कौन से वे दोष हैं, जो उनके नष्ट नहीं होते। अर्थात् शुद्धचिद्रूप के स्मरण करने वालों को समस्त गुण प्राप्त हो जाते हैं, और उनके सब दोष दूर हो जाते हैं ।

२०. ॐ ह्रीं सकलदोषरहितचैतन्यगुणनिधिस्वरूपाय नमः ।

अनघस्वरूपोऽहम् ।

ज्ञानानंद स्वभावी आत्मा को ही जीव तत्त्व कहते ।
दर्शन ज्ञान स्वभाव रहित पांचों को ही अजीव कहते ॥

वीरछंद

जो मुनि करते परम शुद्ध चिद्रप स्मरण बारंबार ।
अघ क्षय होते कोई गुण उनसे न दूर रहता अविकार ॥
इसी शुद्ध चिद्रूप स्मरण से अनंत गुण होते प्राप्त ।
स्मृत निज चिद्रूप शुद्ध का धारी हो जाता है आप्त॥२०॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२१)

तिष्ठंत्वेकत्र सर्वे वरगुणनिकराः सौख्यदानेऽतिदृप्ताः,
संभूयात्यंतरम्या वरविधिजनिता ज्ञानजायां तुलायाम् ।
पार्श्वेन्यस्मिन् विशुद्धा हूयुपविशतु वरा केवला चेति शुद्ध-
चिद्रूपोऽहं स्मृतिर्भो कथमपि विधिना तुल्यतां ते न यांति ॥२१॥

अर्थ- ज्ञान को तरजू की कल्पना कर उसके एक पलड़े में समस्त उत्तमोत्तम गुण, जो भांति भांति के सुख प्रदान करने वाले हैं अत्यन्तरम्य और भाग्य से प्राप्त हुये हैं, इकट्ठे कर रक्खे। और दूसरे पलड़े में अतिशय विशद्ध केवल मैं शुद्धचिद्रूप हूं ऐसी स्मृति को रक्खे । तब भी वे गुण शुद्ध चिद्रूप की स्मृति की तनिक भी तुलना नहीं कर सकते।

२१. ॐ ह्रीं चैतन्यगुणनिकरस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानतुलास्वरूपोऽहम् ।

छंद ताटंक

ज्ञान तुला से तोलो तो जितने गुण हैं वे एक तरफ ।
परम शुद्ध चिद्रूप अतुल है उसे रखो तुम एक तरफ ॥
एक शुद्ध चिद्रूप स्मरण सभी गुणों से भारी है ।
सादि अनंत सौख्य दाता है पूर्णतय शिवकारी है ॥२१॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२२)

तीर्थतां भूः पदैः स्पृष्टा नाम्ना योऽघचयः क्षयम् ।
सुरौघो यांति दासत्वं शुद्धचिद्रक्तचेतसाम् ॥२२॥

राग द्वेष मोहादि विकारों का आना ही आस्रव तत्त्व ।
रागादिक का आत्मा में रुक जाना ही है बंध जु तत्त्व ॥

अर्थ- जो महानुभाव शुद्धचिद्रूप के धारक है उसके ध्यान में अनुरक्त हैं उनके चरणों से स्पर्श की हुई भूमि तीर्थ अनेक मनुष्यों को संसार से तारनेवाली हो जाती है, उनके नाम के लेने से समस्त पापों का नाश हो जाता है और अनेक देव उनके दास हो जाते है ।

२२. ॐ ह्रीं अघच-रहितनिरघचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानपुञ्जस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

जो चिद्रूप शुद्ध के धारक उसमें ही रहते अनुरक्त ।
उनकी चरण धूल भी हो तो तीर्थ समान महान पवित्र ॥
नाम मात्र उनका लेने से पापों का हो जाता नाश ।
देव चरण में आ जाते हैं हो जाते हैं उनके दास ॥२२॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२३)

शुद्धस्य चित्स्वरूपस्य शुद्धोन्योऽन्यस्य चिंतनात् ।
लोहं लोहाद् भवेत्पात्रं सौवर्ण च सुवर्णतः ॥२३॥

अर्थ- जिस प्रकार लोह से लोहे का पात्र स्वर्ण से स्वर्ण का पात्र बनता है उसी प्रकार शुद्ध चिद्रूप की चिंता करने से आत्मा शुद्ध चिद्रूप के ध्यान से शुद्ध और अशुद्ध चिद्रूप के ध्यान से अशुद्ध होता है ।

२३. ॐ ह्रीं ज्ञानकंचनस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानभूषणस्वरूपोऽहम् ।

जिस प्रकार लोहे से लोहा सोने से सोने का पात्र ।
उस प्रकार चिद्रूप शुद्ध से प्राणी हो जाता सत्पात्र ॥
यदि अशुद्ध का ध्यान करेगा तो अशुद्धि ही पाएगा ।
बिना शुद्ध चिद्रूप ध्यान के शुद्ध नहीं हो पाएगा ॥२३॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

कर्मो का आना रुक जाना ही कहलाता संवर तत्त्व ।
यह सातों ही तत्व जानने योग्य आश्रय योग्य स्वतत्त्व ॥

(२४)

मग्ना ये शुद्धचिद्रूपे ज्ञानिनो ज्ञानिनो पि ये ।
प्रमादिनः स्मृतो तस्य तेपि मग्ना विधेर्वशात् ॥२४॥

अर्थ- जो शुद्धचिद्रूप के ज्ञाता है वे भी उसमें मग्न है। और जो उसके ज्ञाना होने पर भी उसके स्मरण करने में प्रमाद करनेवाले है वे भी उसमें मग्न हैं। अर्थात् स्मृति न होने पर भी उन्हें शुद्धचिद्रूप का ज्ञान ही आनन्द प्रदान करनेवाला है ।

२४. ॐ ह्रीं प्रमादरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरालसोऽहम् ।

जो ज्ञाता चिद्रूप शुद्ध रत उसमें ही रहते हैं मग्न ।
स्मृति निर्बल हो तो भी वे ज्ञानानंद पाते हो मग्न ॥
परम शुद्ध चिद्रूप ज्ञान ही तो आनंद प्रदाता है ।
भरा हुआ है सुख समुद्र इसमें यह शिवसुख दाता है ॥२४॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२५)

सप्तधातुमयं देहं मलमूत्रादिभाजनम् ।
पूज्यं कुरु परेषां हि शुद्धचिद्रूपचिन्तनात् ॥२५॥

अर्थ- यह शरीर रक्त वीर्य मज्जा आदि सात धातु स्वरूप है । मलमूत्र आदि अपवित्र पदार्थो का घर है; इसलिये उत्तम पुरुषों को चाहिये कि वे इस निकृष्ट और अपवित्र शरीर को भी शुद्ध चिद्रूप की चिंता से दूसरों के द्वारा पूज्य और पवित्र बनावें ।

२५. ॐ ह्रीं मलमूत्रादिभाजनरूपदेहरहितचिद्रूपाय नमः ।

पवित्रचिद्रूपोऽहम् ।

देह महा अपवित्र अशुद्ध पदार्थो से होती उत्पन्न ।
किन्तु शुद्ध चिद्रूप ध्यान से हो पवित्रता से सम्पन्न ॥
परम पवित्र ज्ञान गुण मंडित परम शुद्ध चिद्रूप अमंद ।
इसके ध्यान मात्र से होता क्षय आठों कर्मो का द्वंद ॥२५॥

आस्रव बंध हेय हैं पूरे तत्व अजीव सर्वथा ज्ञेय ।
जीव तत्व आश्रय से सुख है अतः यही है उत्तम ध्येय ॥

ॐ ह्रीं भट्टारकज्ञानभूषणाविरचितायां तत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्ध चिद्रूपध्यानोत्साहसंपादक द्वितीयाध्याये ज्ञानार्णवस्वरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्य

सरसी

भेद ज्ञान की वीणा बाजी स्वपर विवेक जगा ।
जान बचाकर महा दुष्ट मिथ्यात्व तुरंत भगा ॥
सप्त तत्त्व श्रद्धान पूर्वक तत्त्व प्रतीति हुई ।
सम्यक् दर्शन पाया उर में पाया मीत सगा ॥
शुद्ध आत्मा में अनंत गुण निर्मल दरशाए ।
मुक्ति प्राप्त के लिए आत्मा निज में चलने लगा ॥
निज उपवन को निरख निरख हर्षित है चेतनराज ।
अनुभव रस से अपना चेतन अपने आप पगा ॥
है एकत्व विभक्त आत्मा दर्शन ज्ञान स्वरूप ।
अपना शाश्वत सुख पाने को शुद्ध भाव उमगा ॥
परम शुद्ध चिद्रूप लक्ष्य में जो भी लेता है ।
वह न भूल कर निज स्वभाव से तिलभर कभी चिगा ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पण करूं देखूँ शुद्ध स्वरूप ।
परम शुद्ध चिद्रूप ही है मेरा निज रूप ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्यं नि. ।

जयमाला

छंद विधाता

शुद्ध चिद्रूप के ही ध्यान का उत्साह अब जागे ।
मोह रागादि भावों का सैन्य दल प्रभु त्वरित भागे ॥
ज्ञान की ही तरंगें हों तत्त्व का ज्ञान हो उर में ।
राग से दूर हो जाऊँ गमन हो शुद्ध निजपुर में ॥

संवर तथा निर्जरा सुख के कारण उपादेय इकदेश ।
मोक्ष पूर्ण सुख रूप अतः है उपादेय सर्वथा हमेश ॥

मेरा साहस अतुल है प्रभु आत्म पुरुषार्थ से है युक्त ।
शून्य पर द्रव्य से हैं यह द्रव्य पर से सदा ही मुक्त ॥
शुद्ध चैतन्य का सागर अनंतों गुण सहित निरुपम ।
वासना है नहीं उर में शुद्ध भावों में हूँ सक्षम ॥
शुद्ध चिद्रूप में चेतन स्वयं को यदि लगाएगा ।
शुद्ध चिद्रूप का आनंद फिर उर में समाएगा ॥
फागुनी पूर्णिमा का पति इन्द्र धनुषी हैं गुण सारे ।
पूर्ण हूँ साम्यभावों से ज्ञान दर्शन हृदय धारे ॥

ताटंक

जगमग जगमग दीप जगाओ झिलमिल झिलमिल ज्योति जगे।
महामोह मिथ्यात्व तिमिर सम्पूर्ण सदा को त्वरित भगे ॥
निज स्वभाव परिणति जब आए राग द्वेष के भाव हरे ।
यह विभाव परिणति सागर तल में जाकर विश्राम करे ॥
निज स्वभाव की पावन धुन में यह निजात्मा सदा लगे ।
परम अनंत चतुष्टय बोला शुद्ध संयमित भाव सगे ॥
निज चैतन्य शक्ति जागी है दुख सारे क्षय करने को ।
गुण अनंत भी मिले मार्ग में कर्म अष्ट संपूर्ण भगे ॥

ॐ ह्रीं द्वितीय अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

परम शुद्ध चिद्रूप की महिमा अपरंपार ।
जो चिद्रूप संवारते हो जाते भव पार ॥

इत्याशीर्वाद :

तथा दूसरे जीव तत्व भी मुझको तो हैं केवल ज्ञेय ।
मेरा अपना जीव तत्व ही मुझको उपादेय है श्रेय ॥

ॐ

पूजन क्रमांक ४

तत्त्वज्ञान तरंगिणी तृतीय अध्याय पूजन

स्थापना

गीतिका

तत्त्वज्ञान तरंगिणी का यह तृतिय अधिकार है ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति शिव सुखकार है ॥
इसे पाने का उपाय महान उर में नित करूं ।
गुण अनंतानंत निज चिद्रूप के पा हित करूं ॥

ॐ ह्रीं तृतीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं तृतीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं तृतीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

विधाता

निजानंदी स्वजल पाऊं यही आशीष दो स्वामी ।
जन्म मरणादि पीड़ा नाश कर बन जाऊं गुण धामी ॥
शुद्ध चिद्रूप का आनंद मेरे मन को भाया है ।
अनंतों गुणों का सागर नाथ अब मैंने पाया है ॥

ॐ ह्रीं तृतीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

जीव अजीव तत्व सामान्य कहाता है जिन आगम में ।
आस्रवादि पांचों इनके ही हैं विशेष जिन आगम में ॥

निजानंदी स्वचंदन ही परम शीतल स्वभावी है ।
द्रव्य पर से नही मतलब यही भव ज्वर अभावी है ॥
शुद्ध चिद्रूप का आनंद मेरे मन को भाया है ।
अनंतों गुणों का सागर नाथ अब मैंने पाया है ॥

ॐ ह्रीं तृतीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

निजानंदी स्वअक्षत की सकल महिमा मिली मुझको ।
स्व पद अक्षय अनूठे की सुरभि उर मे झिली मुझको ॥
शुद्ध चिद्रूप का आनंद मेरे मन को भाया है ।
अनंतों गुणों का सागर नाथ अब मैंने पाया है ॥

ॐ ह्रीं तृतीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

निजानंदी कुसुम पाकर प्रफुल्लित है हृदय मेरा ।
कामपीड़ा विनाशक है स्वभावी निज निलय मेरा ॥
शुद्ध चिद्रूप का आनंद मेरे मन को भाया है ।
अनंतों गुणों का सागर नाथ अब मैंने पाया है ॥

ॐ ह्रीं तृतीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

निजानंदी सुचरु पाकर तृप्त मैं हो गया स्वामी ।
क्षुधा का रोग क्षय करके बना परिपूर्ण गुणधामी ॥
शुद्ध चिद्रूप का आनंद मेरे मन को भाया है ।
अनंतों गुणों का सागर नाथ अब मैंने पाया है ॥

ॐ ह्रीं तृतीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

जीव अजीव अनादि अनंत तत्व दोनों ही पहचानो ।
आस्रव बंध अनादि सांत हैं तत्त्व अपेक्षा से जानो ॥

निजानंदी स्वपर है ज्ञान मेरे पास ज्योतिर्मय ।
मोह मिथ्यात्व से विरहित सदा ही पूर्ण शिव सुखमय ॥
शुद्ध चिद्रूप का आनंद मेरे मन को भाया है ।
अनंतों गुणों का सागर नाथ अब मैंने पाया है ॥

ॐ ह्रीं तृतीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

निजानंदी सजग मेरा स्वभावी भाव है अपना ।
जलाऊं धूप कर्मो की करूं संसार सब सपना ॥
शुद्ध चिद्रूप का आनंद मेरे मन को भाया है ।
अनंतों गुणों का सागर नाथ अब मैंने पाया है ॥

ॐ ह्रीं तृतीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्ट कर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

निजानंदी महा शिव फल स्वभावी भाव से मिलता ।
मुक्ति का सौख्य अम्बुज भी स्वयं की शक्ति से खिलता॥
शुद्ध चिद्रूप का आनंद मेरे मन को भाया है ।
अनंतों गुणों का सागर नाथ अब मैंने पाया है ॥

ॐ ह्रीं तृतीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

निजानंदी मिला है अर्घ्य अब पर पद नहीं भाता ।
शाश्वत पद अनर्घ्य अपना सतत ध्रुव सौख्य विख्याता ॥
शुद्ध चिद्रूप का आनंद मेरे मन को भाया है ।
अनंतों गुणों का सागर नाथ अब मैंने पाया है ॥

ॐ ह्रीं तृतीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

सवर और निर्जरा दोनों सादि सान्त हैं यह जानो ।
सादि अनंत स्वमोक्ष तत्व है दृढ़ श्रद्धा उर में आनो ॥

अर्घ्यावलि

तृतीय अध्याय

शुद्ध चिद्रूप कगे प्राप्ति के उपायों का वर्णन

(१)

जिनेशस्य स्नानात् स्तुतियजनजपान्मंदिरार्चाविधान्नाः
च्चतुर्धादानाद्वाध्ययनखजयतोध्यानतः संयमाच्च ।
व्रताच्छीलातीर्थादिकगमनविधेः क्षांतिमुख्यप्रधर्मात्,
क्रमाच्चिद्रूपाप्ति भवति जगति ये वांछकास्तस्य तेषांम् ॥१॥

अर्थ- जो मनुष्य शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति करना चाहते हैं उन्हें जिनेन्द्र का अभिषेक करने से उनकी स्तुति पूजा जप करने से, मंदिर की पूजा और उसके निर्माण से आहार औषध अभय और शास्त्र चार प्रकार के दान देने से शास्त्रों के अध्ययन से इंद्रियों के विजय से ध्यान से संयम से व्रत से शील से तीर्थ आदि में गमन करने से और उत्तम क्षमा आदि धर्मो के धारने से शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति होती है ।

१. ॐ ह्रीं दानपूजादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अतीन्द्रियानंदस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

जो मनुष्य चिद्रूप शुद्ध की प्राप्ति चाहते कर लें प्राप्त ।
जिन अभिषेक जिनस्तुति पूजा चार दान दें ध्याएँ आप्त॥
शास्त्रों का अध्ययन करें नित इन्द्रिय विजयी बनें समर्थ।
संयम शील तीर्थ तप ध्यानादिक में लीन रहें है अर्थ ॥
आत्म धर्म धारण करने से क्रमशः होता है सद्धर्म ।
शुद्ध परम चिद्रूप प्राप्ति के ये सब साधक है सत्कर्म ॥१॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

मिथ्यात्व तथा अविरति प्रमाद अथवा कषाय अरु योग सभी।
ये पांचों ही प्रत्यय बाधक है मोक्ष सौख्य के घातक ही ॥

(२)

देवं श्रुतं गुरुं तीर्थं भदंतं च तदाकृतिम् ।
शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानहेतुत्वाद् भजते सुधीः ॥२॥

अर्थ-देव शास्त्र गुरु तीर्थ और मुनि तथा इन सबकी प्रतिमा शुद्ध चिद्रूप के ध्यान में कारण हैं। बिना इनकी पूजा सेवा किये शुद्धचिद्रूप की ओर ध्यान जाना सर्वथा दुःसाध्यहै इसलिये शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति के अभिलाषी विद्वान् अवश्य देव आदि की सेवा उपासना करते हैं।

२. ॐ ह्रीं ध्यानहेतुरूपदेवश्रुतादिविकल्परहितनिजचिद्रूपाय नमः ।

निर्विकल्पोऽहम् ।

देव शास्त्र गुरु तीर्थ वन्दना मुनियों का करना गुणगान।
ये सब कारण परम शुद्ध चिद्रूप ध्यान में श्रेष्ठ महान ॥
देव धर्म गुरु स्वाध्याय संयम तप तीर्थयात्रा दान ।
प्रथम भूमिका में ही कारण हैं ये षट है कर्त्तव्य प्रधान ॥२॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

अनिष्टान् खह्रदामर्थानिष्टानपि भजेत्यजेच् ।
शुद्धचिद्रूपसद्ध्याने सुधीर्हेतूनहेतुकान् ॥३॥

अर्थ- शुद्धचिद्रूप के ध्यान करे समय इंद्रिय और मन के अनिष्ट भी पदार्थ यदि उसकी प्राप्ति में कारण स्वरूप पडे तो उनका आश्रय कर लेना चाहिये। और इंद्रिय मन को इष्ट होने पर भी यदि वे उसकी प्राप्ति में कारण न पड़े बाधक पड़े तो उन्हें सर्वथा छोड़ देना चाहिए ।

३. ॐ ह्रीं इष्टानिष्टेन्द्रियविषयविकल्परहितनिजचिद्रूपाय नमः ।

साम्यचिद्रूपोऽहम् ।

इष्ट अनिष्ट पदार्थ जगत के प्रिय अप्रिय जो भी पाओ।
जो चिद्रूप प्राप्ति में कारण हो उसको ही अपनाओ ॥

नैराश्य गगन से बहुत दूर आशा कानभमंडल महान ।
मिथ्यात्व आदि से विमुख सदा करता है मोह विजय महान ॥

अगर इष्ट बाधक है तो तुम उसे छोड़ दो तत्क्षण ही ।
अगर अनिष्ट तनिक भी साधक उसे संग लो तत्क्षण ही ॥
जैसे भी हो तुम चिद्रूप शुद्ध की प्राप्ति करो तत्काल ।
एक मात्र हो लक्ष्य हृदय में परम शुद्ध चिद्रूप विशाल ॥३॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

मुंचेतत्समाश्रयेच्छुद्धचिदरूपस्मरणेऽहितम् ।
हितं सुधीः प्रयत्नेन द्रव्यादिकचतुष्टयम् ॥४॥

अर्थ- द्रव्य.क्षेत्र काल भाव रूप पदार्थों में जो पदार्थ शुद्ध चिद्रूप के स्मरण करने में हितकारी न हो, उसे छोड़ देना चहिये और जो उसकी प्राप्ति में हितकारी हो, उसका बड़े प्रयत्न से आश्रय करना चाहिये ।

४. ॐ ह्रीं द्रव्यक्षेत्रकालभावरूपविकल्परहितनिजचिद्रूपाय नमः ।

परमदेवस्वरूपोऽहम् ।

द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव सब इनको जानो भली प्रकार।
जो बाधक हो उनको छोड़ो कर चिद्रूप शुद्ध सत्कार ॥
जो हितकर है उसका आश्रय लेना बुद्धि पूर्वक आप ।
एक शुद्ध चिद्रूप स्मरण करके नाशो भव संताप ॥४॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(५)

संगं विमुच्य विजने संति गिरिगह्वरे ।
शुद्ध चिद्रूपसंप्राप्त्यै ज्ञानिनोऽन्यत्र निस्पृहाः ॥५॥

अर्थ- जो मनुष्य ज्ञानी है हित अहित का पूर्ण ज्ञान रखते हैं, वे शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति के लिये अन्य समस्त पदार्थों में सर्वथा निस्पृह हो समस्त परिग्रह का त्याग कर देते हैं और एकान्त स्थान पर्वत गुफाओं में जाकर रहते हैं ।

है दुर्दमनीय मोह का क्षय सम्यक् दर्शन का धातक है ।
संसार मार्ग का वर्धक है यह मोक्ष मार्ग में पाातक है ॥

५. ॐ ह्रीं निस्पृहशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरपेक्षोऽहम् ।

जो ज्ञानी है शीघ्र प्राप्त करते हैं हो सब से निस्पृह ।
वन पर्वत में एकाकी बन रहते त्याग सर्व परिग्रह ॥
निर्जन सरिता पुलिन गुफाओं वृक्षों के कोटर में वास ।
उनको ही चिद्रूप शुद्ध पाने का होता है उल्लास ॥५॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

स्वल्पकार्यकृतौ चिंता महावज्रायते ध्रुवम् ।
मुनीनां शुद्धचिद्रूपध्यानपर्वतभंजने ॥६॥

अर्थ- जिस प्रकार वज्र पर्वत को चूर्ण चूर्ण कर देता है। उसी प्रकार जो मनुष्य शुद्ध चिद्रूप की चिंता करने वाला है वह यदि अन्य किसी थोड़े से भी कार्य के लिये जरा भी चिंता कर बैठता है, तो शुद्ध चिद्रूप के ध्यान से सर्वथा विचलित हो जाता है ।

६. ॐ ह्रीं चिन्चारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निश्चिन्तस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

जैसे वज्र बड़े पर्वत को भी कर देता क्षण में चूर्ण ।
त्यों चिद्रूप शुद्ध का चिन्तन भव दुख करता शीघ्र विचूर्ण॥
ध्यान शुद्ध चिद्रूप सुदृढ़ से जो भी विचलित हो जाता ।
भव अटवी में पुनः भटकता परभावों में बह जाता ॥६॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

शुद्ध चिद्रूपसद्धध्यानभानुरत्यंतनिर्मलः ।
जनसंगतिसंजातविकल्पाब्दैस्तिरोभवेत् ॥७॥

अर्थ- यह शुद्धचिद्रूप का ध्यान रूपी सूर्य महानिर्मल और दैदीप्यमान हैं। यदि इस

उत्पाद ध्रौव्यव्यय युक्त सदा सत्ता से युक्त आत्मा है ।
है दर्शन ज्ञान स्वरूप शुद्ध परिणमन सहित यह आत्मा हैं ॥

पर स्त्री पुत्र आदि के संसर्ग से उत्पन्न हुए विकल्परूपी मेघ का पर्दा पड़ जायगा तो यह ढीक ही जायगा ।

७. ॐ ह्रीं महानिर्मलज्ञानभानुस्वरूपाय नमः ।

चैन्यभास्करोऽहम् ।

ताटंक

परम शुद्ध चिद्रूप ध्यान रवि है दैदीप्यमान निर्मल ।
किन्तु विकल्पों के बादल ढक देते दिखता नहीं विमल॥
स्त्री पुत्र धनादिक चिन्ता महा विघ्न करने वाली ।
इन्की चिन्ता छोड़ स्वयं की चिन्ता कर शिव सुख वाली॥
जो निज हित की चिन्ता करता वह पा लेता है सत्पथ।
जो पर की चिन्ता करते हैं पाते हैं संसार विपथ ॥७॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

अभव्ये शुद्धचिद्रूपध्यानस्य नोद्भवो भवेत् ।
वंध्यायां किल पुत्रस्य विषाणस्य खरे यथा ॥८॥

अर्थ- जिस प्रकार बांझ के पुत्र नहीं होता और गधे के सींग नहीं होते उसी प्रकार अभव्य के शुद्ध चिद्रूप का ध्यान कदापि नहीं हो सकता।

८. ॐ ह्रीं भव्याभव्यविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

भगवानस्वरूपोहम् ।

नहीं बांझ को सुत होता है सींग न गर्दभ को होता ।
उस प्रकार से अभव्य को चिद्रूप ध्यान भी ना होता ॥
ज्यों ज्वर रोगी को मीठा पय भी अति कड़वा लगता है।
त्यों अभव्य को धर्म कथन विपरीत सदा ही लगता है ॥
तू तो निकट भव्य है चेतन शीघ्र जंगा ले निज पुरुषार्थ।
एक बार दृढ़ निश्चय कर उर में चिद्रूप शुद्ध भूतार्थ ॥८॥

अक्रमवर्ती गुण होते हैं क्रमवर्त्ती होती पर्याय ।
श्रद्धा यही क्रम नियत करके निज त्रैकालिक ध्रुव को ध्याय॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

दूरभव्यस्य नो शुद्धचिद्रूपध्यानसंरुचिः ।
यथाऽजीर्णविकारस्य न भवेदन्न संरुचिः ॥९॥

अर्थ- जिसको अजीर्ण का विकार है खाया पीया नहीं पचता, उसकी जिस प्रकार अन्न में रुचि नहीं होती। उसी प्रकार जो दूर भव्य है, उसकी शुद्ध चिद्रूप के ध्यान में प्रीति नहीं हो सकती है

९. ॐ ह्रीं दूरभव्यविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

नित्यानन्दोऽहम् ।

जिसे अजीर्ण विकार उसे रुचि नहीं अन्न में होती है ।
त्यों जो दूर भव्य है उसको रुचि चिद्रूप न होती है ॥
दूर भव्य भी नहीं कभी तू निकट भव्य आसन्न महान ।
निज चिद्रूप शुद्ध का ही पुरुषार्थ जगा तू श्रेष्ठ प्रधान ॥९॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

भेदज्ञानं बिना शुद्धचिद्रूपज्ञानसंभवः ।
भवेन्नैव यथापुसलंभूतिर्जनक् बिना ॥१०॥

अर्थ जिस प्रकार कि पुरुष के बिना स्त्री के पुत्र नहीं हो सकता उसी प्रकार बिना भेद विज्ञान के शुद्ध चिद्रूप का ध्यान भी नहीं हो सकता ।

१०. ॐ ह्रीं अचेतनशरीरादिपरद्रव्यरहितनिजचिद्रूपाय नमः ।

शुद्धबोधस्वरूपोऽहम् ।

बिना पुरुष संयोग पुत्र की प्राप्ति न नारी को होती ।
त्यों चिद्रूप शुद्ध की प्राप्ति भेद ज्ञान बिन ना होती ॥
भेद ज्ञान पाने का ही पुरुषार्थ प्रथम करना होगा ।
स्वपर विवेक जगा अंतर में कर्म बंध हरना होगा ॥१०॥

है असाधारणगुण का स्वामी पर विभाव में सक्रिय है।
पर द्रव्य आदि से मोहित है अपने हित में तो निष्क्रिय है॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय सम•वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

शुद्ध चिद्रूप सदध्यानपुत्रसूतिर्न जायते ।
कर्माङ्गादद्यखिलेसंगे निर्ममतामातरं विना ॥११॥

अर्थ- जिस प्रकार बिना माता के पुत्र उत्पन्न नहीं हो सकता, उसी प्रकार कर्मद्वारा प्राप्त होने वाले समस्त परिग्रहों में बिना ममता त्यागे शुद्ध चिद्रूप का ध्यान भी होना असंभव है अर्थात् पुत्र की प्राप्ति में जिस प्रकार माता कारण है। उसी प्रकार शुद्धचिद्रूप के ध्यान में स्त्री पुत्र आदि में निर्ममता होना कारण है ।

११. ॐ ह्रीं निर्ममज्ञायकस्वरूपाय नमः ।

ब्रह्मस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

जैसे जग में बिन माता के पुत्र नहीं होता उत्पन्न ।
त्यों चिद्रूप ध्यान ना होता जब तक उर ममता सम्पन्न ॥
जब तक है ममत्व परिणाम तभी तक मोह जनित दुख हैं ।
जब ममत्व क्षय हो जाता है तब समत्व का ही सुख है॥११॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

ततस्यगतचिंता निर्जनताऽऽसन्नभव्यता ।
भेदज्ञानं परस्मिन्निर्ममता ध्यानहेतवः ॥१२॥

अर्थ- इसलिये यह बात सिद्ध हुई कि चिंता का अभाव एकांत स्थान, आसन्नभव्यपना, भेदविज्ञान और दूसरे पदार्थों में निर्ममता ये शुद्ध चिद्रूप के ध्यान में कारण हैं बिना इनके शुद्ध चिद्रूप का कदापि ध्यान नहीं हो सकता ।

१२. ॐ ह्रीं आसन्नभव्यादिविकल्परहितचिद्रूपाय नमः ।

एकत्वविभक्तोऽहम् ।

अतः सिद्ध यह हुआ कि चिन्ता का अभाव हो थल एकान्त।
हो आसन्न भव्यता उत्तम भेद ज्ञान हो मन हो शान्त ॥

है ज्ञान ऊर्जा यदि उर में है पर्यावरण राग वाला ।
तो जीवन नष्ट हुआ तेरा मिथ्यात्व भाव है दुख वाला ॥

पर पदार्थ से निर्ममत्व हो ये सब शुद्ध सबल कारण ।
बिन इनके चिद्रूप शुद्ध का ध्यान नहीं होता धारण ॥१२॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

नृस्त्रीतिर्यक्सुराणां स्थितिगतिवचनं नृतत्यगानं शुधादि-
क्रीडा क्रोधादि मौनं भयहसनजरारोदनस्वापशोकाः ।
व्यापाराकाररोगं नुनिनतिकदनं दीनतादुखशंकाः,
श्रृंगारादीन् प्रपश्यन्नशनमिह भवे नाटकं मन्यते ज्ञः ॥१३॥

अर्थ- जो मनुष्य ज्ञानी है संसार की वास्तविक स्थिति का जानकार है वह मनुष्य स्त्री तिर्यंच और देवों के स्थिति गति और वचन को नृत्य गान को शोक आदि को क्रीड़ा क्रोध आदि और मौन को भय हंसी बुढ़ापा रोना सोना व्यापार आकृति रोग स्तुति नमस्कार पीड़ा दीनता दुःख शंका भोजन और श्रृंगार आदि को संसार में नाटक के समान मानता है ।

१३. ॐ ह्रीं भयहसनरोदनजरादिदोषरहितचिद्रूपाय नमः ।

निष्क्रोधस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

जग की वास्तिविक स्थिति के जानकार हैं वे ज्ञानी ।
यह संसार एक नाटक है सत्य मानते अज्ञानी ॥
मनुज त्रियंच देव गति के सुख क्षण भगुंर हैं उदयाधीन।
हर्ष शोक अरु नृत्य गान सब हीं पदार्थ हैं पर आधीन ॥
भोजन अरु श्रंगार हँसी दुख रोने धोने से परिपूर्ण ।
वृद्धावस्था नमस्कार स्तुति दीनता सदैव अपूर्ण ॥
एक शुद्ध चिद्रूप पूर्ण है सदा पूर्ण ही रहता है ।
गुणा जोड़ बाकी व भाग भी सदा पूर्ण ही रहता है ॥१३॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

है अमृत कुंभ मिथ्या जिन को वह करता है प्रतिक्रमण नहीं ।
क्यों करे प्रतिक्रमण विष रूपी जब किया कभी अति क्रमण नहीं॥

(१४)

चक्रींद्रयोंः सदसि संस्थितगोः कृपा स्या-
त्तद्भार्ययोरतिगुणान्वितयोर्घृणा च ।
सर्वोत्तमेन्द्रियसुखस्मरणेऽतिकष्टं-
यस्यो द्धचेतसि स तत्वविदां वरिष्ठः ॥१४॥

अर्थ- जिन मनुष्य के पवित्र हृदय में सभा में सिंहासन पर विराजमान हुए चक्रवर्ती और इन्द्र के ऊपर दया है। शोभा में रति की तुलना करने वाली इन्द्रिणी और चक्रवर्त्ती की पटरानी पर घृणा है। और जिसे सर्वोत्तम इन्द्रियों के सुखों का स्मरण होते ही अति कष्ट होता है वह तत्त्वज्ञानियों में उत्तम तत्वज्ञानी कहा जाता है ।

१४. ॐ ह्रीं सर्वोत्तमेन्द्रियसुखस्मरणरहितचिद्रूपाय नमः ।

सहजानन्दस्वरूपोऽहम् ।

चक्रवर्त्ती इन्द्रादिक पर है दया भाव जिनके मन में ।
इन्द्राणी या महारानी भी हो तो घृणा भाव मन में ॥
सर्वोत्तम इन्द्रिय सुख में भी होता है जिन को बहु कष्ट।
वे ही तत्त्व ज्ञानियों में उत्तम हैं उन्हें न होता कष्ट ॥
पाते हैं चिद्रूप शुद्ध की महिमा वे ही अंतर में ।
ध्याते हैं चिद्रूप शुद्ध को सदा सदा अभ्यंतर में ॥१४॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

रम्यं वल्कलपर्णमंदिरकरीरं कांजिकं रामठं-
लोहं ग्रावनिषादकुश्रुतमटेद यावन्न यात्यंबरम् ।
सौधं कल्पतरुं सुधां च तुहिनं स्वर्णं मणिं पंचमं-
जैनीवाचमहो तथेन्द्रियभवं सौख्यं निजात्मोद्भवम् ॥१५॥

अर्थ- जब तक मनुष्य को उत्तमोत्तम वस्त्र महल कल्पृक्ष अमृत कपूर सोना स्वर जिनेन्द्र भगवान की वाणी और आत्मीक सुख प्राप्त नहीं होते तभी तक वह वक्कल वन पत्तों

उपयोग शुभाशुभ का व्यापार नहीं करता है पल भर भी।
उपयोग शुद्धव्यापार सदा करता है निजमय सुखकर ही॥

का घर करीर कांजी हींग लोहा पत्थर निषादस्वर कुशास्त्र और इंद्रिय जन्य सुख को उत्तम और कार्यकारी समझता है। परन्तु उत्तम वस्त्र आदि के प्राप्त होते ही उसकी वक्कल आदि में सर्वथा घृणा हो जाती है उनको वह जरा भी मनोहर नहीं मानता ।

१५. ॐ ह्रीं कल्पतरुसौधादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अवबोधसौधस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

जब तक नीची दशा तभी तक पर पदार्थ में है अनुराग।
रत्न वस्त्र सोना चांदी में करता है सदैव अनुराग ॥
जब आता है उच्च दशा में तज देता खोटा अनुराग।
एक शुद्ध चिद्रूप भावना पाकर करता कभी न राग ॥१५॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

केचिद् राजादिवार्त्ता विषयरतिकलाकीर्तिरै प्राप्तिचिंतां-
संतानोदभूत्युपायं पशुनगविगवां पालनं चान्यसेवाम् ।
स्वापक्रीडौषधादीन् सुरनरमनसां रंजनं देहपोषं-
कुर्वन्तोऽस्यंति कालं जगति च विरलाः स्वस्वरूपोपलब्धिम्॥१६॥

अर्थ- संसार में अनेक मनुष्य राजा आदि के गुण गानकर काल व्यतीत करते हैं। कई एक विषय रति कला कीर्त्ति और धन की चिन्ता में समय बिताते हैं। और बहुत से संतान की उत्पत्ति का उपाय, पशु वृक्ष पक्षी गौ बैल आदि का पालन अन्य की सेवा, शयन, क्रीड़ा, औषधि आदि का सेवन; देव मनुष्यों के मन का रंजन और शरीर का पोषण करते करते अपनी समस्त आयु के काल को समाप्त कर देते हैं। इसलिये जिनका समय स्वस्वरूप शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति में व्यतीत हों, ऐसे मनुष्य संसार में विरले ही हैं।

१६. ॐ ह्रीं शयनक्रीडौषधादिदेहपोषणरूपविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

स्वस्वरूपोऽहम् ।

भव चिन्ता में समय गंवाता करता राजादिक गुणगान ।
तन पोषण में बीत रहे क्षण किन्तु नहीं है अपना ध्यान॥

जो छटे सातवें झूलेंगे वे बंध भाव क्षय कर देंगे ।
जो झूल न पाएंगे इस पर वे आत्म भाव क्षय कर देंगे ॥

जिन का समय शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति में होता सतत व्यतीत।
ऐसे विरले आत्म ध्यान से हो जाते संसारातीत ॥१६॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

वाचांगेन हृदा शुद्धचिद्रूपोहमिति ह्रुवे ।
सर्वदानुभवामीह स्मरामीति त्रिधा भजे ॥१७॥

अर्थ- शुद्ध चिद्रूप के विषय मे सदा यह विचार करते रहना चाहिये कि मैं शुद्ध चिद्रूप हूं ऐसा वचन और काय से सदा कहता हूं तथा मन अनुभव और स्मरण करता हूं ।

१७. ॐ ह्रीं मनवचनतनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निष्कायस्वरूपोऽहम् ।

मन वच काया से जो भजता परम शुद्ध चिद्रूप महान ।
मैं ही परम शुद्ध चिद्रूपी मैं ही तो हूँ श्रेष्ठ प्रधान ॥
इसका ही जो अनुभव करता इसको ही करता है मुख्य।
इस प्रकार जो ध्यान लीन है वह विद्वानों में है मुख्य ॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति का ही रहता उर में उत्साह ।
वही आत्म पुरुषार्थ पूर्वक पाता उर में ज्ञान अथाह ॥१७॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानहेतुभूतां क्रियां भजेत् ।
सुधीः कांचिच्च पूर्वं तद्ध्याने सिद्धे तु तां त्यजेत् ॥१८॥

अर्थ- जब तक शुद्ध चिद्रूप का ध्यान सिद्ध न हो सके, तबं तक विद्वान को चाहिये कि उसकी कारण रूप क्रिया का अवश्य आश्रय ले। परन्तु उस ध्यान के सिद्ध होते ही उस क्रिया का सर्वथा त्याग कर दे ।

१८. ॐ ह्रीं ध्यानहेतुभूतक्रियाविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

टङ्कोत्कीर्णस्वरूपोऽहम् ।

यदि मोह क्षीण होना है तो फिर करो कषायों को तुम जय।
जय बिना कषायें किये नहीं होता है यथाख्यात शिवमय॥

ताटंक

जब तक परम शुद्ध चिद्रूप ध्यान उर सिद्ध नहीं होगा ।
तब तक कारण रूप क्रिया में लीन रहेगा श्रम होगा ॥
ध्यान सिद्ध होने पर ऐसी सभी क्रियायें तू तज दे ।
एक मात्र चिद्रूप शुद्ध को प्रतिपल प्रतिक्षण ही भज ले ॥१८॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

अंगस्यावयवैरगंमंगुल्याद्यैः परामृशेत ।
मत्याद्यैः शुद्धचिद्रूपावयवैस्तं तथा स्मरेत् ॥१९॥

अर्थ- जिस प्रकार शरीर के अवयव अंगुली आदि से शरीर का स्पर्श किया जाता है। उसी प्रकार शुद्धचिद्रूप के अवयव जो मतिज्ञान आदि में हैं, उनसे उसका स्मरण करना चाहिये ।

१९. ॐ ह्रीं मत्यादिज्ञानपर्यायविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानसूर्यस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

जो शरीर के अवयव हैं उनसे शरीर होता स्पर्श ।
उसी भांति मति ज्ञानादिक चिद्रूप शुद्ध अवयव कर पर्श॥
जब चिद्रूप शुद्ध स्पर्श करेगा तो होगा आनंद ।
केवल ज्ञान प्राप्त होगा फिर होगा उर में परमानंद ॥१९॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

ज्ञेये दृश्ये यथा स्वे स्वे चित्तं ज्ञातरि दृष्टरि ।
दद्याच्चेन्ना तथा विंदेत्पर ज्ञानं च दर्शनम् ॥२०॥

अर्थ- मनुष्य जिस प्रकार घट पट आदि ज्ञेय और दृश्य पदार्थों में अपने चित्त को लगाता है। उसी प्रकार यदि वह शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति के लिये ज्ञाता और दृष्टा आत्मा में भी

जो मोती खोज रहा है वह जाता समुद्र के ही तल तक।
पाता है मोती कर में ले आता है सागर के तट तक ॥

अपना चित्त लगावे, तो उसे स्वस्वरूप शुद्ध दर्शन और ज्ञान शीघ्र ही प्राप्त हो जाए।

२०. ॐ ह्रीं ज्ञेयदृश्यपदार्थविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

पूर्णानन्दस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

घटपटादि पर ज्ञेय पदार्थों में ज्यों चित्त लगाता हैं ।
त्यों चिद्रूप प्राप्ति हित ज्ञानी उसमें चित्त लगाता है ॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति की रुचि अंतर में हो सम्पूर्ण ।
तो फिर उसकी प्राप्ति सहज है मिल जाता है वह परिपूर्ण ॥२०॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२१)

उपायभूतमेवात्र शुद्धचिदरूपलब्धये ।
यत् किंचित्तत् प्रियं मेऽस्ति तदर्थित्वान्नचापरम् ॥२१॥

अर्थ- शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति के इच्छुक मनुष्य को सदा ऐसा विचार करते रहना चाहिये कि जो पदार्थ शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति में कारण है, वह मुझे प्रिय है । क्योंकि में शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति का अभिलाषी हूं और जो पदार्थ उसकी प्राप्ति में कारण नहीं है, उससे मेरा प्रेम भी नहीं है ।

२१. ॐ ह्रीं प्रियाप्रियविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अनुपमस्वरूपोऽहम् ।

जो पदार्थ चिद्रूप प्राप्ति के कारण होवें होवें प्रिय ।
शेष पदार्थो से संबंध न रखना वे तो हैं अप्रिय ॥
श्रेष्ठ परम प्रिय निज चिद्रूप शुद्ध ही है इसी धरती पर।
यही मोक्ष का मार्ग यही है मोक्ष स्वरूपी शिव सुखकर॥२१॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

आत्मा को पाना हो तो फिर इसके तल तक जाना होगा।
आत्मा को पाते ही तुमको तत्क्षण ऊपर आना होगा ॥

(२२)

चिद्रूपः केवलः शुद्ध आनंदात्मेत्यहं स्मरे ।
मुक्त्यै सर्वज्ञोपदेशः श्लोकार्द्धेन निरूपितः ॥२२॥

अर्थ- यह चिद्रूप अन्य द्रव्यों के संसर्ग से रहित केवल हैं, शुद्ध है और आनन्द स्वरूप है, ऐसा मैं स्मरण करता हूँ। क्योंकि जो यह आधे श्लोक में कहा गया भगवान सर्वज्ञ का उपदेश हैं वह ही मोक्ष का कारण है ।

२२. ॐ ह्रीं केवलशुद्धानन्दात्मस्वरूपाय नमः ।

चिद्रूपोऽहम् ।

यह चिद्रूप अन्य द्रव्यों के संसर्गो से रहित सदा ।
शुद्ध बुद्ध आनंद स्वरूपी ऐसा निर्मल भाव सदा ॥
एक शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति के लिए हृदय को सहज बना ।
ऊर्ध्व मध्य पाताल लोक में सर्वोत्तम धन यही सदा ॥२२॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२३)

वहिश्चितः पुरः शुद्धचिद्रूपाख्यानकं वृथा ।
अंधस्य नर्त्तनं गानं बधिसरस्य यथा ऋवि ॥२३॥

अर्थ- जिस प्रकार अन्धे के सामने नाचना और बहिरे के सामने गीत गाना व्यर्थ है। उसी प्रकार बहिरात्मा के सामने शुद्धचिद्रूप की कथा भी कार्यकारी नहीं है। परन्तु जिस प्रकार भूखे के लिये अन्न, प्यासे के लिये जल हितकारी है ।

२३. ॐ ह्रीं बहिरात्ममादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शाश्वतपरमात्मस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

ज्यों अंधे को नृत्य और बहिरे को गीत सुनाना व्यर्थ ।
त्यों बहिरात्मा को होती चिद्रूप शुद्ध की कथनी व्यर्थ ॥

जब मुक्ति कामिनी के कटाक्ष अन्तर्मन को करते विचलित।
तुम मुक्ति वधू को पाकर ही निज में रहना पूरे निश्चित॥

अंतरात्मा उसे श्रवण कर अंतरंग में ध्याता है ।
परम शुद्ध चिद्रूप सहज अन्तमुहूर्त्त में पाता है ॥२३॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२४)

अंतश्चितः पुरः शुद्धचिदरूपाख्यानकं हितं ।
बुभुक्षिते पिपासार्त्तेऽन्नं जलं योजितं यथा ॥२४॥

अर्थ- उसी प्रकार अन्तरात्मा के सामने कहा गया शुद्धचिद्रूप का उपदेश भी परम हित प्रदान करने वाला है ।

२४. ॐ ह्रीं अन्तरातत्मादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

कारणपरत्मात्मस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

भूखे को तो अन्न तथा प्यासे को जल है हितकारी ।
त्यों चिद्रूप शुद्ध की कथनी अतंरात्मा सुखकारी ॥
अन्तरात्मा परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति पाकर भारी ।
परमात्मा हो जाता है वह हो जाता है अविकारी ॥२४॥

ॐ ह्रीं तृतीय ध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२५)

उपाया बहवः संति शुद्धचिद्रूपलब्धये ।
तद्ध्यानेन समो नाभूदुपायो न भविष्यति ॥२५॥

अर्थ- अन्त में ग्रन्थकार कहते हैं कि यद्यपि शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति के बहुत से उपाय हैं। तथापि उनमें ध्यानरूप उपाय की तुलना करने वाला न कोई उपाय हुआ है, न हैं और न होगा। इसलिये जिन्हें शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति की अभिलाषा हो, उन्हें चाहियें कि वे सदा उसका ही नियम से ध्यान करें ।

२५. ॐ ह्रीं अतुलशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरूपमस्वरूपोऽहम् ।

आत्मा अचिन्त्य वैभवशाली यह तो है शुद्ध भाव वाली ।
यह मोह दोष से सदा रहित है रंच न कभी राग वाली॥

वीरछंद

हैं चिद्रूप शुद्ध प्राप्ति के भी उपाय बहु विविध प्रकार ।
किन्तु ध्यान उन सबमें उत्तम श्रेष्ट उपाय परम सुखकार॥
निज चिद्रूप शुद्ध की गागर गुण अनंत से है भरपूर ।
किन्तु आलसी जीवों से यह रहती है योजनों सुदूर ॥२५॥

ॐ ह्रीं भट्टारकज्ञानभूषणविरचितायां तत्त्वज्ञानतंरगिण्यां शुद्धचिद्रूप प्राप्तत्युपायनिरूपणनाम तृतीयाध्याये आनन्दस्वरूपाय पूर्णार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्य

छंद हे दीनबंधु

जब तक विभाव भाव है स्वभाव न होगा ।
होगा स्वभाव भाव तो विभाव न होगा ॥
जब तक नहीं सम्यक्त्व का पाओगे सूत्र तुम ।
मिथ्यात्व मोह भाव का अभाव न होगा ॥
ये पुण्य पाप भाव कर्म बंध स्रोत हैं ।
जब तक न ज्ञान भाव हो निज भाव न होगा ॥
औषधि स्वपर विवेक की जिसने भी कभी पी ।
संसार रोग वाला उसे घाव होगा ॥
चिद्रूप शुद्ध प्राप्ति का ही यत्न श्रेष्ठ है ।
इस यत्न से कोई कभी परभाव न होगा ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पित करूं भवै सागर का पोत ।
परम शुद्ध चिद्रूप ही शिव सुख सागर स्रोत ॥

ॐ ह्रीं तृतीय अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्य नि. ।

है ब्रह्मानंद स्वरूप आत्मा का गौरव वैभवशाली ।
रागा द्वेष से रहित सदा है ज्ञान सूर्य की उजियाली ॥

जयमाला

वीरछंद

आत्म निरीक्षण अगर नहीं तो स्वाध्याय करना है व्यर्थ।
बिना आत्मा निरखे परखे प्राप्त न होता सम्यक् अर्थ ॥
बिना ज्ञान आलोक स्वयं का सौन्दर्य दिखता न कभी ।
बिना आत्म सौन्दर्य प्राप्ति के उर में सुख झिलता न कभी॥
अहंकार ममकार हृदय में पोषण कर भी हुआ न तृप्त ।
बिन घुंघरू पायल क्यों बजती अतः सदा ही रहा अतृप्त॥
परमात्मा से साक्षात् करने का है यदि कुछ उद्देश ।
निज आत्मा का अनुभव कर लो तजो अनात्मा का परिवेश ॥
आखें है तो देख स्वयं को मन है तो निज चिन्तन कर।
वाणी है तो बोल स्वयं से शीष झुकाकर वन्दन कर ॥
दोनों हाथ अगर साबित हैं पंच महाव्रत झेल हृदय ।
दोनो पग यदि गमन योग्य हैं तो पाले शिव सौख्य निलय॥
वस्तु स्वभाव धर्म को तजकर तू करता पर का उपचार।
संप्रदायवादी बनकर तू करता झूठा धर्म प्रचार ॥
आत्म स्वभाव धर्म को जानो तो हो जाए बेड़ा पार ।
किन्तु मूढ़ता के कारण तू भ्रमता रहता है संसार ॥
सतत अनवरत भक्ति सहित निज परमात्मा को वन्दन कर।
परपरमात्मा के दर्शन तज निज परमात्मा दर्शन कर॥
निज परमात्मा में रत हो जा हो जाएगा सिद्ध असंग ।
यह संसार सदा को ही फिर हो जाएगा पूरा भंग ॥
पर परमातमा में रत है तो फिर निर्वाण नहीं होगा ।
निज परमात्मा नहीं मिला तो तू भगवान नहीं होगा॥

है अर्चनीय अति वंदनीय शुद्धात्म तत्त्व पावन महान।
ये ही पूजा के योग्य सदा ये ही है त्रिभुवन में प्रधान ॥

मोह विसर्जित हो जाते ही उत्पन्नित होता आनंद ।
स्वानुभूति ही मूलाधार धर्म का देती परमानंद ॥
निज आत्मा ही परम सुगुरु है यही मोक्ष ले जाएगी ।
निज आत्मा को सिद्ध शिला पर निज बल से बिठलाएगी॥
तु चेतन कुमार था अब तक अब चैतन्य राज होगा ।
कृतकृत्य हो जाएगा तू तेरा ही स्वराज होगा ॥
मात्र शुद्ध चिद्रूप शक्ति से सादि अनंत सौख्य पाले ।
मात्र शुद्ध चिद्रूप शक्ति से शाश्वत मुक्तिपुरी जाले ॥

ॐ ह्रीं तृतीय अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

एक शुद्ध चिद्रूप ही शीतल चंद्र समान ।
ज्ञायक लोकालोक का येही है भगवान ॥

इत्याशीर्वाद :

भजन

अनुभव रस की नन्हीं बुदियां बरसी है मेरे भीतर ।
अन्तर्मन को निर्मल करती ज्ञान बादली है भीतर ॥
भव वासना विलीन हो गई मोक्ष प्राप्ति की आशा जागी।
तत्त्व ज्ञान की शुभ तरंग पायी मैंने अपने भीतर ॥
कौन पराया कौन आपना स्वपर विवेक जागा उर में ।
भेद ज्ञान विज्ञान हो गया तत्क्षण ही मेरे भीतर ॥

निजदीप जनता हूँ वसुकर्म गलाता हूँ ।
रूठी हुई परिणति को मैं आज बुलाता हूं ॥
अपनी स्वभाव छवि पर सर्वस्व लुटाता हूं ।
शुद्धात्म तत्त्व लाकर रागादि घुलाता हूँ ॥

परिपूर्ण अकेला ज्ञान पिंड चैतन्य शुद्ध घन रूप सहज।
निश्चय से यह परमात्मा है इसमें न कर्म की कोई रज॥

ॐ

पूजन क्रमांक ५

तत्त्वज्ञान तरंगिणी चतुर्थ अध्याय

स्थापना

गीतिका

तत्त्वज्ञान तंरगिणी के चतुर्थम् अधिकार को ।
करूं हृदयंगम प्रभो मैं तजूँ राग विकार को ॥
सुगमता से प्राप्त करलूँ शुद्ध निज चिद्रूप को ।
सतत निरखा ही करूं मैं शुद्ध आत्म स्वरूप को ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

चौपायी

जन्म जरा अरु मरण विनाशूँ। अपना उज्जवल रूप प्रकाशूँ ॥
शुद्ध आत्मा के गुण गाऊँ। परम शुद्ध चिद्रूप रिझाऊँ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

भव आतप ज्वर से हूं दुखमय। निज गुण चंदन ही शिव सुखमय ॥
शुद्ध आत्मा के गुण गाऊँ। परम शुद्ध चिद्रूप रिझाऊँ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

यह ज्ञान सूर्य निज ज्ञाता है यह ज्ञान चंद्र ज्योतिर्मय ध्रुव।
रागादि पुण्य पापों से तो यह भिन्न पूर्ण महिमामय शिव॥

अक्षयपद की प्राप्ति करूं मैं। पर विभाव हे नाथ हरूँ मैं॥
शुद्ध आत्मा के गुण गाऊँ। परम शुद्ध चिद्रूप रिझाऊँ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

कामबाण की पीर मिटाऊँ । महाशील निज गुण प्रगटाऊँ॥
शुद्ध आत्मा के गुण गाऊँ। परम शुद्ध चिद्रूप रिझाऊँ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

क्षुधारोग की पीड़ा नाशूं। तृप्त स्वभाव महान विकासूँ ॥
शुद्ध आत्मा के गुण गाऊँ। परम शुद्ध चिद्रूप रिझाऊँ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

मिथ्याभ्रम तम दूर भगाऊँ । ज्ञान दीप उर मध्य जगाऊं॥
शुद्ध आत्मा के गुण गाऊँ। परम शुद्ध चिद्रूप रिझाऊँ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

धूप दशांग धर्म की लाऊं। अष्टकर्म अरि पर जय पाऊं॥
शुद्ध आत्मा के गुण गाऊँ। परम शुद्ध चिद्रूप रिझाऊँ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

महामोक्षफल हे प्रभु पाऊं। ज्ञाता दृष्टा भाव जगाऊं ॥
शुद्ध आत्मा के गुण गाऊँ। परम शुद्ध चिद्रूप रिझाऊँ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

पद अनर्घ्य की महिमा पाऊं। अर्घ्य अष्टगुण के ही लाऊं॥
शुद्ध आत्मा के गुण गाऊँ। परम शुद्ध चिद्रूप रिझाऊँ ॥

यह जीर्ण रूप या शीर्ण रूप होता न कभी है अजर अमर।
अविकल अविनश्वर अविकारी शाश्वत स्वरूप है अतिसुन्दर॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

अर्घ्यवलि

चतुर्थ अधिकार

शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति कीसरलता का प्रदर्शन

(१)

न क्लेशो न धनव्ययो न गमनं दशांतरे प्रार्थना,
केषांचिन्न बलक्षयो न न भयं पीड़ा परस्यापि न ।
सावद्यं न न रोगजन्मपतनं नैवान्यसेवा न हि,
चिद्रूपस्मरणे फलं बहु कथं तन्नाद्रियंते बुधाः ॥१॥

अर्थ- इस परम पावन चिद्रूप के स्मरण करने में न किसी प्रकार का क्लेश उठाना पड़ता है, न धन का व्यय, न देशांतर में गमन, और न दूसरे से प्रार्थना करनी पड़ती है। किसी प्रकार की शक्ति का क्षय, भय, दूसरे को पीड़ा, पाप, रोग जन्म-मरण और दूसरे की सेवा का दुःख भी नहीं भोगना पड़ता, इसलिये अनेक उत्तमोत्तम फलों के धारक भी इस शुद्धचिद्रूप के स्मरण करने में हे विद्वानों! तुम क्यों उत्साह और आदर नहीं करते? यह नहीं जान पड़ता ।

१. ॐ ह्रीं क्लेशाद्युपायरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरवद्योऽहम् ।

गीत

शुद्ध चिद्रूप स्मरण में कोई क्लेश नही ।
कोई भी कष्ट नहीं कोई धन निवेश नहीं ॥
याचना है न किसी से गमन परदेश नहीं ।
शक्ति का क्षय भी नहीं पीड़ा भय रोग नहीं ॥
जन्म मरणादि नहीं पर की दासता भी नहीं ।
पाप का अंश भी चिद्रूप स्मरण में नहीं ॥

व्रत दयादान आदिक विकल्प तैरते सदा इसके ऊपर ।
यह निर्विकल्प गरिमाशाली शाश्वत अनंत गुण का है घर॥

विविध फलों की प्राप्ति होती सदा सर्वोत्तम ।
इसका ही स्मरण करने का करो चेतन श्रम ॥
सिद्ध पद होता नहीं मोक्ष भी होता ही नहीं ।
शुद्ध चिद्रूप स्मरण में कोई क्लेश नहीं ॥१॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२)

दुर्गमा भोगभूः स्वर्गभूमिर्विद्याधरावनिः ।
नागलोकधरा चातिसुगमा शुद्धचिद्धरा ॥२॥

अर्थ- संसार में भोगभूमि स्वर्गभूमि विद्याधरलोक और नागलोक की प्राप्ति तो दुर्गम दुर्लभ है। परन्तु शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति अति सरल है ।

२. ॐ ह्रीं स्वर्गभूमिविद्याधरावन्याद्यपेक्षारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चित्सुखस्वरूपोऽहम् ।

भोग भू स्वर्ग भू विद्याधरों की भी नगरी ।
नाग सुरलोक प्राप्ति बहुत कठिन है सगरी ॥
किन्तु चिद्रूप शुद्ध प्राप्ति सरल ही जानो ।
इसके साधने से ज्ञान सौख्य मिलता हैं मानो ॥२॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

तत्साधने सुख ज्ञानं मोचनं जायते समं-
निराकुलत्वमभयं सुगमा तेन हेतुना ॥३॥

अर्थ- क्योंकि चिद्रूप के साधन में तो सुख, ज्ञान, मोचन, निराकुलता और भय का नाश ये साथ होते चले जाते हैं और भोग भूमि आदि के साधन बहुत काल के बाद दूसरे जन्म में होते हैं ।

३. ॐ ह्रीं अभयशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानरविस्वरूपोऽहम् ।

आगम अनुभव अरु युक्ति तीन से ही निर्णय करना होगा।
भव ताप तथा संताप सभी इसके द्वारा हरना होगा ॥

शुद्ध चिद्रूप स्मरण से सर्व सुख मिलता ।
मोक्ष सुख पास में आता है मोक्ष सुख ख़िलता ॥
शुद्ध चिद्रूप तो आनंद का ही सागर है ।
शुद्ध चिद्रूप ही तो मुक्ति सुख की गागर है ॥३॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

अन्नाश्मागुरुनागफेनसदृशं स्पर्शेन तस्यांशतः,
कौमाराभ्रकसीसवारिसदृशं स्वादेन सर्व वरं ।
गंधेनैव घृतादि वस्त्रसदृशं दृष्टया च शब्देन च,
कर्कर्यादि च मानसेन च यथा शास्त्रादि निश्चीयते ॥४॥

अर्थ- जिस प्रकार अन्न पाषाण अगुरु और अफीम के समान पदार्थ के कुछ भाग के स्पर्श करने से, इलायची आम कसीम और जल के समान पदार्थ के कुछ अंश के स्वाद से, घी आदि के समान पदार्थ के कुछ अंश से सूंघने के, वस्त्र सरीखे पदार्थ के किसी अंश को आंख के देखने से कर्करी (झालर) आदि के शब्द श्रवण से, और मन से शास्त्र आदि के समस्त स्वरूप का निश्चय कर लिया जाता है ।

४. ॐ ह्रीं अखण्डचैतन्यस्वरूपाय नमः ।

अभेदचित्स्वरूपोऽहम् ।

अन्न पाषाण अगर तगर पर्श होने पर ।
लायची आम्र आदि जल का स्वाद लेने पर ॥
वस्त्र आदिक को देखने से ज्ञान होता है ।
मात्र हो अंश तो वस्तु का भान होता है ॥
शुद्ध चिद्रूप से सब का ही ज्ञान होता है ।
बिना पर्शे ही वस्तु सब का भान होता है ॥४॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

जब अंतर दृष्टि पूर्वक ही निज भावों का ही वेदन हो ।
तब क्यों बतलाओ चेतन को परभावों का कुछ बंधन हो॥

(५)

स्ममृत्या दृष्टगाब्धिभूरुहपुरीनितर्यग्नराणांतथास
सिद्धांतोक्तसुराचलह्रदनदीद्वीपादिलोकस्थितेः ।
खार्थानां कृतपूवकार्यवितते: कालत्रयाणामपि,
स्वात्मा केवलचिन्मयोंऽशकलनात् सर्वोऽस्य निश्चीयते ॥५॥

अर्थ- उसी प्रकार पहिले देखे हुए पर्वत समुद्र वृक्ष नगरी गाय भैंस आदि तिर्यंच और मनुष्यों के, शास्त्रों से जाने गये मेरु ह्रद तालाब नदी और द्वीप आदि लोक की स्थिति के, पहिले अनुभूत इंद्रियों के विषय और किये गये कार्यो के, एवं तीनों कालों के स्मरण आदि कुछ अंशों से अखंड चैतन्य स्वरूप के पिंडस्वरूप इस आत्मा का भी निश्चय कर लिया जाता है ।

५. ॐ ह्रीं केवलचिन्मयस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानकल्पद्रुमोऽहम् ।

पहिले देखे पदार्थ ज्ञान में जो आते हैं ।
इन्द्रियों के विषय विकार ध्यान आते हैं ॥
त्यों ही चिद्रूप शुद्ध का भी ज्ञान होता है ।
मति ज्ञानादि से चैतन्य भान होता है ॥५॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

द्रव्यं क्षेत्रं च कालं च भावमिच्छेत् सुधीः शुभम् ।
शुद्धचिद्रूपसंप्राप्तिहेतुभूतं निरन्तरम् ॥६॥

अर्थ- जो महानुभाव शुद्धचिद्रूप के अभिलाषी हैं, उन्हें चाहिये कि वे उसकी प्राप्ति के अनुपम कारण शुद्ध द्रव्य क्षेत्र काल भाव का सदा आश्रय करें।

६. ॐ ह्रीं सदानन्दस्वरूपाय नमः ।

अविनाशस्वरूपोऽहम् ।

संसार विजेता बनने का शुद्धात्म तत्व ही है साधन ।
रत्नत्रय भक्ति हृदय में हो अंतर में हो चौ आराधन ॥

शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति के हैं जो भी अभिलाषी ।
चाहिए अपने चतुष्टय के बनें वे वासी ॥
उन्हें चिद्रूप शुद्धि प्राप्ति होगी निश्चय से ।
सुख की अनुभूति होगी उन्हें निज के आश्रय से ॥६॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

न द्रव्येण न कालेन न क्षेत्रेण प्रयोजनम् ।
केनचिच्चैव भावेन लब्धे शुद्धचिदात्मके ॥७॥

अर्थ- परन्तु जिस समय शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति हो जाय, उस समय द्रव्य क्षेत्र काल भाव के आश्रय करने की कोई आवश्यकता नहीं ।

७. ॐ ह्रीं शुभाशुभद्रव्यक्षेत्रादिविकल्परहितचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानमंदिरस्वरूपोऽहम् ।

शुद्ध चिद्रूप की जब प्राप्ति तुम्हें हो जाए ।
फिर चतुष्टय से नहीं काम उसे क्यों लाए ॥
शुद्ध चिद्रूप ही तो सौख्य का प्रदाता है ।
यही आनंद कंद गीत शुद्ध गाता है ॥७॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

परमात्मा परंब्रह्म चिदात्मा सर्वदृक् शिवः ।
नामनीमान्यहो शुद्धचिद्रूपस्यैव केवलम् ॥८॥

अर्थ- परमात्मा परंब्रह्म चिदात्मा सर्वदृष्टा और शिव ये समस्त नाम उसी शुद्ध चिद्रूप के हैं ।

८. ॐ ह्रीं परमब्रह्मस्वरूपाय नमः ।

शिवसौख्यस्वरूपोऽहम् ।

हो दर्शन ज्ञान शक्ति प्रभुता स्वच्छता दृष्टि हो अति निर्मल।
भूतार्थ तत्त्व का आश्रय हो निर्मल स्वभाव हो अति उज्ज्वल ॥

शुद्ध चिद्रूप के हैं नाम अनेकों जानो ।
सर्व दृष्टा है चिदात्मा है परंब्रह्म मानो ॥
यही परमात्मा हैं यही शुद्ध आत्मा है ।
जो भी ज्ञानी है उन्हें यही सिद्ध आत्मा है ॥
शुद्ध चिद्रूप ही सब बातों में पूरा पूरा ।
रंच भी है नहीं अधूरा ये पूरा पूरा ॥८॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

मध्ये श्रुताब्धेः परमात्मनामरत्नव्रजं वीक्ष्य मया ग्रहीतम् ।
सर्वोत्तमत्वादिदमेव शुद्धचिद्रूपनामातिमहार्घ्यरत्नम् ॥९॥

अर्थ- जैन शास्त्र एक अपार सागर है और उसमें परमात्मा के नामरूपी अनन्त रत्न भरे हुए हैं। उनमें से भले प्रकार परीक्षाकर और सबों में अमूल्य उत्तम मान यह शुद्धचिद्रूप नाम रूपी रत्न मैंने ग्रहण किया है ।

९. ॐ ह्रीं महार्घ्यचैतन्यरत्नस्वरूपाय नमः ।

चैतन्यरत्नाकरस्वरूपोऽहम् ।

शुद्ध चिद्रूप नाम रत्न मैंने पाया है ।
शास्त्र सागर की भांति यही मुझे भाया है ॥
शुद्ध चिद्रूप का सत्कार मुझे प्यारा है ।
शुद्ध चिद्रूप सदा ही तो सबसे न्यारा है ॥९॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

नाहं किंचिन्न में किंचिद् शुद्धचिद्रूप कंबिना ।
तस्मादन्यत्र मे चिंता वृथा लयं भजे ॥१०॥

अर्थ- संसार में सिवाय चिद्रूप के न तो मैं कुछ हूं और न अन्य ही कोई पदार्थ मेरा हैं। इसलिये शुद्धचिद्रूप से अन्य किसी पदार्थ में मुझे चिंता करना व्यर्थ है. क्योंकि अन्य

आनंद स्वरूप निराकुल है भगवान आत्मा परमात्मा ।
प्रतिकूल संयोगों से विचलित होता है कभी न शुद्धात्मा॥

पदार्थ की चिंता से मेरे स्वस्वरूप का नाश होता है ।

१०. ॐ ह्रीं निजगुणवैभवस्वरूपाय नमः ।

नित्यैकचिदात्मस्वरूपोऽहम् ।

शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त नहीं मैं कुछ हूँ ।
कोई पदार्थ नहीं मेरा मैं सभी कुछ हूं ॥
शुद्ध चिद्रूप ही मेरा है सदा से सर्वस्व ।
शुद्ध चिद्रूप से ही मेरा है पूरा वर्चस्व ॥१०॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

अनुभूय मया ज्ञातं सर्व जानाति पश्यति ।
अयमात्मा यदा कर्मप्रतिसीरा न विद्यते ॥११॥

अर्थ- जिस समय कर्मरूपी पर्दा इस आत्मा के ऊपर से हट जाता है, उस समय यह समस्त पदार्थों को साक्षात् जान देख लेता है। यह बात मुझे अनुभव से मालून पड़ती है ।

११. ॐ ह्रीं कर्मप्रतिसीररहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अप्रतीमस्वरूपोऽहम् ।

कर्म का आवरण आत्मा से जब भी हट जाता ।
होता अनुभव भी तभी दृष्टि में स्वंय आता ॥
शुद्ध चिद्रूप का स्वभाव दृष्टा ज्ञाता है ।
यही तो एकमात्र विश्व में विख्याता है ॥११॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

विकल्पजालजंबालान्निर्गतोऽयं सदा सुखी ।
आत्मा तत्र स्थितो दुःखीत्यनुभूय प्रतीयताम् ॥१२॥

अर्थ- जब तक यह आत्मा नाना प्रकार के संकल्प विकल्परूपी शेवाल (काई) में फंसा

आत्मा अखंड प्रत्यक्ष ज्योति चिन्मात्र अनंत ज्ञान घन है।
चंचल कल्लोंलों का निरोध होते ही सम्यक् दर्शन है ॥

रहता है, तब तक यह सदा दुःखी बना रहता है। क्षणभर के लिये भी इसे सुख शांति नहीं मिलती। परन्तु जब इसके संकल्प विकल्प छूट जाते हैं। उस समय ही सुखी हो जाता है। निराकुलतामय सुख का अनुभव करने लगा जाता है। ऐसा स्वानुभव से निश्चय होता है ।

१२. ॐ ह्रीं विकल्पजालजम्बालरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्मलसुखस्वरूपोऽहम् ।

जब तक संकल्प विकल्पों में उलझा है प्राणी ।
तब तलक दुख है शान्ति भी न रंच पहचानी ॥
जब ये संकल्प विकल्पों से दूर होता है ।
तभी सुख स्वानुभव आनंद मयी होता है ॥
शुद्ध चिद्रूप के बल से ही मोक्ष मिलता है ।
शुद्ध चिद्रूप की जय से ही सौख्य झिलता है ॥१२॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

अनुभूत्या मया बुद्धमयमात्मा महाबली ।
लोकालोकं यतः सर्वमंतर्नयति केवलः ॥१३॥

अर्थ- यह शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा अचिंत्य शक्ति का धारक है ऐसा मैंने भले प्रकार अनुभव कर जान लिया है। क्योंकि यह अकेला ही समस्त लोक अलोक को अपने में प्रविष्ट कर लेता है ।

१३. ॐ ह्रीं अचिनन्त्यशक्तिसंपन्नचिद्रूपाय नमः ।

बुद्धोऽहम् ।

शुद्ध चैतन्य स्वरूपी है आत्मा उत्तम ।
अचिन्त्य शक्ति का धारी जगत में सर्वोत्तम ॥
यह अकेला ही लोक अरु अलोक का ज्ञाता ।
सारा ही लोक अलोक इसमें ही समा जाता ॥

रागों से भिन्न आत्मा है ज्ञायक स्वरूप आत्मानुभति ।
आत्मा का स्वाद मधुर पावन जिनशासन तो है निजानुभूति॥

सर्वदर्शी है ये सर्वज्ञ सर्व व्यापी है ।
शुद्ध चिद्रूप सदा से ही ज्ञान व्यापी है ॥१३॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

स्मृतिमेति यतो नादौ, पश्चादायाति किंचन ।
कर्मोदयविशेषोऽयं ज्ञायते हि चिदात्मनः ॥१४॥

अर्थ- यदि यह चैतन्य स्वरूप आत्मा किसी पदार्थ का स्मरण करता है तो पहिले वह पदार्थ उसके ध्यान में जल्दी प्रविष्ट नहीं होता। परन्तु एकाग्र हो जब यह बार बार ध्यान करता है, तब उसका कुछ स्मरण हो जाता है। इसलिये इससे ऐसा जान पड़ता है कि यह आत्मा कर्मो से आवृत है।

१४. ॐ ह्रीं कर्मोदयविशेषरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानसुधास्वरूपोऽहम् ।

स्मृति धारणा से जानता धीरे धीरे ।
कर्म आवृत है अतः वस्तु जानता धीरे ॥
किन्तु चिद्रूप शुद्ध देखता युगपत सबको ।
कर्म आवरण रहित जानता युगपत सबको ॥१४॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

विस्फुरेन्मानसे पूर्वं पश्चान्नायाति चेतसि ।
किंचिद्विस्तु विशेषोऽयं कर्मणः किं न बुध्यते ॥१५॥

तथा पहिले ही पहल यदि किसी पदार्थ का स्मरण भी हो जाय तो उसके जरा ही विस्मरण हो जाने पर फिर बार बार स्मरण करने पर भी उसका स्मरण नहीं आता। इसलिये आत्मा पर कर्मो की माया जान पड़ती है । अर्थात् आत्मा कर्म के उदय से अवनत है यह स्पष्ट जान पड़ता है ।

१५. ॐ ह्रीं कर्मसामर्थ्यरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अनन्तशक्तिस्वरूपोऽहम् ।

पर्यायों से तुम दृष्टि फेर निज द्रव्य दृष्टि उज्जवल पालो।
आत्मा की दृढ़ प्रतीति करके निज मुक्ति भवन में ही जालो ॥

आत्मा का स्वभाव तीनों काल को जाने ।
किन्तु आवृत है कर्म से अतः न ये जाने ॥
किन्तु चिद्रूप शुद्ध सकल ज्ञेय ज्ञाता है ।
निरावरण है अतः सबका दृष्टा ज्ञाता है ॥१५॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

सर्वेषामपि कार्याणां शुद्दचिद्रूपचिंतनम् ।
सुखसाध्यं निजाधीनत्वादिहामुत्र सौख्यकृत् ॥१६॥

अर्थ- संसार के समस्त कार्यो में शुद्धचिद्रूप का चिंतन मनन ध्यान करना ही सुख साध्य सुख से सिद्ध होने वाला है। क्योंकि यह निजाधीन है। इसकी सिद्धि में अन्य किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं करनी पड़ती और इससे इस लोक और परलोक दोनों लोकों में निराकुलतामय सुख की प्राप्ति होती है ।

१६. ॐ ह्रीं निजाधीनशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

स्वाधीनज्ञानस्वरूपोऽहम् ।

शुद्ध चिद्रूप ध्यान निजाधीन निज चिन्तन ।
पर अपेक्षा से रहित इसका ध्यान है धन धन ॥
इससे इस लोक औ परलोक में सुख होता है ।
निराकुल सौख्य सहज इससे प्राप्त होता है ॥
शुद्ध चिद्रूप ही सर्वांश सौख्य का सागर ।
पूर्ण आनंद की अदुभुत महान है गागर ॥१६॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

प्रोद्यःमोहान् यथालक्ष्म्यां कामिन्यां रमते च हृत् ।
तथा यदि स्वचिद्रूपे किं न मुक्तिः समीपगा ॥१७॥

अर्थ- मोह के उदय से मत्त जीव का मन जिस प्रकार संपत्ति और स्त्रियों में रमण करता

जिनवर का मार्ग कठिन न कहीं तू कठिन समझता है विमूढ़ ।
यह परमानंदमयी पथ है क्यों विमुख हुआ है अरे मूढ़ ॥

है। उसी प्रकार यदि वही मन उससे उपेक्षा कर शुद्धचिद्रूप की ओर झुके उससे प्रेम करे तो देखते देखते ही इस जीव को मोक्ष की प्राप्ति हो जाए ।

१७. ॐ ह्रीं कामिन्यादिसुखरहितचिद्रूपाय नमः ।

बोधश्रीसुखस्वरूपोऽहम् ।

मोह के उदय में ये जीव मगन होता है ।
अपनी संपत्ति नारियों में रमण होता है ॥
इनसे करके उपेक्षा ये स्वयं को ध्याए ।
मोक्ष की प्राप्ति हो ये परम सौख्य को पाए ॥
शुद्ध चिद्रूप ही सर्वांश सौख्य का सागर ।
पूर्ण आनंद की अद्भुत महान है गागर ॥१७॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

विमुच्य शुद्धचिद्रूपचिंतनं ये प्रमादिनः ।
अन्यत् कार्य च कुर्वन्ति ते पिवंति सुधां विषम् ॥१८॥

अर्थ- जो आलसी मनुष्य सुख दुःख और उनके कारणों को भले प्रकार जानकर भी प्रमाद के उदय से शुद्धचिद्रूप की चिंता छोड़ अन्यं कार्य करने लग जाते हैं, वे अमृत को छोड़कर महादुःखदायी विषपान करते हैं, इसलिये तत्वज्ञों को शुद्धचिद्रूप का सदा ध्यान करना चाहिये ।

१८. ॐ ह्रीं अन्यकार्यप्रयोजनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चैतन्यसुधास्वरूपोऽहम् ।

आलसी आदमी प्रमाद से दुख पाता है ।
जानकर भी ये नर अनजान बना जाता है ॥
अमृत को छोड़कर विषपान कियां करता है ।
शुद्ध चिद्रूप का ध्यानी ही कष्ट हरता है ॥१८॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

पांचों परमेष्ठी स्वर्गादिक सुख साता करते हैं प्रदान ।
निज परमेष्ठी शाश्वत शिव सुख निज देते हैं उत्तम महान ॥

(१९)

विषयानुभवे दुखं व्याकुलत्वात् सतां भवेत् ।
निराकुलत्वतः शुद्धचिद्रूपानुभवे सुखम् ॥१९॥

अर्थ- इंद्रियों के विषय भोगने में जीवों का चित्त सदा व्याकुल बना रहता है इसलिये इन्हें क्लेश भोगने पड़ते है और शुद्ध चिद्रूप के ध्यान करने में किसी प्रकार की आकुलता नहीं होती, इसलिए उसकी प्राप्ति से जीवों का परम कल्याण होता है ।

१९. ॐ ह्रीं दुःखस्वरूपविषयानुभवरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शाश्वतसुखसागरोऽहम् ।

इन्द्रियों के विषय भोगों में ये व्याकुल रहता ।
उनको पाने में भोगने में ये आकुल रहता ॥
शुद्ध चिद्रूप के अनुभव में नहीं आकुलता ।
इसकी जब प्राप्ति होती होती है निराकुलता ॥१९॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

रागद्वेषादिजं दुःखं शुद्धचिद्रूपचिन्तनात् ।
याति तच्चिंतनं न स्याद् यतस्तद्गमनं विना ॥२०॥

अर्थ- राग द्वेष आदि के कारण से जीवों को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं परन्तु शुद्धचिद्रूप का स्मरण करते ही वे पल भर में नष्ट हो जाते हैं। ठहर नहीं सकते क्योंकि बिना राग आदि के दूर हुए शुद्धचिद्रूप का ध्यान ही नहीं हो सकता ।

२०. ॐ ह्रीं रागद्वेषादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

नीरागस्वरूपोऽहम् ।

राग द्वेषादि से जीवों को बहुत दुख होता ।
शुद्ध चिद्रूप स्मरण से बड़ा सुख होता ॥
बिना चिद्रूप के निज ध्यान नहीं होता है ।
शुद्ध चिद्रूप तो भव भार नहीं ढोता है ॥२०॥

जब अनंतानुबंधी है तो है राग द्वेष का ही वितान ।
मिथ्यात्व भाव जब तक उर में है भव सागर दुख का विहान॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२१)

आनन्दो जायतेऽत्यन्तः शुद्धचिद्रूपचिन्तने ।
निराकुलत्वरूपो हि सतां यत्तन्ममयोऽस्त्यसो॥२१॥

अर्थ- निराकुलता रूप (किसी प्रकरा की आकुलता न होना) आनन्द है और उस आनन्द की प्राप्ति सज्जनों को शुद्धचिद्रूप के ध्यान से ही हो सकती है; क्योंकि यह शुद्ध चिद्रूप आनन्द मय है आनन्द पदार्थ इससे जुदा नहीं है ।

२१. ॐ ह्रीं अतीन्द्रियानन्दसागराय नमः ।

आनन्दधामस्वरूपोऽहम् ।

शुद्ध चिद्रूप ध्यान ही है निराकुलता मय ।
इसके ही ध्यान से होता है जिया आनंद मय ॥
शुद्ध चिद्रूप के अनुभव में नहीं आकुलता ।
इसकी जब प्राप्ति होती होती है निराकुलता ॥२१॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२२)

तं स्मरन् लभते ना तमन्यदन्यच्च केवलम् ।
याति यस्य पथा पांथस्तदेव लभते पुरम् ॥२२॥

अर्थ- जिस प्रकार पथिक मनुष्य जिस गांव के मार्ग को पकड़कर चलता है वह उसी गांव पहुंच जाता है । अन्य गांव के मार्ग से चलने वाला अन्य गांव में नहीं पहुँच सकता। उसी प्रकार जो मनुष्य शुद्धचिद्रूप का स्मरण ध्यान करता है वह शुद्धचिद्रूप को प्राप्त करता है और जो धन आदि पदार्थो की आराधना करता है, वह उनकी प्राप्ति करता है। परन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि अन्य पदार्थो का ध्यान करे और शुद्धचिद्रूप को पा जाय ।

२२. ॐ ह्रीं धनादिस्मरणरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

आत्मघनस्वरूपोऽहम् ।

शुद्ध आत्मा ही भव की जड़ छेद डालता है तत्क्षण ।
जब आत्म दृष्टि हो जाती है हो जाता है सम्यक् दर्शन॥

जो मनुज मार्ग पर चलता है ग्राम पा जाता ।
जो भी चलता है अन्य मार्ग पर नहीं पाता ॥
जो भी चिद्रूप शुद्ध का ही ध्यान करता है ।
जो भी वह चाहता है वही प्राप्त करता है ॥२२॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२३)

शुद्धचिद्रूपसंप्राप्तिदुर्गमा मोहतोंऽगिनाम् ।
तज्जयेऽत्यंतसुगमा किर्याकांडविमोचनात् ॥२३॥

अर्थ- यह मोहनीय कर्म महाबलवान है। जो जीव इसके जाल में जकड़े हैं उन्हें शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति दु:साधध्य है, और जिन्होंने इसे जीत लिया है, उन्हें तप आदि क्रियाओं के बिना ही सुलभता से शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति हो जाती है ।

२३. ॐ ह्रीं क्रियाकाण्डरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानवीर्यस्वरूपोऽहम् ।

कर्म यह मोहनीय जाल में ही जकड़े हैं ।
मोही जीवों को यही मोहनीय पकड़े हैं ॥
जो भी चिद्रूप शुद्ध से इसे विजय करता ।
बिना तप आदि क्रिया के वो पूर्ण सुख भरता ॥२३॥

ॐ ह्रीं भट्टारकज्ञानभूषणविरचितायां तत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपप्राप्तिसुगमत्वप्रतिपादक चतुर्थाध्याये आनन्दघनस्वरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्य

गीत

कर्म का दोष नहीं दोष सभी मेरा है ।
श्री सदगुरु ने मुझे आज आके हेरा है ॥
शुद्ध चिद्रूप गुण अनंत का ही सागर है ।
कर्म के आवरण से ढकी ज्ञान गागर है ॥

इस बाह्य त्याग की महिमा तो मिथ्यादृष्टी को आती है।
निज आत्म तत्व की महिमा तो सम्यक् दृष्टि को आती है ॥

हिंसादिक पंच पाप घेरते आए मुझको ।
शुष्क जप तप न कभी सौख्य कुछ लाए मुझको ॥
बिना समकित के न संयम कभी भी होता है ।
स्वर्ग मिलता है मगर मोक्ष नहीं होता है ॥
मैं हूँ उत्पाद ध्रौव्य व्यय सहित त्रिकाली सत् ।
अपने गुण भूल फिरा चार गति में हो भव रत ॥
आज अवसर मिला है अपनी आत्मा निरखूं ।
गुण अनंतों से ये मंडित है इसे ही परखूँ ॥
शुद्ध चिद्रूप की महिमा का हुआ ज्ञान नहीं ।
शुद्ध चिद्रूप के बिन आत्मा का भान नहीं ॥
शुद्ध चिद्रूप की छवि मुझको नहीं भाती है ।
इसलिए शुद्ध आत्मा न पास आती है ॥
शुद्ध चिद्रूप की पूजन का समय अब आया ।
मेरी निज आत्मा ने शुद्ध समय अब पाया ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पित करूं पाऊं शुद्ध स्वरूप ।
ज्ञानांजन की कृपा से दिखा शुद्ध चिद्रूप ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्य नि. ।

जयमाला

वीरछंद

द्रव्य दृष्टि बनने का ही उपदेश प्रथम देते सर्वज्ञ ।
क्षय पर्याय दृष्टि हो जाती प्राणी हो जाता तत्त्वज्ञ ॥
द्रव्य दृष्टि ही अविनश्वर है है पर्याय दृष्टि नश्वर ।
हैं पर्याय दृष्टि संसारी द्रव्य दृष्टि ही परमेश्वर ॥

पर द्रव्य त्यागता है आत्मा ऐसा कहना व्यवहार कथन ।
पर शुद्ध आत्मा में तो है कुछ नहीं त्याग कुछ नहीं ग्रहण॥

जो प्राणी बंधों के कारण सुन करके डर जाता है ।
बंधन मुक्ति प्रयास लीन हो बंध रहित हो जाता है ॥
सत्संगति सम नहीं सम्पदा दु:संगी सम विपद नहीं ।
सत्संगी सम नहीं कल्पतरु सत्संगी सम स्वपद नहीं ॥
शुद्धात्मा की चर्चा भी करने वाला धन धन प्राणी ।
शुद्धात्मा की चिन्ता करने वाला धन्य धन्य ज्ञानी ॥
धर्म लीन धर्मात्माओं की सुर भी सेवा करते है ।
कर्म भीरु भव्यात्मा ही तो मिथ्याभ्रम सब हरते है ॥
बिना ज्ञान ग्रैवैयक तक जा किया कर्म है बारंबार ।
बुद्धि जागते ही पायी है वेला मैंने शिव सुखकार ॥
आत्म निरीक्षण करते करते हो जाता है सम्यक् ज्ञान ।
आत्मालोचन करते करते व्रत संयम होते बलबान ॥
नित्य शुद्ध चैतन्य आत्मा चिदानंद है सिद्ध समान ।
आत्म स्वभाव लक्ष्य में हो तो कर्म स्वयं होते अवसान ॥
अनुभव रस से सरावोर है भावलिंग मुनि की वाणी ।
अनुभव से सर्वथा रहित है द्रव्य लिंग मुनि की वाणी ॥
नित्य स्थायी ध्रुव चैतन्य बिम्ब हूँ यह निश्चय कर लूं ।
जीवन धन्य बनाऊं अपना सकल विभाव भाव हर लूँ ॥
एक शुद्ध चिद्रूप स्वयं ही ध्यान ध्येय ध्याता विभुवान ।
निर्विकल्प जब हो जाता है तत्क्षण होता है भगवान ॥

ॐ ह्रीं चतुर्थ अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

एक शुद्ध चिद्रूप की महिमा अपरंपार ।
जो लेते निज लक्ष्य में हो जाते भव पार ॥

इत्याशीर्वाद :

आत्मा है दर्शन ज्ञानमयी उसको ही आत्मा ग्रहता है ।
पर द्रव्यों के प्रति राग भाव उसको ये पूरा तजता है ॥

ॐ

पूजन क्रमांक ६

तत्त्वज्ञान तरंगिणी पंचम अध्याय पूजन

स्थापना

छंद गीतिका

तत्त्वज्ञान तरंगिणी अधिकार पंचम जानकर ।
प्राप्ति उसकी सहज होती उसे ही पहचान कर ॥
शुद्ध निज चिद्रूप को ही प्रतिसमय निरखा करूं ।
नय तथा निक्षेप और प्रमाण से परखा करूं ॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद सखी

जल ज्ञानानन्दी लाऊं। त्रय व्याधि सकल विनशाऊं ।
चिद्रूप शुद्ध निज ध्याऊं। परमोत्तम शिव पद पाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

ज्ञानानन्दी निज चंदन। हरता भव ज्वर का क्रन्दन ।
चिद्रूप शुद्ध निज ध्याऊं। परमोत्तम शिव पद पाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसातरताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

ज्यों पूर्णमासि के दिन समुद्र में आता ज्वार शक्तिशाली।
त्यों शुद्ध आत्मा के भीतर आनंद उछलता गुणशाली ॥

अक्षत हों ज्ञानान्दी। शिव सुख हो परमानन्दी ।
चिद्रूप शुद्ध निज ध्याऊं। परमोत्तम शिव पद पाऊं ॥

*ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय **अक्षतं नि.** ।*

हों पुष्प स्वज्ञानानन्दी। निष्काम बनूं निर्द्वंदी ।
चिद्रूप शुद्ध निज ध्याऊं। परमोत्तम शिव पद पाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्प नि. ।

ज्ञानानन्दी चरु लाऊं। जय क्षुधा रोग पर पाऊं ।
चिद्रूप शुद्ध निज ध्याऊं। परमोत्तम शिव पद पाऊं ॥

*ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधा रोग विनाशनाय **नैवेद्यं** नि. ।*

दीपक हो ज्ञानानन्दी। क्षय हो विभ्रम भव द्वंदी ।
चिद्रूप शुद्ध निज ध्याऊं। परमोत्तम शिव पद पाऊं ॥

*ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय **दीपं** नि. ।*

निज धूप अपूर्व बनाऊं। वसु कर्मो को विनशाऊं ।
चिद्रूप शुद्ध निज ध्याऊं। परमोत्तम शिव पंद पाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

फल ज्ञानानन्दी लाऊं। शाश्वत शिव पद प्रगटाऊं ।
चिद्रूप शुद्ध निज ध्याऊं। परमोत्तम शिव पद पाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

है चिदानद घन के भीतर अराधना सहित सम्यक् चारित्र।
है देह क्रिया इसमें न कहीं जो देह क्रिया वह ना चारित्र॥

वसु विधि प्रभु अर्घ्य बनाऊं। ज्ञानानन्दी सुख पाऊं ।
चिद्रूप शुद्ध निज ध्याऊं। परमोत्तम शिव पद पाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि. ।

अर्घ्यावलि

पंचम अध्याय

भूतकाल में शुद्ध चिद्रूप की अप्राप्ति का वर्णन

(१)

रत्नामानोषधीनां वसनरसरुजामन्नधातूपलानां,
स्त्रीभाश्वानां नराणं जलचरवयसांगोमहिष्यादिकानाम् ।
नामोत्पत्यर्घतार्थान् विशदमतितया ज्ञातवान् प्रायशोऽहं,
शुद्धंचिद्रूपमात्रंकथमहह निजं पूर्व कदाचित् ॥१॥

अर्थ- मैंने पहिले कई बार रत्न, औषधि, वस्त्र, घी आदि रत्न, रोग अन्न सोना चांदी आदि पाषाण स्त्री हस्ती घोड़े मगर, मच्छ आदि जल के जीव पक्षी और गाय भैंस आदि पदार्थो के नाम उत्पत्ति मूल्य और प्रयोजन भले प्रकार अपनी विशुद्ध बुद्धि से जान सुन लिये हैं, परन्तु जो शुद्धचिद्रूप नित्य है, आत्मिक है उसे आज तक कभी पहले नहीं जाना ।

१. ॐ ह्रीं रत्नौषधिवसनरसादिप्रयोजनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानरत्नस्वरूपोऽहम् ।

छंद मानव

रत्नादिक स्वर्ण रजत सब वस्त्रादिक पदार्थ जाने ।
रागादिक औषधि रस गज गौ आदिक अपने माने ॥
पर नहीं जान पाया हूं चिद्रूप शुद्ध की महिमा ।
आत्मीय नित्य अविनश्वर चिद्रूप शुद्ध की गरिमा ॥

जो पंच महाव्रत में रत हैं वे हैं चारित्र मोह वाले ।
जो शुद्ध भाव में रत हैं वे चारित्रमोह द्रोह वाले ॥

चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥१॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२)

पूर्व मया कृतान्येव चिंतनान्यप्यनेकशः ।
न कदाचिन्महामोहात् शुद्धचिद्रूप चिन्तनम् ॥२॥

अर्थ- पहिले मैंने अनेक बार अनेक पदार्थो का मनन ध्यान किया है। परन्तु पुत्र स्त्री आदि के मोह से मूढ़ हो, शुद्धचिद्रूप का कभी आज तक चिंतवन न किया ।

२. ॐ ह्रीं महामोहरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अमूढस्वरूपोऽहम् ।

पुत्रादिक में मोहित हो पर का ही ध्यान किया है ।
चिद्रूप शुद्ध का अब तक चिन्तवन कभी न किया है ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥२॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

अनंतानि कृतान्येव मरणानि मयापि न ।
कुत्र चिन्मरणे शुद्धचिद्रूपोऽहमिति स्मृतम् ॥३॥

अर्थ- मैं अनंत बार अनंत भवों में मरा; परन्तु मृत्यु के समय मैं शुद्धचिद्रूप हूं ऐसा स्मरण कर कभी न मरा ।

३. ॐ ह्रीं अनन्तमरणरहितामरचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानामरस्वरूपोऽहम् ।

मैं मरा अनंतों भव में बहुबार मृत्यु पायी है ।
केवल चिद्रूप शुद्ध है यह सुबुधि नहीं आयी है ॥

यह दर्शन मोह क्रिया कांडी चारित्र मोह जय करना है।
तुमको ही सर्व देश आस्रव भावों को पूरा हरना है ॥

चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥३॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

सुरद्रुमा निधानानि चिंतारत्नं द्युसद्गवी ।
लब्धाः च न परं पूर्वं शुद्धचद्रूपसंपदः ॥४॥

अर्थ- मैंने कल्पवृक्ष खजाने चिन्तामणि रत्न और कामधेनु प्रभृति लोकोत्तर अनन्यलभ्य विभूतियां प्राप्त कर लीं। परन्तु अनुपम शुद्धचिद्रूप नाम की संपत्ति आज तक कहीं न पाई ।

४. ॐ ह्रीं सुरद्रुमनिधानादिप्रयोजनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चैतन्यकल्पवृक्षोऽहम् ।

बहु कल्प वृक्ष कोषालय चिन्तामणि रत्न मिले हैं ।
अरु कामधेनु भी पायी साता के भाव झिले हैं ॥
सम्पत्ति शुद्ध चिद्रूपी मैंने न कभी भी पायी ।
अनुपम अचिन्त्य महिमामय निज निधि न कभी दरशायी॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥४॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(५)

द्रव्यादि पंचधा पूर्व परावर्त्ता अनंतशः ।
कृतास्तेष्वेकशो न स्वं स्वरूपं लब्धवानहम् ॥५॥

अर्थ- मैंने अनादिकाल से इस संसार में परिभ्रमण किया। इसमें द्रव्य क्षेत्र काल नाम के पांचों परवर्त्तन भी अनन्तबार पूरे किये। परन्तु स्वस्वरप शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति मुझे आज तक एक बार भी न हूई ।

चारित्र मोह का वंधन है पर हैं बंधन से बहुत दूर ।
वे भाव मोक्ष के स्वामी है है द्रव्य मोक्ष का निकट पूर ॥

५. ॐ ह्रीं द्रव्यादिपञ्चपरावर्तनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अचलस्वरूपोऽहम् ।

द्रव्यादि पंच परिवर्त्तन मैने अनंत प्रभु पाए ।
संसार परिभ्रमण करके मैंने बहु कष्ट उठाए ॥
लेकिन स्वस्वरूप न पाया चिद्रूप शुद्ध पल भर भी ।
पा लेता अगर इसे मैं क्षय होता जन्म मरण भी ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥५॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

इन्द्रादीनां पदं लब्धं पूर्वं विद्याधरेशिनाम् ।
अनंतशोऽहमिन्द्रस्य स्वस्वरूपं न केवलम् ॥६॥

अर्थ- मैंने पहिले अनंतबार इन्द्र नृपति आदि उत्तमोत्तम पद भी प्राप्त किये। अनंत बार विद्याधरों का स्वामी और अहमिन्द्र भी हुआ। परन्तु आत्मिक शुद्धचिद्रूप का लाभ न कर सकां ।

६. ॐ ह्रीं अहमिन्द्रादिपदाभिलाषरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरभिलाषोऽहम् ।

बहुबार इन्द्र विद्याधर अहमिन्द्र नृपति पद पाया ।
आत्मिक चिद्रूप शुद्ध का मैं लाभ नहीं ले पाया ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥६॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय संमन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

मध्ये चतुर्गतीनां च बहुशो रिपवो जिताः ।
पूर्वं न मोहप्रत्यर्थी स्वस्वरूपोलब्धये ॥७॥

है तीन चौकड़ी का अभाव वे वीतराग भगवान तुल्य ।
जंगल में बसने वाले मुनि है सिद्ध स्वरूपी सिद्ध तुल्य॥

अर्थ- नरक मनुष्य तिर्यच और देव चारों गतियों में भ्रमण कर मैंने अनेकबार अनैक शत्रुओं को जीता। परन्तु शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति के लिये उसके विरोधी महाबलवान मोहरूपी वैरी को कभी नहीं जीता ।

७. ॐ ह्रीं चतुर्गतिभ्रमणरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निश्चलोऽहम् ।

नर सुर पशु नरक आदि में तो बहुत भ्रमा हूं स्वामी ।
जीते हैं शत्रु अनेकों पर दुखी हुआ हूं स्वामी ॥
चिद्रूप शुद्ध को मैंने अब तक न प्रभो पाया है ।
जो शत्रु मोह रूपी है वह विजय न कर पाया है ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥७॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

मया निःशेषशास्त्राणि व्याकृतानि श्रुतानि च ।
तेभ्यो न शुद्धचिद्रूपं स्वीकृतं तीव्रमोहिना ॥८॥

अर्थ- मैंने संसार में अनंतबार कठिन अनेक शास्त्रों का भी व्याख्यान कर डाला । बहुत से शास्त्रों का श्रवण भी किया। परन्तु मोह से मूढ़ हो उनमें डो शुद्धचिद्रूप का वर्णन है, उसे कभी स्वीकार न किया ।

८. ॐ ह्रीं निःशेषशास्त्रव्याख्यानादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

सहजज्ञानस्वरूपोऽहम् ।

शास्त्रों का श्रवण अर्थ युत अरु व्याख्या भी मैं करता ।
पर मोह मूढ़ हो अपना चिद्रूप कथन ना पढ़ता ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥८॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

है साम्यभाव चारित्र दशा लौकिक महान मुनिराजों की।
निष्कर्म अवस्था के स्वामी जय हो ऐसे ऋषिराजों की ॥

(९)

वृद्धसेवाता विद्वन्महतां सदसि स्थित: ।
न लब्धं शुद्धचिद्रूपं तथापि भ्रमता निजम् ॥९॥

अर्थ- इस संसार में भ्रमण कर मैंने कई बार वृद्धों की सेवा की। विद्वानों की बड़ी बड़ी सभाओं में भी बैठा। परन्तु अपने आत्मिक स्वरूप का कभी मैंने लाभ न किया ।

९. ॐ ह्रीं वृद्धसेवाविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अकृत्रिमबोधस्वरूपोऽहम् ।

संसार भ्रमण कर वृद्धों की सेवा भी कर आया ।
चिद्रूप शुद्ध को मैंने अब तक न किन्तु है पाया ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥९॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

मानुष्यं बहुशो लब्धमार्ये खंडे च सत्कुलम् ।
आदि संहननं शुद्धचिद्रूपं न कदाचन ॥१०॥

अर्थ- मैं आर्यखंड में बहुतबार मनुष्य हुआ । कई बार उत्तम कुल में भी जन्म पाया । वज्रवृषभ नाराच संहनन भी प्राप्त किया। परन्तु शुद्धचिद्रूप का कभी स्मरण न किया।

१०. ॐ ह्रीं आर्यखण्डसत्कुलादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चैतन्यकुलस्वरूपोऽहम् ।

मैं आर्य खंड में जन्मा उत्तम कुल नर भव पाया ।
संहनन वज्र अरु वृषभ नाराच बेर बहु पाया ॥
पर नहीं पा सका अब तक चिद्रूप शुद्ध गुणधारी ।
अतएव बना हूं अब तक मैं तो हे प्रभु संसारी ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥१०॥

शुद्धात्म भावना ही भाले चैतन्य वाद्य निज वजा बजा ।
तेरे भीतर गुण हैं अनंत निज आत्म द्रव्य को सजा सजा॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

शौचसंयमशीलानि दुर्धराणि तपासि च ।
शुद्धचिद्रूपसदध्यानमंतराधृतवानहम् ॥११॥

अर्थ- मैंने अनंतबार शौच संयम शीलों को भी धारण किया। भांति भांति के घोरतम तप भी जपे । परन्तु शुद्धचिद्रूप का कभी स्मरण न किया ।

११. ॐ ह्रीं दुर्धरतपविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शुचितास्वरूपोऽहम् ।

गुणशील शौचं संयम भी धारा है बार अनंतों ।
तप तथा धोर तप कर भी पाए हैं दुक्ख अनंतों ॥
फिर भी चिद्रूप शुद्ध का मैं ध्यान नहीं कर पाया ।
चिद्रप शुद्ध की महिमा का ज्ञान नहीं कर पाया ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥११॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

एकेन्द्रियादिजीवेषु पर्यायाः सकला धृताः ।
अजानता स्वचिद्रूपं परस्पर्शादि जानता ॥१२॥

अर्थ- मैं अनेक बार एकेन्द्रिय दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय हुआ। एकेन्द्रिय आदि में वृक्ष आदि अनन्तों पर्यायों को धारण किया। दूसरे के स्पर्श रस गंध आदि को भी जाना। परन्तु स्वस्वरूप शुद्धचिद्रूप आज तक न पाया, न पहिचाना ।

१२. ॐ ह्रीं एकेन्द्रियादिपर्यायरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अजन्मास्वरूपोऽहम् ।

इक द्वय त्रय चऊ पंचेन्द्रिय तन बहुत बार है पाया ।
एकेन्द्रिय तरु तन पाया रस गंध आदि भी पाया ॥

निश्चय व्यवहार मार्ग दोनो इन में से एक ओर सम्यक्।
इस पर ही चलना है तुझको करना श्रम पूरा सदा अथक॥

चिद्रूप शुद्ध से परिचय अब तक न कभी कर पाया ।
इस को न कभी पहचाना अतएव भ्रमण दुख पाया ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥१२॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

ज्ञातं दृष्टं सर्व सचेतनमचेतनम् ।
स्वकीयं शुद्धचिद्रूपं न कदाचिच्च केवलम् ॥१३॥

अर्थ- मैंने संसार में चेतन अचेतन समस्त पदार्थों को भले प्रकार देखा जाना। परन्तु केवल शुद्धचिद्रूप नाम का एक पदार्थ ऐसा बाकी बच गया, जिसे कभी मैंने न जाना न देखा ।

१३. ॐ ह्रीं अन्यसचेतनजीवद्रव्यप्रयोजनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजशिवधामस्वरूपोऽहम् ।

जग के चेतन व अचेतन सारे पदार्थ जाने है ।
संसार मध्य में रहकर देखे हैं पहचाने है ॥
केवल चिद्रूप शुद्ध निज देखा न कभी जाना है ।
उसकी सत्ता को भी तो मैंने न कभी माना है ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥१३॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

लोकज्ञातिश्रुतसुरनृपतिश्रेयसां भामिनीनां-
यतत्यादीनां वव्यवहृतिमखिलां ज्ञातवान् प्रायशोऽहम् ।
क्षेत्रादीनामशकलजगतो वा स्वभावं च शुद्ध-
चिद्रूपोऽहं ध्रुवमिति न कदा संसृतौ तीव्र मोहात् ॥१४॥

निज शुद्ध वस्तु त्रैकालिक ध्रुव है नित्यानंद सदैव पूर्ण ।
इसमें न राग की रेख कहीं है शक्ति अनंतों पूर्ण पूर्ण ॥

अर्थ- संसार में लोक ज्ञाति शास्त्र देव और राजाओं की विभूतियों को, स्त्रियों और मुनि आदि समस्त व्यवहार को कई बार मैंने जाना। क्षेत्र, नदी, पर्वत, आदि खण्ड खण्ड और समस्त जगत के स्वभाव को भी पहिचाना। परन्तु मोह की तीव्रता से मैं शुद्धचिद्रूप हूं इस बात को मैंने निश्चय रूप से कभी न जान पाया ।

१४. ॐ ह्रीं तीव्रमोहरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अस्पृष्टस्वरूपोऽहम् ।

सुर नृप विभूति को देखा लोकादि शास्त्र भी जाने ।
नारी मुनि आदिक के भी व्यवहार पूर्ण पहचाने ॥
क्षेत्रादिक पर्वत सब जग हे प्रभु मैंने पहचाना ।
चिद्रूप शुद्ध मैं ही हूं यह कभी न अब तक माना ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥१४॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

शीतकाले नदीतीरे वर्षाकाले तरोरधः ।
ग्रीष्मे नगशिरोदेशे स्थितो न स्वे चिदात्मनि ॥१५॥

अर्थ- बहुत बार मैं शीतकाल में नदी के किनारे, वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे और ग्रीष्म ऋतु में पर्वत की चोटियों पर स्थित हुआ। परन्तु अपने चैतन्य स्वरूप आत्मा में मैंने कभी स्थिति न की ।

१५. ॐ ह्रीं शीतकालनदीतीरनिववसादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चिदात्मनिवासोऽहम् ।

वर्षा में तरु तल बैठा सरदी में नदी किनारे ।
ग्रीषम में श्रृंग शिखर पर मैंने भीषणतप धारे ॥
मैं हूं चैतन्य स्वरूपी इसमें न हुआ प्रभु सुस्थिर ।
आत्मा में नहीं बसा मैं पर में ही रहता हो थिर ॥

रागादि विकारी भावों से यह चलित किन्तु है मलिन नहीं।
लगता है कठिन बहुत सबको पर बिलकुल ही यह कठिन नहीं॥

चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥१५॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

विहितो विविधोपायैः कायक्लेशो महत्तमः ।
स्वर्गादिकांक्षया शुद्धं स्वस्वरूपमजानता ॥१६॥

अर्थ- मुझे स्वर्ग आदि सुख की प्राप्ति हो इस अभिलाषा से मैंने अनेक प्रयत्नों से घोरतम कायक्लेश तप भी तपे। परन्तु शुद्धचिद्रूप की ओर जरा भी ध्यान न दिया। स्वर्ग चक्रवर्ती आदि के सुख के सामने मैंने शुद्धचिद्रूप को तुच्छ समझा ।

१६. ॐ ह्रीं कायक्लेशादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निराकाङ्क्षोऽहम् ।

स्वर्गादिक सुख पाने की अभिलाषा उर में जागी ।
बहुकाय क्लेश तप कीने पर मोह नींद ना भागी ॥
चिद्रूप शुद्ध के ऊपर मैं ध्यान नहीं दे पाया ।
चक्री सुख के आगे तो चिद्रूप शुद्ध ना भाया ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥१६॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

अधीतानि च शास्त्राणि बहुवारमनेकशः ।
मोहतो न कदा शुद्धचिद्रूपप्रतिपादकं ॥१७॥

अर्थ- मैंने बहुत बार अनेक शास्त्रों को पढ़ा। परन्तु मोह से मत्त हो शुद्धचिद्रूप का स्वरूप समझाने वाला एक भी शास्त्र न पढ पाया ।

१७. ॐ ह्रीं अनेकशास्त्राध्ययनविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

बोधसूर्यस्वरूपोऽहम् ।

निज निजानंद रूपी निज घर को तज कर कहाँ भागता है ।
पर में जगता है अरे मूढ़ निज में ना कभी जागता है ॥

बहु बार अनेक शास्त्रों को मत्त सदैव पढ़ा है ।
चिद्रूप शुद्ध समझाने वाला ना शास्त्र पढ़ा है ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥१७॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

न गुरुः शुद्धचिद्रूपस्वरूपप्रतिपादकः ।
लब्धो मन्ये कदाचित्तं विनाऽसौ लभ्यते कथम् ॥१८॥

अर्थ- शुद्धचिद्रूप का स्वरूप प्रतिपादन करने वाला आज तक मुझे कोई गुरु भी न मिला और जब गुरु ही कभी न मिला, तब शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति सर्वथा दुःसाध्य है ।

१८. ॐ ह्रीं गुरुविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरालम्बनस्वरूपोऽहम् ।

चिद्रूप शुद्ध बतलाने वाले गुरु कभी न पाए ।
जब गुरु नहीं मिले तो चिद्रूप कौन समझाए ॥
चिद्रूप शुद्ध की प्राप्ति दुःसाध्य सुगुरु के बिन है ।
चिद्रूप शुद्ध का मिलना अति ही दुर्लभ गुरु बिन है ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥१८॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

सचेतने शुभे द्रव्ये कृता प्रीतिरचेतने ।
स्वकीयेशुद्धचिद्रूपे न पूर्व मोहिना मया ॥१९॥

अर्थ- अतिशय मोही होकर मैंने, सजीव शुभ द्रव्यों में प्रीति की। अचेतन द्रव्यों को भी प्रीति का करने वाला माना। परन्तु आत्मिक शुद्धचिद्रूप में कभी प्रेम न किया ।

रत्नत्रय विषयक श्रद्धा अतिशय वृद्धिंगत हो प्रभु ।
इसका ही आश्रय उत्तम निर्मल हृदयंगत हो विभु ॥

१९. ॐ ह्रीं सचेतनाचेतनद्रव्यप्रीतिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजब्रह्मधामस्वरूपोऽहम् ।

अतिमोही होकर मैंने शुभ अशुभ सभी को चाहा ।
आत्मिक चिद्रूप शुद्ध को मैंने न कभी भी चाहा ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥१९॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

दुष्कराण्यपि कार्याणि हा शुभान्यशुभानि च ।
बहुनि विहितानीह नैव शुद्धात्मचिन्तनम् ॥२०॥

अर्थ- इस संसार में मैंने कठिन से कठिन भी शुभ और अशुभ कार्य किये। परन्तु आज तक शुद्धचिद्रूप की कभी चिन्ता न की ।

२०. ॐ ह्रीं दुष्करशुभाशुभकार्यविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

सरलबोधस्वरूपोऽहम् ।

अति कठिन शुभाशुभ कृत्यों को मैंने सदा किया है ।
चिद्रूप शुद्ध चिन्तन को मैंने उर में न लिया है ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥२०॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२१)

पूर्वं या विहिता क्रिया किल महामोहोदयेनाखिला
मूढत्वेन मयेह तत्र महतीं प्रतिं समातन्वता ।
चिदरूपाभिरतस्य भाति विषवत् सा मंदमोहस्य मे,
सर्वस्मिन्नधुना निरीहमनसोऽतो धिग् विमोहोदयं ॥२१॥

अर्थ- सासांरिक बातों में अतिशय को करने वाले, मोहनीय कर्म के उदय से मूढ बन

हो आविर्भूत हृदय में करुणा अनुकंपा स्वामी ।
जिनआगम की महिमा ही आए उर अंतर्यामी ॥

जो मैंने पहिले समस्त कार्य किये हैं, वे इस समय मुझे विष सरीखे दुःखदायी जान पड़ रहे हैं, क्योंकि इस समय मैं शुद्ध चिद्रूप में लीन हो गया हूं। मेरा मोह मन्द हो गया है, और सब बातों से मेरी इच्छा घट गई है, इसलिये इस मोहनीय कर्म के उदय के लिये सर्वथा धिक्कार है ।

२१. ॐ ह्रीं महामोहोदयजनितक्रियाविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरीहस्वरूपोऽहम् ।

पहिले जो कृत्य किए वे अति मोह मूढ़ हो मैंने ।
विष के समान वे लगते त्यागे विकार अब मैंने ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥२१॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२२)

व्यक्ताव्यक्तविकल्पानां वृंदैरापूरितो भृशम् ।
लब्धस्तेनावकाशो न शुद्धचिद्रूपचिन्तने ॥२२॥

अर्थ- व्यक्त और अव्यक्त दोनों प्रकार के विकल्पों से मैं सदा भरा रहा। कभी मैं अपने संकल्प विकल्पों को दूसरे के सामने प्रगट करता रहा, और कभी मेरे मन में ही वे टकराकर नष्ट होते रहे; इसलिये आज तक मुझे शुद्धचिद्रूप के चिन्तवन करने का कभी भी अवकाश न मिला ।

२२. ॐ ह्रीं व्यक्ताव्यक्तविकल्पवृंदरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अविकल्पोऽहम् ।

चिद्रूप शुद्ध में लय हो अब मैं सत्पथ पर आया ।
अब मोह मंद है मेरा गत जीवन सब बिसराया ॥
धिक्कार मोह को है प्रभु यह बहकाता पल पल में ।
मैं मोह दुष्ट के कारण बहता था भवदधि जल में ॥
चिद्रूप शुद्ध का वैभव मैंने न कभी पाया है ।
अतएव आत्मा मेरा चहुंगति में भटकाया है ॥२२॥

बाहयान्तर सर्व परिग्रह से ममता हो न हृदय में ।
आकिंचन भाव सतत हो हे प्रभुवर आत्म निलय में ॥

ॐ ह्रीं भट्टारकज्ञानभूषणविरचिततत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचद्रूपस्यपूर्वालब्धिप्रतिपादक पञ्चमाध्यो ज्ञानभास्कराय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्य

गीत दिग्पाल

अब तो विभाव भाव का विनाश कीजिए ।
अपने स्वभाव भाव का प्रकाश लीजिए ॥
कर्मो का बंध होता है अपनी ही भूल से ।
बंधों को नष्ट करके ध्रुव निवास लीजिए ॥
संयम की नाव से ही सब होते हैं भव के पार ।
संयम की यथाख्यात युत सुवास लीजिए ॥
मोहादि राग द्वेष हैं संसार के वर्धक ।
सम्यक्त्व ले के इन सभी का ह्रास कीजिए ॥
चहुंगति भ्रमण विनाश को आ जाइये निज में ।
मत पंच परावर्त्तनों का त्रास लीजिए ॥
जीवत्व शक्ति आपके अटूट पास है ।
अपने स्वरूप में ही सतत आप जीजिए ॥

दोहा

निरख आत्मा को हुआ चेतन परम विशाल ।
महाअर्घ्य अर्पण करूं होऊँ नाथ निहाल ॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्य नि. ।

जयमाला

छंद ताटंक

शुद्ध बुद्ध चिद्रूप निरंजन ज्ञानानंद स्वभावी है ।
सर्व विभाव शून्य निर्मल हैं यह पर द्रव्य अभावी है ॥

उत्कृष्ट शान्त शुद्धात्म तत्त्व है जन्म मरण से सदा रहित।
जीवत शक्ति से जीवित है गुण अनंत शक्तियों सहित ॥

परम पारिणामिकस्वभाव पति यह निःशल्य अरूपी है ।
निराकार है चित्स्वरूप है शाश्वत ब्रह्म स्वरूपी है ॥
निऑयापार रूप ज्ञानमय निर्भय ममल स्वरूपी है ।
अशरीरी अक्षय अंखंड है नित्यानंद अनूपी है ॥
विमलानंदी अजर अमर अविचल अविकल्प स्वरूपी है।
सिद्ध स्वरूपी मोक्ष स्वरूपी केवल ज्ञान स्वरूपी है ॥
ऐसा ही मेरा स्वरूप है शुद्ध बुद्ध है आनंद घन ।
नहीं पराश्रित भाव कहीं है सिद्ध स्वपद ही मेरा धन ॥
यह दृढ़ निश्चय करूं आज मैं ध्याऊं अपना शुद्ध स्वरूप।
भाव भासना हृदयंगम कर पाऊं ध्रुव चिन्मय चिद्रूप ॥
चिदानंद चिच्चमत्कार चैतन्य चंद्र चंद्रिका प्रसिद्ध ।
सिद्ध लोक में ही मिलती है चेतन जब होता है सिद्ध ॥

ॐ ह्रीं पंचम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि.।

आशीर्वाद

परम शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन महा विशाल ।
जो इसको उर धारते होते वही निहाल ॥

इत्याशीर्वाद :

रागादि भाव हिंसा है यह जिन वच कभी न माना ।
हरबार द्रव्य हिंसा को ही हिंसा मैंने माना ॥

ॐ

पूजन क्रमांक ७

तत्त्वज्ञान तरंगिणी षष्टम अध्याय पूजन

स्थापना

गीतिका

तत्त्व ज्ञान तरंगिणी अधिकार षष्टम है महान ।
चिद्रूप शुद्ध स्मरण से निर्मल बनो हो सावधान ॥
धर्म घ्यान महान हो उर में न कोई दंभ हो ।
शुक्ल ध्यान महान का भी फिर प्रभो आरंभ हो ॥

ॐ ह्रीं षष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं षष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीं षष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद चौपई आँचली बद्ध

निज निर्मल जल लाऊं नाथ जन्म मरण का तज दूँ साथ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
एक शुद्ध चिद्रूप महान करूं आत्मा का कल्याण ।
महासुख होय पूजे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं षष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

पुरुषार्थ सिद्ध करने को हो प्रभो आत्म अवलोकन ।
शिवपुर पर्यंत रहे प्रभु अंतर में निज का दर्शन ॥

शीतल चंदन लाऊं देव भव आतप ज्वर हरूँ स्वमेव ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
एक शुद्ध चिद्रूप महान करूं आत्मा का कल्याण ।
महासुख होय पूजे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं षष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसातरताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

उत्तम अक्षय लूं सुविचार अक्षय पद पाऊँ अविकार ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
एक शुद्ध चिद्रूप महान करूं आत्मा का कल्याण ।
महासुख होय पूजे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं षष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

भाव पुष्प की पाऊं गंध काम विनाशक स्वपद अबंध ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
एक शुद्ध चिद्रूप महान करूं आत्मा का कल्याण ।
महासुख होय पूजे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं षष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

दिव्य सुचरु की ले सौगात क्षुधा रोग का करूं विघात ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
एक शुद्ध चिद्रूप महान करूं आत्मा का कल्याण ।
महासुख होय पूजे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं षष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

धनोपार्जन करने का भाव न उर में जागे ।
भव राग धनोपार्जन का तत्क्षण ही स्वामी भागे ॥

ज्ञान दीप का ले आधार मोह तिमिर कर दूं सब क्षार ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
एक शुद्ध चिद्रूप महान करूं आत्मा का कल्याण ।
महासुख होय पूजे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं षष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

धूप दशांग धर्म की लाय आठों कर्म हरूं दुखदाय ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
एक शुद्ध चिद्रूप महान करूं आत्मा का कल्याण ।
महासुख होय पूजे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं षष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

उत्तम फल लाऊँ अविकार महामोक्षफल हो साकार ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
एक शुद्ध चिद्रूप महान करूं आत्मा का कल्याण ।
महासुख होय पूजे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं षष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

निज रस अर्घ्य बनाऊं नाथ पद अनर्घ्य का ही हो साथ।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
एक शुद्ध चिद्रूप महान करूं आत्मा का कल्याण ।
महासुख होय पूजे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं षष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य प्राप्ताय फलं नि. ।

संकल्प विकल्प न हों प्रभु अविकल्प दशा हो मेरी ।
अद्वैत भावना ही हो शिवपथ में मेरी चेरी ॥

अर्घ्यावलि

षष्टम अध्याय

शुद्ध चिद्रूप में निश्चलता का प्रतिपादन

(१)

जानति ग्रहिलं हतं ग्रहगणै ग्रस्तं पिशाचैःरुजा
भग्नं भूरिपरीषहैर्विकलतां नीतं जराचेष्टितम् ।
मृत्यासन्नतयागतं विकृतितां चेद् भ्रांतिमन्तं परे,
चिद्रूपोऽहमिति स्मृतिप्रवचनं जानंतु मामंगिनः ॥१॥

अर्थ- चिद्रूप की चिंता में लीन मुझे अनेक मनुष्य बावला, खोटे ग्रहों से अस्त व्यस्त, पिशाचों से ग्रस्त, रोगों से पीड़ित, भांति भांति की परिषहों से विकल, बहुत बुढ्ढा, जल्दी मरने वाला होने के कारण विकृत, और ज्ञान शून्य हो घूमने वाला जानते हैं, सो जानो। परन्तु मैं ऐसा नहीं हूं। क्योंकि मुझे इस बात का पूर्ण निश्चय है कि मैं शुद्ध चित्स्वरूप हूं ।

१. ॐ ह्रीं पिशाचादिग्रसनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

रुजारहितोऽहम् ।

वीरछंद

निज चिद्रूप शुद्ध चिन्ता में लीन प्रभो क्या पर से काम।
ग्रह पिशाच से ग्रस्त रोग पीड़ित जड़ तन से भी क्या काम॥
परीषहों से विकल शीघ्र पर सेवा से भी क्या है काम ।
ज्ञान शून्य हो जो भ्रमते हैं विकृत प्राणी से क्या काम॥
काम आग से जला हुआ है भूला है निज दृढ़ निष्काम।
मैं तो दृढ़ निश्चयी स्वयं हूँ शुद्ध चित्स्वरूपी ध्रुवधाम ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥१॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

मदमात्सर्य भावों से मैं दूर रहूँ हे स्वामी ।
जीतूँ कषाय की छलना जीतूं ये आस्रव नामी ॥

(२)

उन्मत्तं भ्रान्तियुक्तं गतनयनयुगं दिग्विमूढं च सुप्तं–
निश्चितं प्राप्तमूर्च्छं जलवहनगतं बालकावस्थमेतत् ।
स्वस्याधीनं कृतं वा ग्रहिलगतिगतं व्याकुलं मोहधूर्तैः–
सर्वे शुद्धात्मदृग्भीररहितमपि जगदभाति भेदज्ञचित्ते ॥२॥

अर्थ- जिस समय स्व और पर का भेद विज्ञान हो जाता है, उस समय शुद्धात्म दृष्टि से रहित यह जगत चित्त में ऐसा जान पड़ने लगता है, मानो यह उन्मत्त और भ्रांत है। इसके दोनों नेत्र बन्द हो गये हैं। यह दिग्विमूढ हो गया है। गाढ़ निद्रा में सो रहा है। मन रहित असैनी, मूर्छा में बेहोश और जल के प्रवाह में बहा जला जा रहा है। बालक के समान अज्ञानी हैं। मोहरूपी धूर्त ने अपना सेवक बना लिया है। बावला और व्याकुल बना दिया है ।

२. ॐ ह्रीं उन्मत्तभ्रांतिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

व्याकुलतारहितोऽहम् ।

स्वपर भेद विज्ञान जागते ही होते विशुद्ध परिणाम ।
यह जग तो उन्मत्त भ्रान्त है यह दिग्मूढ़ दुखों का धाम॥
मन विहीन असंज्ञी मूर्छित जल प्रवाह में बहता है ।
बालक के सम अज्ञानी है पागल जैसा रहता है ।
मोह रूप धूर्त्तों ने इसको विकल किया है बहु व्याकुल ।
मैं चिद्रूप शुद्ध चेतन हूँ रंच नहीं हूं मैं आकुल ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥२॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

स्त्रीणां भर्त्ता बलानां हरय इव धरा भूपतीनां स्ववत्सो
धेनूनां चक्रवाक्या दिनपतिरतुलश्चातकानां घनार्णः ।

पर की दुर्गंध न हो प्रभु निज की सुगंध ही महके ।
शिवमय निज नंदन वन अब मेरे गीतों से चहके ॥

कासाराद्यपूचराणाममृतमिव नृणां वा निजौकः सुराणां-
वैद्यो रोगातुराणां प्रिय इव हृदि मे शुद्धचिद्रूपनामा ॥३॥

अर्थ- जिस प्रकार स्त्रियों को अपना स्वामी, बलभद्रों को नारायण राजाओं को पृथ्वी गौओं को बछड़े, चकवियों को सूर्य, चातकों को मेघ का जल, जलचर आदि जीवों को तालाब आदि मनुष्यों को अमृत, देवों को स्वर्ग; और रोगियों को वैद्य अधिक प्यारा लगता है। उसी प्रकार मुझे शुद्धचिद्रूप का नाम परम प्रिय मालूम होता है। इसलिये मेरी यह कामना है कि मेरा प्यारा शुद्धचिद्रूप सदा मेरे हृदय में विराजमान रहे ।

३. ॐ ह्रीं भर्ताप्रियस्त्र्यादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

नीरोगस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

पत्नी को अपना पति प्रिय बलभद्रों को नारायण प्रिय ।
नृप को पृथ्वी गौ को बछड़ा चकवी को दिनकरअति प्रिय॥
मेघ नीर चातक को प्रिय है जल चर को तालाब सुप्रिय।
मनुजों को गृह प्रिय देवों को स्वर्ग वैद्य रोगी को प्रिय ॥
उसी भांति चिद्रूप शुद्ध का नाम मुझे भी प्यारा है ।
अतः शुद्ध चिद्रूप हृदय में बड़े प्रेम से धारा है ॥
रहो सदा मेरे अंतर में मेरे परम शुद्ध चिद्रूप ।
तुम्हें प्राप्त कर कुछ न चाहिए तुम ही अंतरंग के भूप ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥३॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

शापं वा कलयंति वस्तुहरणं चूर्ण वधं ताडनं,
छेदं भेदगदादिहास्यदहनं निंदाऽऽपदापीडनम् ।

समकित का प्रति बंधक है मिथ्यात्व जिनेश्वर कहते ।
जो इसको गले लगाते वे ही भव दुख बहु सहते ॥

पव्यग्न्यब्ध्यगपंककूपवनभूक्षेपापमानं भयं–
केचिच्चेत् कलयंतु शुद्धपरमब्रह्मस्मृतावन्वहम् ॥४॥

अर्थ- जिस समय मैं शुद्धचिद्रूप के चिंतवन में लीन होऊँ, उस समय दुष्ट मनुष्य यदि मुझे निरन्त शाप देवें, दो। मेरी चीज चुरायें, चुराओ। मेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े करें, करो। शिरपर वज्र डालें, डालो। अग्नि, समुद्र, पर्वत, कीचड़, कूए, वन और पृथ्वी पर फेकें, फेंको। अपमान और भय करें करो। मेरा कुछ बिगाड़ नहीं हो सकता। अर्थात् वे मेरी आत्मा को किसी प्रकार भी हानि नहीं पहुंचा सकते ।

४. ॐ ह्रीं वधताडनादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अवध्यस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

जब मैं परम शुद्ध चिद्रूप चिन्तवन में हो जाऊं लीन ।
उस क्षण दुष्ट मनुष्य निरंतर देवे शाप करें तन क्षीण ॥
मेरी वस्तु चुरावें तन को छेदे भेदें विविध प्रकार ।
वज्र अग्नि पर्वत समुद्र वन पृथ्वी के दें कष्ट अपार ॥
भय पहुंचाते या अपमान करें वे मेरा बारंबार ।
मेरी कुछ भी हानि नहीं है मैं तो रहता हूं अविकार ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥४॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(५)

चन्द्रार्कभ्रमवत्सदा सुरनदीधारौघसंपातव-
ल्लोकेस्मिन् व्यवहारकालगतिवद् द्रव्यस्य पर्यायवत् ।
लोकाधस्तलवातसंगमनवत् पद्मादिकोदभूतिवत्-
चिद्रूपस्मरणं निरन्तरमहो भूयाच्छिवाप्त्यै मम ॥५॥

अर्थ- जिस प्रकार संसार में सूर्य चन्द्रमा निरन्तर घूमते रहते हैं। गंगा नदी की धार

सर्व ज्ञान दर्शी स्वभाव से देखन जानन हारा है ।
किन्तु कर्म फल से जो प्रेरित उसको ही भव धारा है॥

निरन्तर बहती रहती है। घंटा घडी पल आदि व्यवहार काल का भी सदा हेर फेर होता रहता है । द्रव्यों की पर्यायें पलटती रहती हैं। लोक के अधो भाग में घनवात तनुवात अबुंवात ये तीनों वातें सदा घूमती रहती है । और तालाब आदि में पद्म आदि सदा उत्पन्न होते रहते हैं। उसी प्रकार मेरे मन में भी सदा शुद्ध चिद्रूप का स्मरण बना रहे। जिससे मेरा कल्याण हो ।

५. ॐ ह्रीं क्षणिकपर्यायविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शाश्वतनिजात्मस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

सूर्य चंद्र ज्यों चलते रहते ज्यों गंगा धारा बहती ।
घटा घड़ी आदि व्यवहार काल गति परिवर्त्तित होती ॥
द्रव्यों की पर्यायें पलटा करती हैं सदैव दिनरात ।
तथा लोक के अधोभाग में तीनों बात वलय विख्यात ॥
सभी घूमते कमल सरोवर में पैदा होते रहते ।
उसी भांति चिद्रूप स्मरण के ही भाव सदा रहते ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥५॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

इति हृत्कमले शुद्धचिद्रूपोऽहं तिष्ठतु ।
द्रव्यतो भावतस्तावद् यावदंगे स्थितिर्मम ॥६॥

अर्थ- जब तक मैं द्रव्य या भाव किसी रीति से इस शरीर में मौजूद हूं।.तब तक मेरे हृदय कम में शुद्धचिद्रूपोहं (मैं शुद्ध चित्स्वरूप हूं) यह बात सदा स्थित रहे। रक्त मज्जा आदि घातुओं का पिण्ड स्वरूप द्रव्य शरीर है और वह मेरा हैं ऐसा संकल्प भाव शरीर है ।

६. ॐ ह्रीं संकल्परूपभावशरीररहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानशरीरस्वरूपोऽहम् ।

एक शुद्ध परमार्थ समय है यही केवली मुनि ध्यानी ।
जो स्वभाव में सुस्थित मुनि है वह निर्वाण रूप ज्ञानी ॥

द्रव्य भाव से इस जड़ तन में जब तक मेरा आत्मा हो।
हृदय कमल में एक शुद्ध चिद्रूप सदा ही उत्तम हो ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥६॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

दृश्यंते तीव निःसारा क्रिया वागंगचेतसाम् ।
कृतकृत्यत्वतः शुद्धचिद्रूपं भजता सता ॥७॥

अर्थ- मैं कृतकृतत्य हो चुका हूं। संसार मे मुझे करने के लिये कुछ भी काम बाकी नहीं रहा हैं; क्योंकि मैं शुद्धचिद्रूप के चिन्तवन में दत्त हूं। इसलिये मन वचन और शरीर की अन्य समस्त क्रियाएं मुझे अत्यन्त निस्सार मालूम पड़ती है। उनमें कोई सार दृष्टिगोचर नहीं होता ।

७. ॐ ह्रीं शरीरादिनिःसारक्रियारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

कृतकृत्योऽहम् ।

वीरछंद

कृतकृत्य है अब करने को कोई काम नहीं है शेष ।
परम शुद्ध चिद्रूप चिन्तवन में है दत्त चित्त निजवेश ॥
मन वच काय क्रियाएं सारी अतः हुई सब ही निस्सार ।
नहीं दृष्टि गोचर है कोई इसमें रत्ती भर भी सार ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥७॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

किंचित्कदोत्तं क्वापि न यतो नियमान्नमः ।
तस्मादनंतशः शुद्धचिद्रूपाय प्रतिक्षणम् ॥८॥

सन्यास विभावों से ही हो सिद्ध ज्योति अंतर में ।
पूनम के चंदा सम हो अखंड बुद्धि निज उर में ॥

अर्थ- किसी काल और किसी देश में शुद्ध चिद्रूप से बढ़कर कई भी पदार्थ उत्तम नहीं है, ऐसा मुझे पूर्ण निश्चय है। इसलिये मैं इस शुद्ध चिद्रूप के लिये प्रति समय अनन्त बार नमस्कार करता हूं ।

८. ॐ ह्रीं परमज्ञानपुञ्जस्वरूपाय नमः ।

परमसौख्यधामस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

किसी काल में किसी देश में नहीं कोई सर्वोत्तम है ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध निज अत्युत्तम परमोत्तम है ॥
अतः शुद्ध चिद्रूप प्रतिसमय का आदर करता हूं नाथ ।
यही भाव है यही अचल है यही विमल है यही सनाथ ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥८॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

वाहायंतःसंगमंगं नृसुरपतिपदं कर्मबंधादि भाव-
विद्याविज्ञानशोभाबलभवखसुखं कीर्तिरूपप्रतापम् ।
राज्यांगाख्यागकालास्रवकुपरिजनं वाग्मनोयानधीद्धा-
तीर्थशत्वं ह्यनित्यं स्मर परमचलं शुद्धचिद्रूपमेकम् ॥९॥

अर्थ- बाह्य आभ्यंतर परिग्रह शरीर, सुरेन्द्र और नरेन्द्र का पद कर्मबन्ध आदिभाव, विद्या विज्ञान कला कौशल शोभा बल जन्म इन्द्रियों का सुख कीर्ति रूप प्रताप राज्य पर्वत नाम वृक्ष काल आस्रव पृथ्वी परिवार वाणी मन वाहन बुद्धि दीप्ति तीर्थकरपना आदि सब पदार्थ चालयमान अनित्य हैं। केवल शुद्धचिद्रूप नित्य है और सर्वोत्तम है इसलिये सब पदार्थो का ध्यान छोडकर इसी का ध्यान करो ।

९. ॐ ह्रीं अनित्यस्वरूपराज्यपर्वतादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

परमाचलस्वरूपोऽहम् ।

हो मुक्ति लक्ष्मी से ही मेरा परिणय इस भव में ।
कैवल्य ज्ञान धारण कर जाऊं मैं मुक्ति सदन में ॥

वीरछंद

इन्द्र चक्रवर्त्ती पद विद्यावान कला कौशल बहु कीर्त्ति ।
रूप राज्य वैभव कुटुम्ब सब वाणी है अनित्य भवभीति ॥
वाहन बुद्धि दीप्ति तीर्थकरपना सभी हैं सदा अनित्य ।
एक शुद्ध चिद्रूप शाश्वत त्रैकालिक परमोत्तम नित्य ॥
इस अविनाशी ध्रुव का ही है ध्यान परम मंगलकारी ।
पर पदार्थ सब अल्पावधि में क्षय हो देते दुखभारी ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥९॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

रागाद्या न विधातव्याः सत्यसत्यपि वस्तुनि ।
ज्ञात्वा स्वशुद्धचिद्रूपं तत्र तिष्ठ निराकुलः ॥१०॥

अर्थ- शुद्धचिद्रूप के स्वरूप को भले प्रकार जानकर भले बुरे किसी भी पदार्थ में राग द्वेष आदि न करो सर्व में समता भाव रक्खो। और निराकुल हो अपनी आत्मा में स्थिति करो ।

१०. ॐ ह्रीं सत्यसतिवस्तुविषयकरागादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निराकुलचिद्रूपोऽहम् ।

निज चिद्रूप स्वरूप ज्ञान कर लो अपने परिणाम सुधार।
भले बुरे में राग द्वेष बिन समता भाव रखो श्विकार ॥
एक शुद्ध चिद्रूप ध्यान से यह संसार नाश होता ।
अतिहितकारी शिव सुखकारी निरुपम मोक्ष प्राप्त होता ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥१०॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

जो अपरमार्थ भाव में स्थित जप तप व्रत धारण करता।
उसके जप तप व्यर्थ बालव्रत वह न कर्म रज को हरता॥

(११)

चिद्रूपोऽहं स मे सत्मात्तं पश्यामि सुखी ततः ।
भव क्षतिर्हितं मुक्ति र्निर्यासोऽयं जिनागमे ॥११॥

अर्थ- मैं शुद्धचिद्रूप हूं इसलिये मैं उसको देखता हूं और उसी से मुझे सुख मिलता है जैन शास्त्र का भी यही निचोड़ है। उसमें भी यही बात बतलाई है कि शुद्धचिद्रूप के ध्यान से संसार का नाश और हितकारी मोक्ष प्राप्त होता है ।

११. ॐ ह्रीं स्वसुखसंपतिस्वरूपाय नमः ।

स्वयंभूस्वरूपोऽहम् ।

देख देख चिद्रूप शुद्ध को उससे ही सुख मिलता है ।
जिन शास्त्रों का यह निचोड़ संसार नाश सुख झिलता है ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥११॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

चिद्रूपे केवले शुद्धे नित्यानंदमये यदा ।
स्वे तिष्ठति तदा स्वस्थः परमार्थतः ॥१२॥

अर्थ- आत्मा स्वस्थ स्वरूप उसी समय कहा जाता है, जबकि वह सदा आनन्दमय केवल अपने शुद्धचिद्रूप में स्थिति करता है। अन्य पदार्थों में स्थिति रहने पर उसे स्व में स्थित स्वस्थ कहना भ्रम है ।

१२. ॐ ह्रीं केवलशुद्धनित्यानन्दमयशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानारामस्वरूपोऽहम् ।

स्वस्थ स्वरूप उस समय होता जब स्व में सुस्थित होता।
अन्य पदार्थों में स्थित को तो सदैव भ्रम ही होता ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥१२॥

जो परमार्थ बाह्य होते हैं नियम शील पालन करते ।
वे निर्वाण नहीं पाते हैं कभी न कर्मो को हरते ॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

निश्चलः परिणामोस्तु स्वशुद्धचिति मामकः ।
शरीरमोचनं यावदिव भूमौ सुराचलः ॥१३॥

अर्थ- जिस प्रकार पृथ्वी में मेरु पर्वत निश्चल रूप से गड़ा हुआ है। जरा भी इसे कोई हिला चला नहीं सकता। उसी प्रकार मेरी भी यही कामना है कि जब तक इस शरीर का सम्बन्ध नहीं छूटता, तब तक इसी आत्मिक शुद्धचिद्रूप में मेरा भी परिणाम निश्चल रूप से स्थित रहे। जरा भी इधर उधर न भटके ।

१३. ॐ ह्रीं स्वशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निष्कम्पोऽहम् ।

तातंक

ज्यों सुमेरु पर्वत पृथ्वी में गड़ा हुआ हैं सतत अचल ।
कोई नहीं हिला सकता है नहीं चला सकता इक पल ॥
उसीं भांति चिद्रूप शुद्ध में निश्चल हों मेरे परिणाम ।
जब तक तन संयोग तभी तक कहीं न भटके अल्प विराम॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥१३॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

सदा परिणतिर्मेऽस्तु शुद्धचिद्रूपकेऽचला ।
अष्टमीभूमिकामध्ये शुभा सिद्धशिला यथा ॥१४॥

अर्थ- जिस प्रकार प्रारभारनामा आठवीं पृथ्वी में अत्यन्त शुभ सिद्धशिलाा निश्चल रूप से विराजमान है । उसी प्रकार मेरे मन की परिणति भी इस शुद्धचिद्रूप में निश्चल रूप से स्थित रहे ।

१४. ॐ ह्रीं पारिणामिकभावाय नमः ।

अचलचिद्रूपोऽहम् ।

जो परमार्थ बाह्य होते है मोक्ष हेतु जानते नहीं ।
वे अज्ञानी पुण्य चाहते जिनवर वच मानते नहीं ॥

अष्टम वसुधा त्रिलोकाग्र में सिद्ध शिला है ज्यों सुस्थित।
उसी भांति मेरी परिणति भी है निश्चल निज में ही थित॥
एक शुद्ध चिद्रूप चतुष्टय ही मेरा है शुद्ध निवास ।
अखिल विश्व में या कि मोक्ष में वह ही है अविनाशी वास॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥१४॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

चलति सन्मुनीन्द्राणां निर्मलानि मनांसि न ।
शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानात् सिद्धक्षेत्राच्छिवा यथा ॥१५॥

अर्थ- जिस प्रकार कल्याणकारी सिद्ध क्षेत्र से सिद्ध भगवान किसी रीति से चलायमान नहीं हो सकते। उसी प्रकार उत्तम मुनियों के निर्मल मन भी शुद्धचिद्रूप के ध्यान से कभी चल विचल नहीं हो सकते ।

१५. ॐ ह्रीं निर्मलचिद्रूपाय नमः ।

निश्चलब्रह्मोऽहम् ।

जैसे सिद्ध क्षेत्र से होते सिद्ध कभी भी चलित नहीं ।
उसी भांति मुनि की निर्मलता भी होती है चलित नहीं ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥१५॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

मुनीश्वरैस्तथाभ्यासो दृढः सम्यग्विधीयते ।
मानसं शुद्धचिद्रूपे यथाऽत्यन्तं स्थिरीभवेत् ॥१६॥

अर्थ- मुनिगण इस रूप से शुद्धचिद्रूप के ध्यान का अभ्यास करते हैं कि उनका मन शुद्धचिद्रूप के ध्यान में सदा निश्चल रूप से स्थित बना रहे। जरा भी इधर उधर चल

जीवादिक नौ पदार्थ की श्रद्धा ही है संम्यक्त्व प्रधान ।
जीवादिक नौ पदार्थ का अधिरूप यही है सम्यक् ज्ञान ॥

विचल न हो सके ।

१६. ॐ ह्रीं अविचलचिद्रूपाय नमः ।

अचलशिवोऽहम् ।

वीरछंद

नहीं ध्यान से कभी चल विचल होने पाते हैं मुनिराज ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध का ध्यान हृदय में सतत विराज ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥१६॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

सुखे दुःखे महारोगे क्षुधादीनामुपद्रवे ।
चतुर्विधोपसर्गे च कुर्वे चिद्रूपचिंतनम् ॥१७॥

अर्थ- सुख दुःख में, उग्र रोग और भूख प्यास आदि के भयंकर उपद्रवों में तथा मनुष्यकृत देवकृत तिर्यचकृत और अचेतनकृत चारों प्रकार उपसर्गो में, मैं शुद्धचिद्रूप का ही चिंतवन करता रहूं। मुझे उनके उपद्रव से उत्पन्न वेदना का जरा भी अनुभव न हो ।

१७. ॐ ह्रीं क्षुधामहारोगाद्युपद्रवरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरुपद्रवस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

सुख दुख उग्र रोग हो अथवा भूख प्यास आदिक दुख हो।
होय उपद्रव महा भयंकर नर सुर त्रियंच कृत दुख हो ॥
चेतन तथा अचेतन कृत उपसर्ग विविध हों दुख कर्त्ता ।
एक शुद्ध चिद्रूप चिन्तवन ही सर्वोत्तम सुख कर्त्ता ॥
सर्व उपद्रव जनित वेदना का अनुभव हो अल्प नहीं ।
निर्विकल्प ही रहूं सदा मैं उर में उट्टे जल्प नहीं ॥

रागादिक का त्याग शुद्ध चारित्र मोक्ष का मार्ग महान ।
ये ही निश्चय रत्नत्रय है जो शिव सुख दाता निर्वाण ॥

मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥१७॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

निश्चलं न कृतं चित्तमनादौ भ्रमतो भवे ।
चिद्रूपे तेन सोढानि महादुःखान्यहो मया ॥१८॥

अर्थ- इस संसार में मैं अनादिकाल से घूम रहा हूं। हाय! मैंने कभी भी शुद्धचिद्रूप में अपना मन निश्चल रूप से न लगाया। इसलिये मुझे अनन्त दुःख भोगने पड़े । अर्थात् यदि मैं संसार के कार्यों से अपना मन हटाकर शुद्धचिद्रूप में लगाता, तो क्यों मुझे अपार वेदना सहनी नहीं पड़ती ।

१८. ॐ ह्रीं भवभ्रमणरूपमहादुःखरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

महाचित्सुखस्वरूपोऽहम् ।

मैं अनादि से भ्रमण कर रहा हूं संसार मध्य स्वामी ।
नहीं शुद्ध चिद्रूप ध्यान है निश्चल हुआ न मैं स्वामी ॥
अतः बहुत दुख भोगे मैंने सही वेदना विविध प्रकार ।
एक शुद्ध चिद्रूप ध्यान करता तो हो जाता मैं पार ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥१८॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

य याता यांति यास्यंति निर्वृति पुरुषोत्तमाः ।
मानसं निश्चलं कृत्वा स्वे चिद्रूपे न संशयः ॥१९॥

अर्थ- जो पुरुषोत्तमा महात्मा मोक्ष गये, या जा रहें हैं, और जावेंगे । इसमें कोई सन्देह नहीं उन्होंने अपना मन शुद्ध चिद्रूप के ध्यान में निश्चल रूप से लगाया, लगाते हैं और लगावेंगे ।

जो निश्चय भूतार्थ त्याग व्यवहार मध्य वर्त्तन करते ।
वे स्वभाव का निषेध करते कभी नहीं भव दुख हरते ॥

१९. ॐ ह्रीं संशयरहितचिद्रूपाय नमः ।

निःशङ्कस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

जो भी मोक्ष गए हैं अथवा आज जा रहे हैं मुनिराज ।
आगे भी जो मोक्ष जाएंगे सिद्ध करेंगे अपना काज ॥
सबने ही निश्चल हो अपने चिद्रूपी को ही ध्याया ।
पहिले भी ध्याया था आगे भी ध्या कर शिव सुख पाया॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥१९॥

ॐ ह्रीं षष्टम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

निश्चलोंऽगी यदा शुद्धचिद्रूपोऽहमिति स्मृतौ ।
तदैव भावमुक्तिः स्यात्क्रमेण द्रव्यमुक्तिभाग् ॥२०॥

अर्थ- जिस समय निश्चल मन से यह स्मरण किया जाता है कि मैं शुद्धचिद्रूप हूं भाव मोक्ष उसी समय हो जाता है। और द्रव्य मोक्ष क्रम क्रम से होता चला जाता है ।

२०. ॐ ह्रीं द्रव्यभावमुक्तिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

स्वयंप्रभस्वरूपोऽहम् ।

जिस क्षण निश्चल मन से सुमिरण करता परम शुद्ध चिद्रूप ।
भाव मोक्ष तत्क्षण ही होता द्रव्य मोक्ष भी हो अनुरूप ॥
अतः शुद्ध चिद्रूप ध्यान ही एकमात्र करने के योग्य ।
मैं हूं परम शुद्धचिद्रूपी यही योग्य बस शेष अयोग्य ॥
मैं ही तो चिद्रूप शुद्ध हूं उत्तम लक्ष्य मोक्ष का धाम ।
इसको ही पाना है मुझको इसमें करना है विश्राम ॥२०॥

ॐ ह्रीं भट्टारकज्ञानभूषणविरचिततत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपस्मरणनिश्चलताप्रतिपादक षष्ठाध्याये अचलज्ञानस्वरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जो परमार्थ आश्रय लेते वे करते कर्मो का नाश ।
पर व्यवहार प्रवर्त्तन करने वाले कर्म न करते नाश ॥

महाअर्घ्य

गीत दिपाल

रागादि भाव मेरे कोई नहीं लगते है ।
चेतन के जागते ही तत्काल ये भगते हैं ॥
सोया हैं मोह नींद में चेतन अनादि से ।
चारों कषाय के दल आकर इसे ठगते हैं ॥
ये भागते हैं विषय चोर निमिष मात्र में ।
जब शुद्ध भाव चेतन के हृदय में जगते हैं ॥
आनंद अतीन्द्रिय की धारा भी होती प्राप्त ।
अनुभव स्व रस के भीतर आनंद से पगते हैं ॥
चिद्रूप शुद्ध का ही जो ध्यान लगाते हैं ।
कितना ही डिगाओ वे बिलकुल नहीं डिगते हैं ॥

दोहा

ज्ञान भावना उदधि है निज चेतन चिद्रूप ।
महाअर्घ्य अर्पण करूं लखूँ न पर का रूप ॥

ॐ ह्रीं षष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्य नि. ।

जयमाला

वीरछंद

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी करने में असमर्थ ।
सब अपना अपना करते हैं अपने में है पूर्ण समर्थ ॥
धर्म श्रेष्ठ मंगल कारी है सम्यक् दर्शन जिसका मूल ।
यह अनादि मिथ्यात्व भाव ही अज्ञानी जीवों की भूल ॥
स्थित प्रज्ञ जीव होता है तो विष अमृत बन जाता ।
पर में थित होता है तो फिर अमृत भी विष हो जाता ॥

तिरोभूत श्रद्धान कर रहे तिरोभूत करते जो ज्ञान ।
तिरोभूत चारित्र कर रहे कैसे पा सकते निर्वाण ॥

पर समयी पर भव में जाता भ्रम भ्रम भव दुख पाता है।
निज समयी स्व समय में थित हो शाश्वत शिव सुख पाता है॥
ज्ञान मूर्त्ति हूँ चिदानंद हूँ वीतराग हूँ शुद्ध स्वरूप ।
अणु भर भी तो राग नहीं है मेरे भीतर है चिद्रूप ॥
ईधन को पाकरके अग्नि जला करती है अपने क्रम ।
ईधन के अभाव में हो जाती प्रशान्त यह अटलनियम ॥
यह मोहाग्नि महान विकट है नित प्रति बढ़ती जाती है ।
असमय समय नहीं बुझती पा ज्ञान स्वयं बुझ जाती है ॥
समकित के नन्हें विरवे को अनुभव रस जल से सींचो।
शुद्ध ज्ञान तरु को अपने तत्त्वाभ्यास जल से सींचो ॥
तरु चारित्र उगेतो वहवैराग्य नीर से ही सीचो ।
रत्नत्रय के महा वृक्ष को नीर तपस्या से सीचो ॥
यही मोक्ष की कला तुम्हारे भीतर पड़ी हुई पावन ।
इसका नित उपयोग करो तो पाओ शिवसुख मन भावन॥
एक शुद्ध चिद्रूप भावना त्रिभुवन में है मंगलकार ।
सर्व सौख्य कल्याण प्रदायक महिमामयी महान अपार ॥

ॐ ह्रीं षष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

परम शुद्ध चिद्रूप के गाओ अब तो गीत ।
ध्येय बना स्व स्वभाव को करो उसी से प्रीत ॥

इत्याशीर्वाद :

जीवन में यदि सम्यक्त्व न हो तो संयम् ना सुख दायी हैं ।
जप तप व्रत से आचरण शून्य मानव जीवन दुखदायी है॥

ॐ

पूजन क्रमांक ८

तत्त्वज्ञान तरंगिणी सप्तम अध्याय पूजन

स्थापना

छंद गीतिका

तत्त्वज्ञान तरंगिणी अधिकार सप्तम श्रेष्ठ है ।
शुद्ध निज चिद्रूप को तो भूलना ही नेष्ठ है॥
शुद्ध निज चिद्रूप से जब तक हृदय जोडूँ नहीं ।
तब तलक व्यवहार सम्यक् हे प्रभो छोडूँ नहीं ॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद मानव

संसार जलधि क्षय करने का निश्चय मैंने ठाना ।
भव पार शीघ्र जाने को सम्यक् जल मिला सुहाना॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा निज अंतरग में लाऊं ।
अब काल लब्धि आयी है तो करणलब्धि भी लाऊं ॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

सम्यक्त्व भेद विज्ञान बिना होता न कभी निश्चय जानो।
महिमा है भेद ज्ञान निधि की इस महिमा को तो पहिचानो॥

चंदन मलयागिर वाला अब तो न मुझे भाता है ।
भव ताप विनाशक चंदन परिपूर्ण सौख्य लाता है ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा निज अंतरग में लाऊं ।
अब काल लब्धि आयी है तो करणलब्धि भी लाऊं ॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

स्वर्गादिक दाता अक्षत नंदन वन में मिल जाते ।
अक्षय पद के दाता ही निज अक्षत मुझे सुहाते ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा निज अंतरग में लाऊं ।
अब काल लब्धि आयी है तो करणलब्धि भी लाऊं ॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्रापप्ताय अक्षतं नि. ।

पुण्यों के पुष्प सु कोमल नश्वर साता दायक हैं ।
निष्काम पुष्प ही मेरे चिर काम व्याधि नाशक हैं ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा निज अंतरग में लाऊं ।
अब काल लब्धि आयी है तो करणलब्धि भी लाऊं ॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनासनाय पुष्पं नि. ।

अनुभव रस भीने चरु की महिमा ही मुझे सुहायी ।
चिर क्षुधा रोग. क्षय करने की वेला मैंने पायी ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा निज अंतरग में लाऊं ।
अब काल लब्धि आयी है तो करणलब्धि भी लाऊं ॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

जब निज परिणति जागे उर में तो फिर संयम सुखदायी है।
जो स्वपर विवेक जगा उर में वह सदा सौख्य शिवदायी है ॥

शाश्वत स्वज्ञान दीपक का पाया मैंने उजियारा ।
अज्ञान भाव क्षय करता मिट जाता भ्रम अंधियारा ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा निज अंतरग में लाऊं ।
अब काल लब्धि आयी है तो करणलब्धि भी लाऊं ॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

निज ध्यान धूप अति पावन है प्रभु अब मैंने पायी ।
कर्मो के क्षय करने को निज की चर्चा ही भायी ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा निज अंतरग में लाऊं ।
अब काल लब्धि आयी है तो करणलब्धि भी लाऊं ॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्ट कर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

जिनपद निज पद में अंतर अब तक था मैंने माना ।
जब अंतर दूर हुआ तो शिवफल ही निज फल जाना ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा निज अंतरग में लाऊं ।
अब काल लब्धि आयी है तो करणलब्धि भी लाऊं ॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

शुभ कर्मो के अर्घ्यो से आरती सदैव उतारी ।
पदवी अनर्घ्य पाने की अब आयी मेरी बारी ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा निज अंतरग में लाऊं ।
अब काल लब्धि आयी है तो करणलब्धि भी लाऊं ॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय फलं नि. ।

समकित बिन जो संयम धरता वह भ्रमण चुतर्गति करता है ।
कर्मो की एक प्रकृति का भी वह कभी नाश ना करता है ॥

अर्घ्यावलि

सप्तम अध्याय

शुद्ध चिद्रूप के स्मरण में नयों के अवलंबन का वर्णन

(१)

न यामि शुद्धचिद्रूपे लयं यावदहं दृढ़म् ।
न मुंचामि क्षणं तावद् व्यवहारावलम्बनम् ॥१॥

अर्थ- जब तक मैं दृढ़ रूप से शुद्धचिद्रूप में लीन न हो जाऊं तब तक मैं व्यवहारनय का सहारा हीं छोड़ सकता। व्यवहारनय को अवश्य काम में लाऊंगा ।

१. ॐ ह्रीं व्यवहारावलंबनविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

स्वावलम्बोऽहम् ।

तांटक

जब तक दृढ़ता से चिद्रूप शुद्ध में लीन न हो जाऊँ ।
तब तक नय व्यवहार न छोड़ूँ जबतक निश्चय ना पाऊं॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ ॥१॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम्माय अर्घ्यं नि. ।

(२)

अशुद्धं किल चिद्रूप लोके सर्वत्र दृश्यते ।
व्यवहारनयं श्रित्वा शुद्ध बोधदृशा क्वचित् ॥२॥

अर्थ- व्यवहारनय के अवलंबन से सर्वत्र संसार में अशुद्ध ही चिद्रूप दृष्टिगोचर होते हैं। निश्चयनय से शुद्ध तो भेदज्ञान दृष्टि द्वारा कहीं किसी आत्मा में ही दीखता है ।

२. ॐ ह्रीं शुद्धबोधस्वरूपाय नमः ।

नित्यशुद्धोऽहम् ।

वीरछंद

शुद्ध एक सम्यक् स्वरूप मैं निज गुण वैभव से संपन्न ।
गुण अनंत का स्वामी हूं मैं रंच मात्र भी नहीं विपन्न ॥

जब तक है व्यवहार जगत का तब तकहै अशुद्ध चिद्रूप।
निश्चयाश्रित जो मुनि होते दिखता उन्हें शुद्ध चिद्रूप ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ ॥२॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

चिद्रूपे तारतभ्येन गुणस्थानाच्चतुर्थतः ।
मिथ्यात्वादद्युदयाद्याख्यमलापायाद् विशुद्धता ॥३॥

अर्थ- मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध मान लोभ के उदयादि रूप मल का अभाव होने के कारण चौथे गुणस्थान से चिद्रूप में तरतम भाव से विशुद्धि उत्पन्न होती है ।

३. ॐ ह्रीं मिथ्यात्वमलरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अमलश्रद्धास्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

चौथे गुणस्थान में ज्यों मिथ्यात्वादिक मल क्षय होते ।
त्यों चिद्रूप विशुद्धि प्राप्त कर आगे भी निर्मल होते ॥
बिन मिथ्यात्वादिक मल नाशे नहीं शुद्ध होता चिद्रूप ।
जब हो जाता पूर्ण शुद्ध यह फिर न कभी होता चिद्रूप ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ ॥३॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

मोक्षस्वर्गार्थिनां पुंसां तात्विकव्यवहारिणाम् ।
पन्थाः पथक् पृथक् रूपो नागरागारिणामिव ॥४॥

अर्थ- जिस प्रकार जुदे जुदे नगर के जान वाले पथिकों के मार्ग जुदे जुदे होते हैं। उसी

ज्ञान भावना का स्वरूप उर सर्व जीव हितकारी है ।
नहीं क्लेशकारी है अणुभर सदा सदा सुखकारी है ॥

प्रकार जो व्यवहार का कार्य समाप्तकर निश्चय की ओर झुकनेवाले हैं और मोक्ष जाना चाहते हैं, उनका मार्ग भिन्न है। और जो व्यवहार मार्ग के अनुयायी है, और स्वर्ग जाना चाहते हैं, उनका मार्ग भिन्न है ।

४. ॐ ह्रीं स्वर्गमोक्षविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

सहजानन्दधामस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

भिन्न भिन्न नगरों को जाने वाले मार्ग सभी है भिन्न ।
उसीं भांति तात्त्विक ज्ञानी का मोक्ष मार्ग है सब से भिन्न॥
जो लौकिक प्राणी स्वर्गो के इच्छुक हैं उनको है भिन्न ।
जो प्राणी जिस पर चलता है वह पा लेता निज पथ भिन्न॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ ॥४॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(५)

चिंताक्लेशकषायशोकबहुले देहादिसाध्यात्परा–
धीने कर्मनिबंधनेऽतिविषमे मार्गे भयाशान्विते ।
व्यामोहे व्यवहारनामनि गतिं हित्वा व्रजात्मन् सदा–
शुद्धे निश्चयनामनीह सुखदेऽमुत्रापि दोषोज्झिते ॥५॥

अर्थ- हे आत्मन्! यह व्यवहार मार्ग चिंता क्लेश कषाय और शोक से जटिल है। देह आदि द्वारा साध्य होने से पराधीन है। कर्मो के लाने में कारण है। अत्यन्त विकटभय एवं आशा से व्याप्त है और व्यामोह कराने वाला है। परन्तु शद्धनिश्चयनय मार्ग में यह कोई विपत्ति नहीं है इसलिये तू व्यवहारनय का त्याग कर शुद्धनिश्चयनय रूप मार्ग का अवलंबन कर। क्योंकि यह इस लोक की क्या बात? परलोक में भी सुख का देने वाला है और समस्त दोषों से रहित निर्दोष है ।

५. ॐ ह्रीं चिन्ताक्लेशकषायशोकादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निष्कषायस्वरूपोऽहम् ।

ज्ञानमात्र में विचरण करने वाले द्रव्य दृष्टि होते ।
जो संशय का जल पीते वे ही पर्याय दृष्टि होते ॥

हे आत्मन् व्यवहार मार्ग चिन्ता कषाय क्लेश संयुक्त ।
तथा शोक से जटिल देह से साध्य पराधीनता युक्त ॥
कर्मो को लाने में कारण भय आशा से व्याप्त सदा ।
है व्यामोह कराने वाला सांसारिक आती विपदा ॥
पर निश्चय में किसी भांति की कोई कभीं विपत्ति नहीं ।
तज व्यवहार मार्ग इस क्षण ही निश्चय बिन संपत्ति नहीं॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ ॥५॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

न भक्तवृंदैर्न च शिष्यवर्गै र्न पुस्तकाद्यैर्न च देहमुख्यै- ।
नः कर्मणा कैन ममास्ति कार्य विशुद्धचित्यस्तु लयः सदैव ॥६॥

अर्थ- मेरा मन शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति के लिये उत्सुक है, इसलिये न तो संसार में मुझे भक्तों की आवश्यकता है। और न शिष्यवर्ग पुस्तक और देह आदि से ही कुछ प्रयोजन हैं। एवं न मुझे कोई काम करना ही अभीष्ट है। केवल मेरी यही क़ामना है कि मेरी परिणति सदा शुद्धचिद्रूप में ही लीन रहे । सिवाय शुद्धचिद्रूप के वाह्य किसी पदार्थ में जरा भी जाय ।

६. ॐ ह्रीं भक्तवृन्दशिष्यवर्गपुस्तकादिरहितशुद्धचिन्मयस्वरूपाय नमः ।

चितिशक्तिसंपन्नोऽहम् ।

ताटंक

मेरा मन चिद्रूप शुद्ध पाने को उत्सुक हैं स्वामी ।
मुझे न भक्तों की आवश्यकता अरु न प्रयोजन है स्वामी॥
पुस्तक देह आदि कुछ भी मुझको अभीष्ट है कभी नहीं।
मेरी परिणति रहे शुद्ध चिद्रूप भावना सदा यही ॥

अमृत प्रवाहित करने वाली स्यादवाद मय जिनवाणी ।
इसका ही अवलंबन लेकर हो जाऊंगा मैं ज्ञानी ॥

परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ ॥६॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

न चेतसा स्पर्शमहं करोमि सचेतनाचेतनवस्तुजाते ।
विमुच्य शुद्धं हि निजात्मतत्त्वं कचित्कदाचित्थमप्यवश्यम् ॥७॥

अर्थ- मेरी कामना है कि शुद्धचिद्रूप नामक पदार्थ को छोड़कर मैं किसी भी चेतन वा अचेतन पदार्थ का किसी देश और किसी काल में कभी अपने मन से स्पर्श न करूं।

७. ॐ ह्रीं सचेतनाचेतनवस्तुस्पर्शरहितास्पृष्टस्वरूपाय नमः ।

निजात्मतत्त्वस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

एक शुद्ध चिद्रूप नाम का जो पदार्थ है मेरे पास ।
उसे छोड़ कर कहीं न जाऊं उसका ही हो उर विश्वास॥
चेतन और अचेतन का स्पर्श नहीं मेरे द्वारा ।
किसी काल में किसी देश में करूं न कुछ कृत निज द्वारा॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ ॥७॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

व्यवहारं समालंब्य येऽक्षि कुर्वन्ति निश्चये ।
शुद्धचिद्रूपसंप्राप्तिस्तेषामेवेतरस्य न ॥८॥

अर्थ- व्यवहारनय का अवलंबनकर जो महानुभाव अपनी दृष्टि को शुद्ध निश्चनय की ओर लगाते हैं। उन्हें ही संसार में शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति होती है। अन्य मनुष्यों को शुद्ध चिद्रूप का लाभ कदापि नहीं हो सकता ।

शुद्ध निराकुल सदा अचल चिद्रूप शुद्ध का धारी हूँ ।
आत्म हितेच्छु भावना वाला मैं तो प्रभु अविकारी हूं॥

८. ॐ ह्रीं नयपक्षरहितचिद्रूपाय नमः ।.

स्वायत्तस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

जो व्यवहारालंबन लेकर निश्चय में मन लाते हैं ।
वे चिद्रूप शुद्ध पाते हैं भव दुख क्षय कर पाते हैं ॥
जो व्यवहार लीन ही रहते निश्चय को न कभी नहीं पाते।
उन्हें लाभ होता न कभी भी वे न शुद्ध होने पाते ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ ॥८॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

संपर्कात् कर्मणोऽशुद्धं मलस्य वसनं यथा ।
व्यवहारेण चिद्रूपं शुद्ध तन्निश्चयाश्रयात् ॥९॥

अर्थ- जिस प्रकार निर्मल भी वस्त्र मैल से मलिन अशुद्ध हो जाता है। उसी प्रकार व्यवहारनय से कर्म के संबंध से शुद्ध भी चिद्रूप अशुद्ध है। परन्तु शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि से वह शुद्ध ही है ।

९. ॐ ह्रीं अशुद्धकर्मसंपर्करहितचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानपंकजस्वरूपोऽहम् ।

जैसे निर्मल वस्त्र मैल से मलिन अशुद्ध हो जाता है ।
उस प्रकार व्यवहार आदि से यह अशुद्ध हो जाता है ॥
निश्चय नय से परम शुद्ध चिद्रूप शुद्ध दृष्टित होता ।
पर व्यवहारनयादिक से यह तो अशुद्ध दृष्टित होता ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ ॥९॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

निज स्वशक्ति का बार बार आस्वाद न मंगलकारी है ।
भौतिक वैभव की आशा बिन निजात्मा गुणधारी है ॥

(१०)

अशुद्धं कथ्यते स्वर्णमन्यद्रव्येण मिश्रितम् ।
व्यवहारं समाश्रित्य शुद्धं निश्चयतो यथा ॥१०॥

अर्थ- जिस प्रकार व्यवहारनय से शुद्ध भी सोना अन्य द्रव्य के मेल से अशुद्ध और निश्चयनय से शुद्ध कहा जाता है।

१०. ॐ ह्रीं शुद्धानन्दचामीकरचिद्रूपाय नमः ।

प्रभुस्वरूपोऽहम् ।

जैसे सोना शुद्ध संग पर से अशुद्ध हो जाता है ।
जब संयोग छोड़ देता तब यही शुद्ध कहलाता है ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ॥१०॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

युक्तं तथाऽन्यद्रव्येणाशुद्धं चिद्रूपमुच्यते ।
व्यवहारनयात् शुद्धं निश्चयात् पुनरेव तत् ॥११॥

अर्थ- उसी प्रकार शुद्ध भी चिद्रूप कर्म आदि निकृष्ट द्रव्यों के सम्बन्ध से व्यवहारनय की अपेक्षा अशुद्ध कहा जाता है। और वही शुद्ध निश्चय की अपेक्षा शुद्ध कहा जाता है ।

११. ॐ ह्रीं अन्यद्रव्यसम्पर्करहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

विभुस्वरूपोऽहम् ।

त्यों व्यवहाराधीन शुद्ध चिद्रूप अशुद्ध कहाता है ।
जब निश्चय स्वरूप होता है तब यह शुद्ध कहाता है ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ॥११॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

गुण अनंत समुदाय प्रगट कर वीतराग हो जाऊं मैं ।
सकल द्रव्य गुण पर्यायों को जान मुक्त हो जाऊं मैं ॥

(१२)

बाह्यातरन्यसंपर्को येनांशेन वियुज्यते ।
तेनांशेन विशुद्धिः स्यात् चिद्रूपस्य सवर्णवत् ॥१२॥

अर्थ- जिस प्रकार बाहर भीतर किसी भी सुवर्ण के जितने अंश का अन्य द्रव्य से संबंध छूट जाता है, तो वह उतने अंश में शुद्ध कहा जाता है। उसी प्रकार चिद्रूप के भी जितने अंश से कर्ममल का संबंध नष्ट हो जाता है। उतने अंश में वह शुद्ध कहा जाता है ।

१२. ॐ ह्रीं बाह्याभ्यन्तरान्यसंपर्करहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अबद्धस्वरूपोऽहम् ।

जैसे सोना बाहर भीतर पर संबंध छोड़ देता ।
जितने अंश छोड़ देता है उतने अंश शुद्ध होता ॥
उसीं भांति चिद्रूप कर्म मल का जितना तजता है अंश ।
उतने अंश शुद्ध होता है पूरा तजने पर सर्वांश ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ॥१२॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानपर्वतारोहणं सुधीः ।
कुर्वन् करोति सुदृष्टिर्व्यवहारावलंबनम् ॥१३॥

अर्थ- विद्वान मनुष्य जब तक शुद्धचिद्रूप के ध्यानरूपी विशाल पर्वत पर आरोहण करता है तब तक तो व्यवहानय का अवलंबन करता है।

१३. ॐ ह्रीं चैतन्यपर्वतस्वरूपाय नमः ।

ज्ञानमेरुस्वरूपोऽहम् ।

सुधी शुद्ध चिद्रूप ध्यान रूपी पर्वत पर जब चढ़ता ।
तब तक ही व्यवहार सुनय का ही अवलंबन यह करता॥

आत्म दीप्ति की अखंड धारा का समुद्र मेरे भीतर ।
राग आग को क्षय करने में प्रभु समर्थ हूं महा प्रखर ॥

परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ॥१३॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

आरुह्य शुद्धचिद्रूपध्यानपर्वतमुत्तमम् ।
तिष्ठेद् यावत्त्यजेत्तावद् व्यवहारावलम्बनम् ॥१४॥

अर्थ- परन्तु ज्यों ही शुद्धचिद्रूप के ध्यानरूपी विशाल पर्वत पर चढ़कर वह निश्चय रूप से विराजमान हो जाता है, उसी समय व्यवहारनय का सहारा सर्वथा छोड़ देता है ।

१४. ॐ ह्रीं बोधमन्दराचलस्वरूपाय नमः ।

ब्रह्मचंलस्वरूपोऽहम् ।

ज्यों ही यह व्यवहार सुनय पर्वत पर निज बल चढ़ जाता।
तब व्यवहारालंबन तज देता निश्चय में आ जाता ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ॥१४॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानपर्वतादवरोहणम् ।
यदान्यकृतये कुर्यात्तदा तस्यावलम्बनम् ॥१५॥

अर्थ- यदि कदाचित् किसी अन्य प्रयोजन के सिये शुद्धचिद्रूप के निश्चय ध्यानरूपी पर्वत से उतरना हो जाय, ध्यान करना छोड़ना पड़े तो उस समय भी व्यवहारनय का नियम से अवलम्बन रक्खे। उस समय यदि व्यवहारनय का अवलंबन न होगा तो भ्रष्टपना आ सकता है ।

१५. ॐ ह्रीं शुद्धचिद्रूपपर्वतस्वरूपाय नमः ।

सदानन्दस्वरूपोऽहम् ।

ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता विकल्प से रहित अभेद अखंड महान ।
निज अनर्घ्य पद महिमाशाली ही कहलाता है निर्वाण ॥

किसी प्रयोजन वश इस पर्वत से जब यह नीचे आए ।
तब फिर नय व्यवहार आश्रय ले निज साधन अपनाए ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ॥१५॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

याता यांति च यास्यंति ये भव्या मुक्ति संपदं ।
आलंव्य व्यवहारं ते पूर्व पश्चाच्च निश्चयम् ॥१६॥

अर्थ- जो महानुभाव मोक्षरूपी संपत्ति को प्राप्त हो गये, हो रहे हैं, और होयेंगे। उन सबने पहिले व्यवहारनय का अवलंबन किया है।

१६. ॐ ह्रीं स्वानन्दवैभवस्वरूपाय नमः ।

आत्मभूस्वरूपोऽहम् ।

जिनने पायी मुक्ति संपदा पाते हैं या पाएंगे ।
वे व्यवहारालंबन पहिले लेते हैं सुख पाएँगे ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ॥१६॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

कारणेन बिना कार्य न स्यात्तेन बिना नयं ।
व्यवहारं कदोत्पत्तिर्निश्चयस्य न जायते ॥१७॥

अर्थ- क्योंकि बिना कारण के कार्य कदापि नहीं हो सकता। व्यवहारनय कारण है और निश्चय नय कार्य है। इसलिये बिना व्यवहार के निश्चय भी कदापि नहीं हो सकता ।

१७. ॐ ह्रीं कारणकार्यविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अक्षयचित्स्वरूपोऽहम् ।

आत्म जागरण के अधिपति तो परम संयमी मुनि होते।
भवाताप हरते क्षण भर में त्रिलोकाग्र के पति होते ॥

बिन कारण के कार्य न होता नय व्यवहार कारण जानो।
निश्चय नय है कार्य इसे तुम भली भांति से पहचानो ॥
बिन व्यवहार नहीं है निश्चय निश्चय बिन व्यवहार नहीं।
अटल नियम यह आगम का है कारण कार्य सुमेल यही॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ॥१७॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

जिनागमे प्रतीतिः स्याज्जिनस्याचरणेऽपि च ।
निश्चयं व्यवहारं तन्नयं भज यथाविधि ॥१८॥

अर्थ- व्यवहार और निश्चय नय का जैसा स्वरूप बतलाया है। उसी प्रकार उसे जानकर, उनका इस रीति से अवलंब करना चाहिये। जिससे कि जैन शास्त्रों में विश्वास और भगवान जिनेन्द्र से उक्त चारित्र में भक्ति बनी रहे ।

१८. ॐ ह्रीं जिनागमप्रतीतिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चारित्रगुणसंपन्नोऽहम् ।

नय व्यवहार और निश्चय का जो स्वरूप बतलाया है ।
उसे जान अवलंबन द्वय का समय समय जतलाया है ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ॥१८॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

व्यवहारं बिना केचिन्नष्टाः केवलनिश्चयात् ।
निश्चयेन विना केचित्केवलव्यवहारतः ॥१९॥

अर्थ- अनेक मनुष्य तो संसार में व्यवहार का सर्वथा परित्याग कर केवल शुद्धनिश्चयनय के अवलंबन से नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। और बहुत से निश्चयनय को छोड़कर केवल

केवल संस्तुति श्री जिनवर की निश्चय से निज अनुभव कर।
याचक होकर भीख मांगने का धंदा तो अवबंद करो ॥

व्यवहार का ही अवलंबन कर नष्ट हो जाते हैं ।

१९. ॐ ह्रीं निश्चयव्यवहाराभासरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्भ्रान्तस्वरूपोऽहम् ।

जो व्यवहार छोड़ केवल निश्चय का लेते अवलंबन
वे हो जाते नष्ट भ्रष्ट अरु वे न जानते शास्त्र कथन ॥
जो निश्चय को छोड़ मात्र व्यवहार शरण ही लेते हैं ।
ये भी नष्ट भ्रष्ट हो जाते बिना मोल दुख लेते हैं ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ॥१९॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

द्वाभ्यां दृग्भ्यां न स्यात् सम्यग्द्रव्यावलोकनम् ।
यथा तथा नयभ्यां चेत्युक्तं स्याद्वादवादिभिः ॥२०॥

अर्थ- जिस प्रकार एक नेत्र से भले प्रकार पदार्थों का अवलोकन नहीं होता। दोनों ही नेत्रों से पदार्थ भले प्रकार दीख सकते हैं। उसी प्रकार एक नय से कभी कार्य नहीं चल सकता। व्यवहार और निश्चय दोनों नयों से ही निर्दोष रूप से कार्य हो सकता है, ऐसा स्याद्वादमत के धुंरधर विद्वानों का मत है ।

२०. ॐ ह्रीं सम्यक्द्रव्यावलोकनविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानप्रकाशस्वरूपोऽहम् ।

एकनेत्र से ज्यों पदार्थ भी भलीभांति दिखते न कभी ।
दोनों नेत्रों से पदार्थ भी भली भांति से दिखें सभी ॥
उसी प्रकार एक नय से तो कार्य सिद्धि होती न कभी ।
स्याद्वाद् का कथन यही है दोनो नय हों सिद्धि तभी ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ॥२०॥

निज आत्मा को छलने वाली आत्म वंचना क्षय कर ले।
माया कपट जालसारे ही ऋजता से तू जय कर ले ॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२१)

निश्चयं क्वचिदालम्ब्य व्यवहारं क्वचिन्नयम् ।
विधिना वर्तते प्राणी जिनवाणी विभूषितः ॥२१॥

अर्थ- जो जीव भगवान जिनेन्द्र की वाणी से पूजित है। उनके वचनों पर पूर्ण रूप से श्रद्धा रखने वाले हैं। वे कहीं व्यवहारनय से काम चलाते हैं। और कहीं निश्चयनय का सहारा लेते हैं। अर्थात् जहां जैसा अवसर देखते हैं वहां वैसा ही उसी नय का आश्रय कर कार्य करते हैं।

२१. ॐ ह्रीं जिनवाणीविभूषितजीवनविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानालंकारस्वरूपोऽहम् ।

जो जिनवचनों पर श्रद्धा रखते वे ही हरषाते हैं ।
दोनों नय का यथा योग्य अवलंबन ले सुख पाते है ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ॥२१॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२२)

व्यवहाराद्बहिः कार्ये कुर्याद्विधिनियोजितम् ।
निश्चयं चान्तरं धृत्वा तत्त्ववेदी सुनिश्चलम् ॥२२॥

अर्थ- जो महानुभाव तत्त्वज्ञानी है। भले प्रकार तत्त्वों के जानकार है। वे अतरंग में भले प्रकार निश्चय नय को धारण कर व्यवहारनय से अवसर देख कर वबह्य में कार्य का संपादन करते हैं। अर्थात् दोनों नयों को काम में लाते हैं। एक नय स कोई काम नहीं करते ।

२२. ॐ ह्रीं विधिनियोजितकार्यविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

सच्चित्स्वरूपोऽहम् ।

जो संसार दुखों से डरते वे ही शिव पथ पर आते ।
भव समुद्र को शीघ्र पार कर वे ही शिवपद को पाते ॥

जो तत्त्वों के जानकार हैं निश्चय कालें अवलंबन ।
अवसर आने पर व्यवहारनयादिक का लें अवलंवन ॥
बाह्य कार्य करना हो तो व्यवहार बड़ा उपयोगी है ।
अंतरंग का करना हो तो निश्चयनय उपयोगी है ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२३)

शुद्धचिद्रूपसंप्राप्तिर्नयाधीनेति पश्यताम् ।
नयादिरहित शुद्धचिद्रूपं तदनन्तरम् ॥२३॥

अर्थ- शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति नयों के आधीन है। पश्चात् शुद्धचिद्रूप के प्राप्त हुए बाद नयों के अवलंबन की कोई आवश्यकता नहीं ।

२३. ॐ ह्रीं नयाधीनतारहितचिद्रूपाय नमः ।

निजाधीनबोधस्वरूपोऽहम् ।

प्राप्ति शुद्ध चिद्रूप नयों के ही आधीन कही जाती ।
जब हो जाती प्राप्ति नयों की आवश्यकता ना रह पाती॥
नयातीत चिद्रूप शुद्ध है है पक्षातिक्रान्त निर्मल ।
सतत प्रकाशमान रहता है बिना अपेक्षा के उज्ज्वल ॥
परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति का मुझको अब विश्वास हुआ ।
परम ज्ञान का सुमुद्र पाया निज में आज निवास हुआ॥२३॥

ॐ ह्रं भट्टारकज्ञानभूषणविरचिततत्त्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपस्मरणाय नयावलम्बन प्रतिपादकसप्तमाध्याय् समतास्वरूपाये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अलख निरंजन के अनहद स्वर अगर न गूँजे अंतर में।
पंच परावर्त्तन का कोलाहल आता बाह्यान्तर में ॥

महाअर्घ्य

गीत

अपने को अपने से अपने में देख ।
अपने ही आप तू अपने को लेख ॥
अपना स्वभाव ही है सबसे श्रेष्ठ ।
अपने चैतन्य को अपने में पेख ॥
शुभ अशुभ आस्रव क्षीण कर दे तू ।
राग की न शेष रहे कोई भी रेख ॥
शुद्ध चिद्रूप का ध्यान लगा तू ।
फिर तू उखाड़ दे कर्मो की मेख ॥

दोहा

अमृत सिन्धु निज आत्मा एक शुद्ध चिद्रूप ।
महाअर्घ्य अर्पण करूं दर्शन ज्ञान स्वरूप ॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्य नि. ।

जयमाला

छंद मानव

अनवरत ध्यान रत रहकर उत्कर्ष करूं मैं अपना ।
जितने पर भाव पास हैं उनको अब कर दूं सपना ॥
हो महाक्षमा जीवन में ऋजुता शुचि हो नस नस में ।
विनयांजलि शीष झुकाए चारों कषाय हों वश में ॥
श्रामण्य शुद्ध युत संयम हो यथाख्यात भी सक्षम ।
परिपूर्ण अनंत चतुष्टय रूपी लक्ष्मी हो अनुपम ॥
सुस्थिति हो या दुस्थिति हो समभाव न जाने पाए ।
अनुभव रस की वर्षा ही निज रस प्रतिपल बरसाए ॥

अन्तः कोड़ा कोड़ी सागर कर्मो की स्थिति हो शेष ।
पुद्गल अर्ध परावर्त्तन से अधिक न भ्रमता जीव हमेशा॥

मैं नव्हन करूं पुलकित हो हर्षित आनंदित होकर ।
निर्दोष निराकुल होऊं वसुकर्मो की द्युति खोकर ॥
प्रतिक्रमण तथा प्रायश्चित करके मैं शुद्ध बनूंगा ।
आत्मालोचन करके मैं हे स्वामी बुद्ध बनूंगा ॥
निज अन्वेषण अनुशीलन प्रतिपल प्रतिक्षण हो स्वामी ।
निर्मल स्वरूप के बल से हो जाऊं अंतर्यामी ॥
सम्यक्त्व बिना सिद्धि की है प्राप्ति नितान्त असंभव ।
है मुख्य बंध का कारण मिथ्यात्व भाव ही भव भव ॥
दर्शन ज्ञानादि चेतना से त्रैकालिक अभिन्न है ।
चेतना कर्म फल वाली से पूरा सदा भिन्न है ॥
चिद्रूप शुद्ध का चिन्तन ही मुझको आज सुहाया ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा का प्रभु प्रवाह अब पाया ॥

ॐ ह्रीं सप्तम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

परम शुद्ध चिद्रूप का नित्य लगाओ ध्यान ।
इसकी पावन शक्ति से पाओगे निर्वाण ॥

इत्याशीर्वाद :

भजन

जब समकित है तो डरना क्यों । मिथ्यात्व भाव अब करना क्यों ॥
जब सम्यक् ज्ञान हुआ उर में । तो भव विभ्रम उर धरना क्यों ॥
अब सम्यक् चारित्र पाया है आनंद हृदय में आया है ।
निज बुद्धि अकर्त्ता जागी है तो राग का राग भगाया है ॥
अनुभव रस की धारा पायी ।
तो मोहादिक विष भरना क्यों ॥

इसके पहिले ही उपशम सम्यक् दर्शन पालेता है ।
उपशम सहजछूट जाता है अतः भ्रमण कर लेता है ॥

ॐ

पूजन क्रमांक ९

तत्त्वज्ञान तरंगिणी अष्टम अध्याय पूजन

स्थापना

गीतिका

तत्त्वज्ञान तरंगिणी अधिकार अष्टम शुद्ध है ।
भाव जो इसका समझ ले वही जीव प्रबुद्ध है ॥
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ।
भेदज्ञान महान का ही ज्ञान करना चाहिए ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

चौपाई

दशलक्षण स्व धर्म जल लाऊं। त्रिविध रोग की पीर मिटाऊं।
परम शुद्ध चिद्रूप निहारूं। ज्ञान भावना उर में धारूं ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

दशलक्षण स्वधर्म चंदन ला। भव ज्वर नाशूं शुद्ध भावं पा।
परम शुद्ध चिद्रूप निहारूं। ज्ञान भावना उर में धारूं ॥

फिर वेदक समकित पाता है फिर क्षायिक हो जाता है ।
क्रमक्रम से परिवर्त्तन अपने घटा घटा सुख पाता है ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसातरताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

दशलक्षण स्वधर्म अक्षत ले । अक्षय पद पाऊं निज बल ले ।
परम शुद्ध चिद्रूप निहारूं। ज्ञान भावना उर में धारूं ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

दशलक्षण स्वधर्म उर में धर। महाशील गुण पाऊं सत्वर।
परम शुद्ध चिद्रूप निहारूं। ज्ञान भावना उर में धारूं ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

दशलक्षण स्वधर्म अनुभव मय। क्षुधा व्याधि हर लेता दुखमय।
परम शुद्ध चिद्रूप निहारूं। ज्ञान भावना उर में धारूं ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

दशलक्षण स्वधर्म के दीपक। केवल ज्ञान स्वरूप प्रदीपक।
परम शुद्ध चिद्रूप निहारूं। ज्ञान भावना उर में धारूं ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

दशलक्षण की धर्म धूप हो। कर्मनाश का श्रम अनूप हो।
परम शुद्ध चिद्रूप निहारूं। ज्ञान भावना उर में धारूं ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

दशलक्षण का फल शिवमय है। महामोक्ष फल ज्योतिर्मय है ।
परम शुद्ध चिद्रूप निहारूं। ज्ञान भावना उर में धारूं ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

प्रथम बार जब समकित पाता मोक्ष स्वपद रक्षित होता।
कोई रोक नहीं पाता है सिद्ध स्वपद निश्चित होता ॥

दशलक्षण व्रत अर्घ्य बनाऊं। शाश्वत पद अनर्घ्य निज पाऊं।
परम शुद्ध चिद्रूप निहारूं। ज्ञान भावना उर में धारूं ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

अर्घ्यावलि

अष्टम अधिकार

शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति के लिए
भेद विज्ञान की आवश्यकता का वर्णन

(१)

छेत्रीसूचीक्रकचपवनैः सीसकाग्न्यूषयंत्रै-
स्तुल्या पाथःकतकफलवद्धंसपक्षिस्वभावा ।
शस्त्रीजायुस्वधितिसदृशा टंकवैशाखवद्वा
प्रज्ञा यस्योदद्भवति हि भिदे तस्य चिद्रूपलब्धिः ।१॥

अर्थ- जिस महानुभाव की बुद्धि छैनी सूई आरा पवन सीसा अग्नि ऊषयंत्र (कोलू) जल के लिए कतकफल (फिटकरी) हंसपक्षी तथा छुरी जायु दांता टांकी और वैशाख के समान जड़ और चेतन के भेद करने में समर्थ हो गई है। उसी महानुभाव को चिद्रूप की प्राप्ति होती है ।

१. ॐ ह्रीं टङ्कवैशाखादिसमप्रज्ञाविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अक्षयज्ञानवैभवस्वरूपोऽहम् ।

छंद विधाता

मनुज की बुद्धि छैनी सम सुई आरा पवन सम है ।
अग्नि कोल्हू कतकफल हंस टांकी क्रकच के सम है ॥
प्रथक करके मिलावट को शुद्धि को प्राप्त ज्यों करती ।
उसी विधि देह होती प्रथक आत्मा शुद्धता वरती ॥

भासित होते हैं अनुकूल कल्पना से जो भी अनुकूल ।
जो प्रतिकूल कल्पना से भासित हैं वे होते प्रतिकूल ॥

शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥१॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२)

स्वर्ण पाषाणसूताद्वसनमिव मलात्ताम्ररूप्यादि हेम्नो-
वा लोहाादग्निरिक्षो रस इह जलवत्कर्दमात्केकिपक्षात् ।
ताम्रं तैलं तिलादेः रजतमिव किलोपायतस्ताम्रमुख्यात्
दुग्धान्नीरं घृतं वा क्रियत इव पृथक् ज्ञानिनात्मा शरीरात् ॥२॥

अर्थ- जिस प्रकार स्वर्ण पाषाण से सोना भिन्न किया जाता है। मैल से वस्त्र सोने से तांबा चांदी आदि पदार्थ लोह से अग्नि, ईख से रस कीचड़ से जल केकी (मयूर) के पंख से तांबा तिल आदि से तैल तांबा आदि धातुओं के चांदी और दूध से जल एंव घी जुदा कर लिया जाता है। उसी प्रकार जो मनुष्य ज्ञानी है। जड़ चेतन का वास्तविक ज्ञान रखता ह। वह शरीर से आत्मा को जुदा कर पहचानता है ।

२. ॐ ह्रीं शरीरादिपृथकात्मज्ञानविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

नित्यशुद्धस्वरूपोऽहम् ।

स्वर्ण पाषाण से सोना अलग जैसे किया जाता ।
स्वर्ण को ताम्र आदिक से प्रथक विधि से लिया जाता ॥
मैल से वस्त्र को अरु ईख से रस को प्रथक करते ।
कीच से नीर तिल से तेल पथ से जल प्रथक करते ॥
इसी विधि जो मनुज ज्ञानी वास्तविक ज्ञान रखता है ।
देह से भिन्न आत्मा को जान बहुमान करता है ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥२॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

दोनों ही कल्पना गर्त्त हैं है निषेध करने के योग्य ।
अतः विचार वान प्राणी कार्ह, शोक है पूर्ण अयोग्य ॥

(३)

देशं राष्ट्रं पुराद्यं यवनजनकुलं वर्णपक्षं स्वकीय-
ज्ञातिं संबंधिवर्ग कुलपतिजनकं सोदरं पुत्रजाये ।
देहं हृद्वाग्विभावान् विकृतिगुणविधीन् कारकादीनि भित्वा
शुद्धं चिदरूपमेकं सहजगुणनिधं निर्विभागं स्मरामि ॥३॥

अर्थ- देश राष्ट्र पुर गावं धन वन जनसमुदाय ब्राह्मण आदि वर्णो का पक्षपात जाति संबंधी कुल परिवार माता पिता भाई पुत्र स्त्री शरीर हदय और वाणी ये सब पदार्थ विकार के करने वाले हैं। इनको अपना मान कर स्मरण करने से ही चित्त शुद्धचिद्रूप की ओर से हट जाता है। चंचल हो उठता है। तथा मैं कर्त्ता और करण आदि हूं इत्यादि कारकों के स्वीकार करने से भी चित्त में चल विचलता उत्पन्न हो जाती है। इसलिये स्वभाविक गुणों के भंडार शुद्धचिद्रूप को ही मैं निर्विभाग रूप से कर्त्ता करण का कुछ भी भेद न कर स्मरण मनन ध्यान करता हूं ।

३. ॐ ह्रीं देशराष्ट्रादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानसाम्राज्यस्वरूपोऽहम् ।

देह पुर ग्राम धन परिवार का जो पक्ष है भीतर ।
देह वाणी हृदय आदिक विकारी भाव है दुखकर ॥
इन्हें जब मानता अपना तभी बहु दुख उठाता है ।
ध्यान चिद्रूप का करता तभी यह सुख उठाता है ॥
पराये द्रव्य को अपना समझ जो चल विचल होता ।
गुणों का सिन्धु निज चिद्रूप पाकर वह सुखी होता ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥३॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

स्वात्मध्यानामृतं स्वच्छं विकल्पानपसार्यसत् ।
विपति क्लेशनाशाय जलं शैवालवत्सुधीः ॥४॥

चित्र विचित्र नित्य व्यवहारिक सभी प्रसंग महादुखरूप ।
केवल निश्चय शुद्ध आत्मा ध्यान योग्य है शिव सुखरूप॥

अर्थ- जिस प्रकार क्शेश पिपासा की शांति के लिये जल के ऊपरी पुरी हुई काई को अलग कर शीतल सुरस निर्मल जल पिया जाता है। उसी प्रकार जो मनुन्य बुद्धिमान है। दुःखों से दूर करना चाहते है। वे समस्त संसार के विकल्प जालों को छोड़कर आत्म ध्यान रूपी अनुपम स्वच्छ अमृत का पान करते हैं। अपने चित्त को द्रव्य आदि की चिन्ता की ओर नहीं झुकने देते।

४. ॐ ह्रीं ब्रह्मामृतस्वरूपाय नमः ।

शिवसुधास्वरूपोऽहम् ।

पूर्ण संतृप्ति हित ज्यों नीर काई प्रथक कर पीते ।
उसी विधि द्रव्यपर को तज सुधी जन आत्म रस पीते ॥
सर्व संसार की चिन्ता विकल्पादिक जो तज देते ।
न पर की ओर पल भर को झुका करते वे दृढ़ रहते ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥४॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(५)

नात्मध्यानात्परं सौख्यं नात्मध्यानात् परं तपः ।
नात्मध्यानात्परो मोक्षपथः क्वापि कदाचन ॥५॥

अर्थ- इस आत्म ध्यान से बढ़कर न तो कहीं किसी काल में कोई सुख है। न तप हैं। और न मोक्ष ही है। अर्थात् जो कुछ है सो यह आत्मध्यान ही है। इसलिये उसी को परम कल्याण का कर्ता समझना चाहिये ।

५. ॐ ह्रीं आत्मसौख्यस्वरूपाय नमः ।

आत्मानन्दस्वरूपोऽहम् ।

नहीं निज ध्यान से बढ़कर किसी भी काल में सुख है ।
न तप उत्तम न मोक्ष उत्तम ध्यान ही श्रेष्ठ शिवसुखहै ॥

यदि प्रतिकूल दशा मुझको होती है तो अति उत्तम है ।
वह संसार समुद्र पार करने का कारण सक्षम है ॥

परम कल्याण करता है परम सुख का प्रदाता है ।
सतत निज आत्मा का ध्यान उत्तम शान्ति दाता है ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥५॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

केचित्प्राप्य यशः सुखं वरवधूं रायं सुतं सेवकं-
स्वामित्वं वरवाहनं बलसुहृत्पांडित्यरूपादिकम् ।
मन्यन्ते सफलं स्वजन्म मुदिता मोहाभिभूता नरा-
मन्येऽहं च दुरापयात्मवपुषो र्ज्ञप्त्या भिदः केवलम् ॥६॥

अर्थ- मोह के मद में मत्त बहुत से मनुष्य कीर्ति प्राप्त होने से ही अपना जन्म धन्य समझते है। अनेक इंद्रिय जन्य सुख सुन्दर स्त्री धन पुत्र उत्तम सेवक स्वामीपना, और उत्तम वाहनों की प्राप्ति से अपना जन्म सफल मानते हैं। और बहुतों को बल उत्तम मित्र विद्वत्ता और मनोहर रूप आदि की प्राप्ति से संतोष हो जाता है। परन्तु मैं बड़ी कठिनाई से प्राप्त होने वाले आत्मा और शरीर के भेद विज्ञान से अपना जन्म सफल मानता हूं ।

६. ॐ ह्रीं यशसुखवरवधूरायसुतसेवकादिमोहरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानयशस्वरूपोऽहम् ।

मोह पद मत्त नर लघु कीर्ति पाकर धन्य हो जावे ।
इन्द्रियाधीन सुख स्त्री धनादिक पुत्र जब पाते ॥
भवन स्वामी बहुत सेवक सवारी आदि पाते हैं ।
जन्म अपना सफल कर धन्य सुख संतोष पाते हैं ॥
किन्तु अब आत्मा अरु देह को अति भिन्न जाना है ।
भेद विज्ञान भूषित हो सफल यह जन्म माना है ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥६॥

आत्म वार्त्ता जहाँ न होती हो वह ग्राम छोड़ने योग्य ।
आत्म वार्त्ता जहाँ सदा होती हो वह है रहने योग्य ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

तावत्तिष्ठंति चिद्भूमौ दुर्भेद्याः कर्मपर्वताः ।
भेदविज्ञानवज्रं न यावत्पतति मूर्द्धनि ॥७॥

अर्थ- आत्मा रूपी भूमि में कर्म रूपी अभेद्य पर्वत तभी तक निश्चल रूप से स्थिर रह सकते हैं। जब तक भेद विज्ञान रूपी वज्र इनके मस्तक पर पड़ कर इन्हें चूर्ण नहीं कर डालता ।

७. ॐ ह्रीं दुर्भेद्यकर्मपर्वतरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

विज्ञानाचलोऽहम् ।

छंद विधाता

आत्मारूप धरती पा कर्म रूपी अभेद पर्वत ।
तभी तक सुदृढ़ निश्चल है तभी तक सर्व विधि रक्षित॥
किन्तु जब भेद ज्ञानी वज्र इसके शिखर पर गिरता ।
उसी क्षण चूर्ण हो जाता कर्म पर्वत नहीं रहता ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥७॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

दुर्लभोऽत्र जगन्मध्ये चिद्रूपरुचिकारकः ।
ततोऽपि दुर्लभं शास्त्रं चिद्रूपप्रतिपादकम् ॥८॥

अर्थ- जो पदार्थ चिद्रूप में प्रेम कराने वाला है, वह संसार में दुर्लभ है। उससे भी दुर्लभ चिद्रूप के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाला शास्त्र है।

८. ॐ ह्रीं चिद्रूपरुचिकारकवस्तुदुर्लभत्वविकल्परहितसमलस्वरूपशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अद्वैतस्वरूपोऽहम् ।

वस्त्र खून से रंगा हुआ तो नहीं खून से धुल सकता ।
मोक्ष द्वार भी मोक्ष मोक्ष कहने से कभी न खुल सकता॥

कराए प्रेम निज चिद्रूप से वह वस्तु जग दुर्लभ ।
शुद्ध चिद्रूप दरशाए शास्त्र वह है अधिक दुर्लभ ॥
शास्त्र भी हो प्रकट लेकिन प्राप्ति गुरु की महा दुर्लभ।
उत्तरोत्तर सर्व दुर्लभ है ज्ञान निज का परम दुर्लभ ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥८॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

ततोऽपि दुर्लभो लोके गुरुस्तदुपदेशकः ।
ततोऽपि दुर्लभं भेदज्ञानं चिंतामणिर्यथा ॥९॥

अर्थ- यदि शास्त्र भी प्राप्त हो जाय, तो चिद्रूप के स्वरूप का उपदेशक गुरु नहीं मिलता इसलिये उससे गुरु की प्राप्ति दुर्लभ हैं, गुरु भी प्राप्त हो जाय तो जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति दुर्लभ है उसी प्रकार भेद विज्ञान की प्राप्ति दुष्प्राप्य है ।

९. ॐ ह्रीं दुर्लभभेदज्ञानत्वविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानचिन्तामणिस्वरूपोऽहम् ।

सुगुरु भी प्राप्त हो जाए भेद विज्ञान है दुर्लभ ।
कि जैसे रत्न चिन्तामणि उसी विधि भान निज दुर्लभ ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥९॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

भेदो विधीयते येन चेतनादेहकर्मणोः ।
तज्जातविक्रियादीनां भेदज्ञानं तदुच्यते ॥१०॥

अर्थ- जिसके द्वारा आत्मा से देह और कर्म का तथा देह एवं कर्म से उत्पन्न हुई विक्रियाओं का भेद जाना जाय, उसे भेद विज्ञान करते हैं ।

मोक्ष द्वार यदि तुम्हें खोलने का विचार कुछ आया है ।
तो फिर उसे खोलने का तुमको उपाय बतलाया है ॥

१०. ॐ ह्रीं देहकर्मजनितविक्रियारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शुचिबोधस्वरूपोऽहम् ।

आत्मा देह में जो भेद हैं वह भेद बतलाए ।
देह जड़ कर्म आदिक की विक्रिया सर्व समझाए ॥
उसे ही तो श्री जिनवर भेद विज्ञान कहते हैं ।
भेद विज्ञान जो करते जगत दुख वे न सहते है ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥१०॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

स्वकीयं शुद्धचिद्रूप भेदज्ञान विना कदा ।
तपाश्रुतवतां मध्ये न प्राप्तं केनचित् क्वचित् ॥११॥

अर्थ शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति बिना भेद विज्ञान् के कदापि नहीं हो सकती। इसलिए तपस्वी वा श्रुत ज्ञानी किसी महानुभाव ने बिना विज्ञान के आज तक कहीं भी शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति न कर पाई, न कर ही सकता है। जिसने शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति की है उसने भेद विज्ञान से ही की हे ।

११. ॐ ह्रीं श्रुतवानादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ब्रह्मतेजस्वरूपोऽहम् ।

भेद विज्ञान बिन चिद्रूप का मिलना असंभव है ।
भेद विज्ञान होते ही प्राप्ति निश्चित ही संभव है ॥
आज तक जो हुए हैं शिव भेद विज्ञान द्वारा ही ।
बिना इसके मूढ़ प्राणी न तजते देहकारा ही ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥११॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

तत्त्वज्ञान का साबुन लाओ लो वैराग्य भाव का जल ।
भव भावों की सकल कलुषता धोकर अब हो लो निर्मल॥

(१२)

क्षयं नयति भेदज्ञश्चिद्रूपप्रतिघातकम् ।
क्षणेन कर्मणां राशिं तृणानां पावको यथा ॥१२॥

अर्थ- जिस प्रकार अग्नि देखते देखते तृणों के समूह को जलाकर खाक कर देती है। उसी प्रकार जो भेद विज्ञानी है, वह शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति के नाश करने वाले कर्म समूह को क्षण भर में समूल नष्ट कर देता है। भेद विज्ञानी की आत्मा के साथ किसी प्रकार के कर्म का सम्बन्ध नहीं रहता ।

१२. ॐ ह्रीं चिद्रूपप्रतिघातककर्मराशिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

बोधप्रकाशस्वरूपोऽहम् ।

छंद विधाता

अग्नि का एक कण भी तृण समूहों को जलाता ज्यों ।
कर्म के पुन्ज क्षण भर में भेदज्ञानी जलाता त्यों ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥१२॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

अविछन्नधारयाभेदबोधनं भावयेत् सुधीः ।
शुद्धचिद्रूपसंप्राप्त्यैसर्वशास्त्रविशारदः ॥१३॥

अर्थ- जो महानुभव समस्त शास्त्रों में विशारद है। और शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति अभिलाषी है। उसे चाहिये कि वह एकाग्र हो भेद विज्ञान की ही भावना करे। भेद विज्ञान के अतिरिक्त किसी पदार्थ में ध्यान न लगावे ।

१३. ॐ ह्रीं सर्वशास्त्रविशारदविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अनन्तज्ञानस्वरूपोऽहम् ।

शास्त्र का ज्ञान है जिनको जिन्हें चिद्रूप अभिलाषा ।
करें एकाग्र होकर ज्ञान यह पूरी करें आशा ॥

जो वैराग्य बोध देता हो वही धर्म अर्हंत प्रणीत ।
वही मोक्ष में ले जाएगा होगा तू संसारातीत ॥

भेद विज्ञान के अतिरिक्त भावना अन्य मत भाना ।
किन्हीं भी पर पदार्थो में न अपना ध्यान ले जाना ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥१३॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

संवरो निर्जरा साक्षात् जायते स्वात्मबोधनात् ।
तद्भेदज्ञानतस्तस्मात्तच्च भाव्यं मुमुक्षुणा ॥१४॥

अर्थ- अपने आत्मा के ज्ञान से संवर और निर्जरा की प्राप्ति होती है । आत्मा का ज्ञान भेद विज्ञान से होता है। इसलिये मोक्षाभिलाषी को चाहिये कि वह भेद ज्ञान की ही भावना करें ।

१४. ॐ ह्रीं संवरनिर्जराविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

स्वात्मबोधस्वरूपोऽहम् ।

छंद विधाता

निजातम ज्ञान से संवर इसी से निर्जरा होती ।
निजातम ज्ञान की प्राप्ति भेद विज्ञान से होती ॥
मोक्ष जाने की अभिलाषा जिन्हें हैं वे इसे पाएं ।
भावना रात दिन करके भेद विज्ञान उर लाएं ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥१४॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

लब्धा वस्तुपरीक्षा च शिल्पादिसकला कला ।
वह्नी शक्तिर्विभूतिश्च भेदज्ञप्ति न केवला ॥१५॥

अर्थ- इस संसार के अन्दर अनेक पदार्थो की परीक्षा करना भी सीखा। शिल्प आदि

अनुभव स्वभावित भावना भा विभावी सब भाव तज ।
पुद्गलादिक से ममत्व निवार नित्य स्वभाव भज ॥

अनेक प्रकार की कलाएं भी हासिल कीं। बहुत सी शक्तियां और विभूतियां भी प्राप्त कीं। परन्तु भेद विज्ञान का लाभ आज तक न हुआ ।

१५. ॐ ह्रीं शिल्पादिकलारहितचिद्रूपाय नमः ।

चित्कलास्वरूपोऽहम् ।

जगत में रह पदार्थो की परीक्षा करना भी सीखो ।
शिल्प आदिक कला कौशल बड़ी ही सुरुचि से सीखो ॥
बहुत सी शक्तियां पायीं लाभ कुछ भी नहीं पाया ।
बहुत सी विभूतियां पायीं भेद विज्ञान ना पाया ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥१५॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

चिद्रूपच्छादको मोहरेणुराशि र्न बुध्यते ।
क्व यातीति शरीरात्मभेदज्ञानप्रभंजनात् ॥१६॥

अर्थ- शरीर और आत्मा के भेद विज्ञान रूपी महा पवन के सामने चिद्रूप के स्वरूप को ढकने वाली मोह की रेणुएं न मालूम कहां किनारा कर जाती है ?

१६. ॐ ह्रीं चिद्रूपच्छादकमोहरेणुराशिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानराशिस्वरूपोऽहम् ।

देह अरु आत्मा का भेद जब उर में प्रगट होता ।
भेद विज्ञान की पावन पवन से मोह क्षय होता ॥
शुद्ध चिद्रप पाने में जो बाधा हेतु हैं सारे ।
मोह रज रेणु को लेकर कहीं उड़ जाते बेचारे ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥१६॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

धर्म अनुकंपामयी है न मोही को पता ।
गगन वत निर्मल अतुल बन विमल निज परिचय जता॥

(१७)

भेदज्ञानं प्रदीपोऽस्ति शुद्धचिद्रूपदर्शने ।
अनादिजमहामोहतामसच्छेदनेऽपि च ॥१७॥

अर्थ- यह भेद विज्ञान शुद्धचिद्रूप के दिखाने में जाज्वल्यमान दीपक है। और अनादिकाल से विद्यमान मोहरूपी प्रबल अंधकार का नाश करने वाला है ।

१७. ॐ ह्रीं अनादिजमहामोहनमरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानोद्योतस्वरूपोऽहम् ।

शुद्ध चिद्रूप दर्शन में भेद विज्ञान ही दीपक ।
अनादि मोहरूपी तम विलय में सबल ये दीपक ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥१७॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

भेदविज्ञाननेत्रेण योगी सात्रादवेक्षते ।
सिद्धस्थाने शरीरे वा चिद्रूपं कर्मणेज्झितम् ॥१८॥

अर्थ- योगिग भेद विज्ञान रूपी नेत्र की सहायता से सिद्ध स्थान वा शरीर में विद्यमान समस्त कर्मो से रहित शुद्धचिद्रूप को स्पष्ट रूप से देख लेते हैं ।

१८. ॐ ह्रीं भेदविज्ञाननेत्रविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शाश्वतज्ञाननेत्रस्वरूपोऽहम् ।

भेद विज्ञानरूपी नेत्र से मुनि देख लेते हैं ।
कर्म से रहित आत्मा जान सिद्ध पद लेख लेते हैं ॥
भेद विज्ञान ही चिद्रूप के दर्शन कराता है ।
भेद विज्ञान ही तत्क्षण सिद्ध पद पास लाता है ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥१८॥

सप्त तत्त्व परीक्षा करके सदैव विचार करना ।
आत्म ब्रह्म महान में रहना उसे ही हृदय धरना ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

मिलितानेकवस्तूनां स्वरूपं हि पृथक् पृथक् ।
स्पर्शादिभिर्विदग्धेन निःशकं ज्ञायते यथा ॥१९॥

अर्थ- जिस प्रकार विद्वान मनुष्य आपस में मिले हुए भी अनेक पदार्थो का स्वरूप स्पर्श आदि के द्वारा स्पष्ट रूप से। जुदा पहचान लेते हैं।

१९. ॐ ह्रीं स्पर्शादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजैकचित्स्वरूपोऽहम् ।

मनुज विद्वान छूते ही मिलावट जान लेते ज्यों ।
उसी विधि देह चेतन को नहीं हम जानते हैं क्यों ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥१९॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

तथैव मिलितानां हि शुद्धचिद्देहकर्मणाम् ।
अनुभूत्या कथं सिद्धिः स्वरूपं न पृथक् पृथक् ॥२०॥

अर्थ- उसी प्रकार आपस में अनादिकाल से मिले हुए शुद्धचिद्रूप शरीर और कर्मो को भी अनुभव ज्ञान के बल से वे बिना कसी रोक टोक के स्पष्ट रूप से जुदा जुदा जान लेते हैं ।

२०. ॐ ह्रीं देहकर्मादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शंकरोऽहम् ।

बनें हम भेद विज्ञानी स्वानुभव शक्ति प्रगटाएं ।
शुद्ध चिद्रूप को पाएं शेष जड़ सर्व विघटाएं ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥२०॥

भेदज्ञान महान से ही दृष्टि सबकी सुलटती ।
भेदज्ञान अभाव में तो दृष्टि सबकी उलटती ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२१)

आत्मानं देहकर्माणि भेदज्ञाने समागते ।
मुक्त्वा यान्ति यथा सर्पा गरुडे चंदनद्रुमम् ॥२१॥

अर्थ- जिस चंदन वृक्ष पर लिपटे हुए सर्प अपने बैरी गरुड़ पक्षी के देखते ही तत्काल आंखों के ओझल हो जाते है। पता लगाने पर भी उनका पता नहीं लगता। उसी प्रकार भेद विज्ञान के उत्पन्न होते ही समस्त कर्म आत्मा को छोड़ कर न मालूम कैहां लापता हो जाते हैं। विरोधी भेद विज्ञान के उत्पन्न होते ही कर्मो की सूरत भी नहीं दीख पड़ती।

२१. ॐ ह्रीं मिथ्यात्वरूपसर्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानचंदनद्रुमोऽहम् ।

मलय चंदन सुतरु लिपटे भुजंगों में भयानक बल ।
गरुण को देखते ही वृक्ष तज हो जाते हैं ओझल ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥२१॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२२)

भेदज्ञानबलात् शुद्धचिद्रूपं प्राप्य केवली ।
भवद्देवाधिदेवोपितीर्थकर्त्ता जिनेश्वरः ॥२२॥

अर्थ- इसी भेद विज्ञान के बल से यह आत्मा शुद्धचिद्रूप को प्राप्त कर केवल ज्ञानी तीर्थकर और जिनेश्वर कहलाने लगता है ।

२२. ॐ ह्रीं तीर्थकरादिपदरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजशाश्वतपदस्वरूपोऽहम् ।

भेद विज्ञान के बल से आत्म ज्ञानी सभी होते ।
इसी के बल से तीर्थंकर जिनेश्वर सिद्धवर होते ॥

तत्त्व दृष्टि न हो सकी तो आत्म उन्नति असंभव ।
रोग भव का भयंकर है पुनः होता पुनर्भव ॥

रत्न अनुपम यह चिन्तामणि कामना पूर्ण सब करता ।
बनाता सबको त्रिभुवन पति यही वसु कर्म सब हरता ॥
परम पद प्राप्त हो तो फिर भेद विज्ञान का क्या काम ।
दशा अविकल्प होती है तभी मिलता है निज ध्रुवधाम ॥
तुम्हें शिव सौख्य पाना है बनो तुम भेद विज्ञानी ।
मात्र अन्तर्मुहूरत में बनो कैवल्य पति ज्ञानी ॥
शुद्ध चिद्रूप का विज्ञान अद्भुत अरु अलौकिक है ।
शुद्ध चिद्रूप के अतिरिक्त जग में सर्व लौकिक है ॥२२॥

ॐ ह्रीं भट्टारक ज्ञानभूषण विरचित तत्त्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपप्राप्ए भेदविज्ञान प्राप्तिपादकाष्टमाध्याये ज्ञाननयनस्वरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्य

छंद सरसी

जिसको पुण्यों की रुचि है उसको जड़ की रुचि है ।
अन्तर्मन में भरी वासना रंच नहीं शुचि है ॥
मात्र राग के कारण ही वह भव दुख पाता है ।
शुद्ध भावना बिना न कोई शिव सुख पाता है ॥
आत्म धर्म से विरहित भव की ही तो अभिरुचि है ।
जिसको पुण्यों की रुचि है उसको जड़ की रुचि है ॥
संयम की मर्यादा में आने से डरता है ।
पुण्य लोभ के चक्कर में आ राग न हरता है ॥
पुण्य पाप से रहित दशा है उत्तम अब शुचि है
जिसको पुण्यों की रुचि है उसको जड़ की रुचि है ॥
श्री जिनधर्म शरण पायी है अब निर्मल हो लो ।
रागादिक सारे विभाव हर तुम उज्ज्वल हो लो ॥
वह ही भव से पार उतरता जिसको ध्रुव रुचि है ।
जिसको पुण्यों की रुचि है उसको जड़ की रुचि है ॥

तन रूपी घर बंदी गृह सम रचता बैरी कर्म अधीर ।
आयु कर्म बेड़ी से बंधित है निजात्मा तो अशरीर ॥

दोहा

गुण ग्राहकता श्रेष्ठ है नेष्ठ ग्रहण विद्रूप ।
महाअर्घ्य अर्पित करूं निरख निरख चिद्रूप ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्य नि. ।

जयमाला

वीरछंद

स्वतः सिद्ध परिणामी गुण है व्यय उत्पाद ध्रौव्य संयुक्त।
साधारण असाधारण गुण समान विशेष सुगुण से युक्त ॥
द्रव्यों में नूतन पर्यायों की उत्पत्ति यही उत्पाद ।
तथा पूर्व पर्याय नाश को व्यय कहते हैं सब अविवाद ॥
द्रव्य सदृशतारूप स्थायी रहता वही ध्रौव्य होता ।
ज्यों पर्याय देव नर पशु में जीव जुस्थायी रहता ॥
एक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है वही शुद्ध निश्चयनय है ।
इक अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय है वह अशुद्ध निश्चयनय है ॥
जो अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है वह पर्यायार्थिक नय है ।
नय व्यवहार यही बतलाता यह न कभी निश्चयनय है ॥
पहिले शुद्ध विवेचन कर ले वस्तु तत्त्व का निर्णय कर।
फिर निःशंकित होकर चेतन निज स्वरूप का निश्चय कर ॥

ॐ ह्रीं अष्टम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्य नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

परम शुद्ध चिद्रूप ही मुक्ति भवन का द्वार ।
मोक्ष स्वरूपी है यही देता सौख्य अपार ॥

इत्याशीर्वाद :

खाज रोग से पीड़ित मानव उसे खुजाया करता है ।
इन्द्रिय रोगों से पीड़ित विषयादिक सेवन करता है ॥

ॐ

पजन क्रमांक १०

तत्त्वज्ञान तरंगिणी नवम अध्याय पूजन

स्थापना

गीतिका

तत्त्वज्ञान तरंगिणी का यह नवम अधिकार है ।
शुद्ध निज चिद्रूप मंगलमयी शिव सुखकार है ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का ही ध्यान करने के लिए ।
मोह तजना चाहिए निज ज्ञान करने के लिए ॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्तपानं ।

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद मानव

निश्चय चरुणानुयोग का मुझकोआचरण सुहाया ।
जन्मादि रोत्र त्रय नाशक अवसर न कभी भी पाया ॥
चिद्रूप शुद्ध की कथनी ऊपर ही ऊपर जानी ।
अंतर में नहीं उतारी ऐसा हूँ मैं अज्ञानी ॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

यदि पीड़ा उत्पन्न न हो तो क्योंकर करे विषय सेवन ।
पंचेन्द्रिय के विषय जीतने वाला ही है धन धन धन ॥

निश्चय चरणानुयोग का चंदन मुझको प्रभु भाया ।
भव ज्वर कैसे क्षय होता जब भाया मुझे पराया ॥
चिद्रूप शुद्ध की कथनी ऊपर ही ऊपर जानी ।
अंतर में नहीं उतारी ऐसा हूँ मैं अज्ञानी ॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

निश्चय चरणानुयोग के तंदुल न मुझे प्रभु भाए ।
अक्षय पद को पाने के श्रम कभी न मुझे सुहाए ॥
चिद्रूप शुद्ध की कथनी ऊपर ही ऊपर जानी ।
अंतर में नहीं उतारी ऐसा हूँ मैं अज्ञानी ॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

निश्चय चरणानुयोग के पुष्पों की माला छोड़ी ।
पर परिणति दुखदायी से हे नाथ आत्मा जोड़ी ॥
चिद्रूप शुद्ध की कथनी ऊपर ही ऊपर जानी ।
अंतर में नहीं उतारी ऐसा हूँ मैं अज्ञानी ॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

निश्चय चरुणानुयोग के नैवेद्य न मैंने पाए ।
औदयिक भाव के कारण ना क्षुधारोग विनशाए ॥
चिद्रूप शुद्ध की कथनी ऊपर ही ऊपर जानी ।
अंतर में नहीं उतारी ऐसा हूँ मैं अज्ञानी ॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

इन्द्रिय विषयों को जीते बिन ज्ञान बिना जो करता ध्यान।
यह भव पर भव दोनों को ही बिगाड़ता है मूढ़ अजान ॥

निश्चय चरणानुयोग के दीपक ना कभी जलाए ।
मिथ्यात्व मोह के तम ही भव वर्धक सदा सुहाए ॥
चिद्रूप शुद्ध की कथनी ऊपर ही ऊपर जानी ।
अंतर में नहीं उतारी ऐसा हूँ मैं अज्ञानी ॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

निश्चय चरणानुयोग की ध्रुव धर्म धूप ना भायी ।
आठों कर्मो के क्षय की निज बुद्धि सकल बिसरायी ॥
चिद्रूप शुद्ध की कथनी ऊपर ही ऊपर जानी ।
अंतर में नहीं उतारी ऐसा हूँ मैं अज्ञानी ॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

निश्चय चरणानुयोग के आचरण बिना सुख कैसा ।
शिवफल बिन रहा मूढ़ मैं भव फल वाले तरु जैसा ॥
चिद्रूप शुद्ध की कथनी ऊपर ही ऊपर जानी ।
अंतर में नहीं उतारी ऐसा हूँ मैं अज्ञानी ॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

निश्चय चरणानुयोग का भी अर्घ्य न कभी बनाया ।
पदवी अनर्घ्य पाने का अवसर भी सदा गंवाया ॥
चिद्रूप शुद्ध की कथनी ऊपर ही ऊपर जानी ।
अंतर में नहीं उतारी ऐसा हूँ मैं अज्ञानी ॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

पाप कर्म करने वाला तो जीवित ही है मरा हुआ ।
जो स्वधर्म का सेवन करता जीवित है वह महा हुआ ॥

अर्घ्यावलि

नवम अध्याय

शुद्ध चिद्रूप के घ्यान के लिए मोह त्याग की उपयोगिता

(१)

अन्यदीया मदीयाश्च पदार्थाश्चेतनेरताः ।
एतेऽदश्चितनं मोहो यत- किंचिन्न कस्यचित् ॥१॥

अर्थ- ये चेतन और जड़ पदार्थ पराये व अपने हैं, इस प्रकार का मन में चिंतवन करना ही मोह है। क्योंकि वास्तव में देखा जाय तो कोई पदार्थ किसी का नहीं है ।

१. ॐ ह्रीं अन्यदीयमदीयपदार्थविषयकविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्ममबोधस्वरूपोऽहम् ।

छंद राधिका

चिद्रूप शुद्ध अतिरिक्त न कोई अपना ।
स्त्री पुत्रादिक वैभव धन सब सपना ॥
इनमें अपने पन और पराये पन का ।
चिन्तवन सदा है मोह सर्व जन जन का ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥१॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(२)

दत्तो मानोऽपमानो मे जल्पिता कीर्तिरुज्ज्वला ।
अनुज्ज्वलापकीर्तिर्वा मोहस्तेनेति चिंतनम् ॥२॥

अर्थ- इसने मेरा आदर सत्कार किया। इसने मेरा अपनाम अनादर किया इसने मेरी उज्ज्वल कीर्ति फैलाई। इस प्रकार का मन में विचार लाना ही मोह है ।

२. ॐ ह्रीं मानापमानविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरभिमानस्वरूपोऽहम् ।

कल्पवासि देवों के सुख भी तृण समान हैं तुच्छ सदैव ।
जो पर में सुख माना रहे है वे सुख पाते नहीं कदैव ॥

इसने आदर उसने अपमान किया है ।
इसने यश उसने अपयश आदि किया है ॥
ऐसा विचार मन में लाना दुखकारी ।
यह मोह दुष्ट ही लाता है बीमारी ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥२॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

किं करोमि क्व यामीदं क लभेयं सुखं कुतः ।
किंमाश्रयामि किं वच्मि मोहनिश्चितनमीदृशम् ॥३॥

अर्थ- मैं क्यों करूं? कहां जाऊँ? कैसे सुखी होऊं ? किसका सहारा लूं? और क्या कहूं? इस प्रकार विचार करना भी मोह है। निर्मोही वीतराग ऐसे विचार को सर्वथा मिथ्या मान कभी ऐसा विचार नहीं करते ।

३. ॐ ह्रीं मोहचिंतनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्मदस्वरूपोऽहम् ।

क्या क़रूं कहाँ जाऊँ कैसे सुख पाऊँ ।
क्या करूं सहारा किसका लूँ सुख पाऊं ॥
ऐसा विचार करना भी मोह प्रबल है ।
चिद्रूप शुद्ध में बाधक बहुत सबल है ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥३॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

चेतनाचेतने रागो द्वेषो मिथ्यामतिर्मम ।
मोहरूपमिदं सर्व चिद्रूपोऽहं हि केवलः ॥४॥

धन होने पर दान न देवे धार्मिकता का ढोंग करे ।
परभव में सुखरूपी पर्वत का विनाश वह स्वयं करे ॥

अर्थ- ये जो संसार मे चेतन अचेतन रूप पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं। वे मेरे हैं या दूसरे के हैं इस प्रकार राग और द्वेष रूप विचार करना मिथ्या है। क्योंकि ये सब मोह स्वरूप है। और मेरा स्वरूप शुद्धचिद्रूप है। इसलिये ये मेरे कभी नहीं हो सकते ।

५. ॐ ह्रीं चेतनाचेतनपदार्थविषयकरागद्वेषरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्द्वेषस्वरूपोऽहम् ।

जो भी पदार्थ चेतन व अचेतन दिखते ।
ये मेरे हैं यह तेरे हैं यह कहते ॥
इस भांति राग द्वेषादि भाव करता है ।
कर मोह जन्य परिणाम दुक्ख भरता है ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥४॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(५)

देहोऽहं मे स वा कर्मोदयोऽहं वाप्यसौ मम ।
कलत्रादिरहं वा मे मोहोऽदश्चिंतनं किल ॥५॥

अर्थ- मैं शरीर स्वरूप हूं व शरीर मेरा है। मैं कर्म का उदय स्वरूप हूं व कर्म का उदय मेरा है। मैं स्त्री पुत्रादि स्वरूप हूं व स्त्री पुत्र आदि मेरे हैं। इस प्रकार का विचार करना भी सर्वथा मोह है । देह आदि में मोह के होने से ही ऐसे विकल्प होते हैं ।

५. ॐ ह्रीं कलत्रादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

स्वरूपसिद्धोऽहम् ।

यह मेरा स्वामी यह शरीर मेरा है ।
कर्मो का उदय स्वरूप उदय मेरा है ॥
स्त्री पुत्रादि स्वरूप यही सब मेरे ।
ऐसे विचार से बढ़ते भव के फेरे ॥

जो सम्यक्त्व रत्न से शोभित बिन धन के वह धनी कहा।
जो सम्यक्त्व रत्न से विरहित धन है पर निर्धनी कहा ॥

ऐसे विचार सर्वथा मोह से होते ।
जितने विकल्प हैं वे सब ही तो होते ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥५॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

तज्ज्ये व्यवहारेण संत्युपाया अनेकशः ।
निश्चयेनेति मे शुद्धचिद्रूपोऽहं स चिंतनम् ॥६॥

अर्थ- व्यवहारनय से इस उपयुर्क्त मोह के नाश करने के लिये बहुत से उपाय हैं। निश्चयनय से मैं शुद्धचिद्रूप हूं ऐसा विचार करने मात्र से ही इसका सर्वथा नाश हो जाता है ।

६. ॐ ह्रीं मोहनाशोपायविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अचिन्त्योऽहम् ।

इनको क्षय करने का उपाय अब जानो ।
चिद्रूप शुद्ध निज सविनय उर में आनो ॥
व्यवहार दृष्टि से हैं उपाय बहुतेरे ।
निश्चय बिन ये सब अरे मोह के चेरे ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥६॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

धर्मोद्धारविनाशनादि कुरुते कालो यथा रोचते,
स्वस्यान्यस्य सुखासुखं वरखजं कर्मैव पूर्वजितम् ।
अन्ये येऽपि यथैव संति हि तथैवार्थाश्च तिष्ठंति ते,
चच्चिंतामिति मा विधेहि कुरु ते शुद्धात्मनश्चिंतनम् ॥७॥

जीवों को सुख दुख वास्तव में कर्मोदय से होता है ।
निज परिणामों से उपार्जित सुख दुख उसको होता है ॥

अर्थ- काल के अनुसार धर्म कर्मो के आगमन के द्वार को रोकता है। पहिले का उपार्जन किया हुआ कर्म इंद्रियों के उत्तमोत्तम सुख व नाना प्रकार के क्लेश भुगाता है। जो पदार्थ जैसे और जिस रीति से हैं, वे उसी रीति से विद्यमान हैं। इसलिये है आत्मन्! तू उनके लिये किसी बात की चिता न कर। अपने शुद्धचिद्रूप की ओर ध्यान दे ।

७. ॐ ह्रीं पूर्वार्जितसुखासुखविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अतर्क्योऽहम् ।

राधिका

कालानुसार उद्धार धर्म का होता ।
कालानुसार ही नाश धर्म का होता ॥
पहिले जो कर्म उपार्जित करके आया ।
उसके फल में सुख दुख व क्लेश बहु पाया ॥
जितने पदार्थ जैसे ज्यों जहाँ जमे हैं ।
उस रीति वर्त्तना करत हुए थमे हैं ॥
सब चिन्ता तज चिद्रूप शुद्ध ही ध्याओ ।
अपने स्वधर्म शाश्वत का ध्यान लगाओ ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥७॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

दुर्गन्धं मलभाजनं कुविधिना निष्पादितं धातुभि-
रंगं तस्य जनै र्निजार्थमखिलैराख्या धृता स्वेच्छया ।
तस्याः किं मम वर्णनेन सततं किं निंदनेनैव च,
चिद्रूपसस्य शरीर कर्म जनिताऽन्यस्याप्यहो तत्त्वतः ॥८॥

अर्थ- यह शरीर दुर्गन्धमय है। विष्टा मूत्र आदि मलों का घर है। निंदित कर्म की कृपा से मल मज्जा आदि धातुओं से बना हुआ है। तथापि मूढ़ मनुष्यों ने अपने स्वार्थ की

पर जीवों को सुखी दुखी करता हूँ येही अध्यवसान ।
पर मुझको सुख दुख देते हैं येही तो तेरा अज्ञान ॥

पुष्टि के लिये इच्छानुसार इसकी प्रशंसा की है। परन्तु मुझे इस शरीर की प्रशंसा और निंदा से क्या प्रयोजन है? क्योंकि में निश्चयनय से शरीर कर्म और उनसे उत्पन्न हुये विकारों से रहित शुद्धचिद्रूप स्वरूप हूं ।

८. ॐ ह्रीं दुर्गन्धादिमलभाजनरूपदेहरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ब्रह्मदेवस्वरूपोऽहम् ।

यह देह महा दुर्गंधित मल का घर है ।
निन्दित कर्मो के द्वारा निर्मित घर है ॥
मूढ़ों ने बहुत प्रशंसा की है इसकी ।
पर सुखी न पल भर हुई आत्मा इसकी ॥
निन्दा व प्रशंसा से क्या मुझे प्रयोजन ।
मैं तो कर्मो से रहित शुद्ध हूं चिद्घन ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥८॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

कीर्त्तिं वा पररंजनं खविषियं केचिन्नजं जीवितम्-
संतानं च परिग्रहं भयमपि ज्ञानं तथा दर्शनम् ।
अन्यस्याखिलवस्तुनो रुगयुतिं तद्धेतुमुद्दिश्य च,
कुर्युः कर्मविमोहिनो हि सुधियश्चिदरूपलब्धयै परम् ॥९॥

अर्थ- संसार में बहुत से मोही पुरुष कीर्ति के लिये काम करते हैं। अनेक दूसरों को प्रसन्न करने के लिये इन्द्रिय के विषयों की प्राप्ति के लिये अपने जीवन की रक्षा के लिये, संतान परिग्रह भय ज्ञान दर्शन तथा अन्य पदार्थो की प्राप्ति और रोग के अभाव के लिये काम करते हैं। और बहुत से कीर्ति आदि के कारणों के मिलाने के लिये उपाय सोचते रहते हैं परंतु जो मनुष्य बुद्धिमान हैं अपनी आत्मा को सुखी बनाना चाहते हैं वे शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति के लिये ही कार्य करते हैं।

आत्म शान्ति श्रद्धा को हरने वाला है अभिमान कुतर्क।
ज्ञान ध्यान वैराग्य शत्रु है मनोत्पन्न यह तर्क वितर्क ॥

९. ॐ ह्रीं पररंजनादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजदेवस्वरूपोऽहम् ।

संसारी जन यश हेतु काम करते हैं ।
विषयादि भोग पाने को श्रम करते हैं ॥
जो भेद ज्ञान की पावन निधि उर लाते ।
चिद्रूप शुद्ध की प्राप्ति वही कर पाते ॥
परबुद्धि छोड़ श्रम आत्मिक सुख हित करते ।
वे ही चिद्रूप शुद्ध पाते दुख हरते ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥९॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

कल्पेशनागेशनरेशसंभवं चित्ते सुखं मे सततं तृणायते ।
कुस्त्रीरमास्थानकदेहदेहजात् सदेति चित्रं मनुतेऽल्पधीः सुखम् ॥१०॥

अर्थ- मैंने शुद्धचिद्रूप के स्वरूप को भले प्रकार जान लिया है इसलिये मेरे चित्त में देवेन्द्र नागेंद्र के सुख जीर्णतृण सरीखे जान पड़ते हैं परंतु जो मनुष्य अल्पज्ञानी हैं। अपने और पर के स्वरूप का भले प्रकार ज्ञान नहीं रखते। वे भूमि स्त्रियां लक्ष्मी घर शरीर और पुत्र से उत्पन्न हुये सुख को जो कि दुःख स्वरूप है सुख मानते हैं। यह बड़ा आश्चर्य हैं।

१०. ॐ ह्रीं क्लेशादिसुखरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चित्कल्पेशोऽहम् ।

मैंने चिद्रूप शुद्ध को ही जाना है ।
चक्री इन्द्रादिक सुख तृणवत माना है ॥
सांसारिक सुख तो दुख स्वरूप ही जाने ।
आश्चर्य मूढ़ इनमें अपना सुख माने ॥

आत्म तत्त्व को ध्येय बनाकर आत्मोपलब्धि प्राप्त कर ले।
महामोक्ष अभिलाषी बनकर सिद्धालय प्रवेश कर ले ॥

चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥१०॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

न बद्धः परमार्थेन बद्धो मोहवशाद् गृही ।
शुकवद् भीमपाशेनाथवा मर्कटमुष्टिवत् ॥११॥

अर्थ- भय कराने वाले पाश के समान, अथवा बंदर की मुट्ठी के समान यद्यपि यह जीव वास्तविक दृष्टि कर्मो से संबद्ध नहीं है तथापि मोह से बंधा ही हुआ है ।

११. ॐ ह्रीं मोहबन्धनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्बन्धोऽहम् ।

जैसे शुक नलिनी नहीं छोड़ता भय से ।
बन्दर मुट्ठी निज नहीं खोलता भय से ॥
शुक अपनी सुध बुध भूल लटकता रहता ।
घटने पकड़ा है बंदर यही समझता ॥
चेतन को कर्मो ने न कभी पकड़ा है ।
यह मोह भाव के कारण खुद जकड़ा है ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥११॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

श्रद्धानां पुस्ताकनां जिनभवनमठांतेनिवासादिकानां
कौर्त्तेरक्षार्थकानां भुवि झटिति जनो रक्षणे व्यग्रचित्तः ।
यस्तस्य ्वात्मचिंता क्व च विशदमतिः शुद्धचिद्रूपकाप्तिः
क्व स्यात्सौख्यं निजोत्थं क्व च मनसि विचिंत्येति कुर्वंतु यत्नम् ॥१२॥

हे हितग्राही मन को थिर कर सदगुरु की शिक्षा सुन ले।
महामोह मदिरा को तज कर आत्म तत्त्व को ही गुन ले॥

अर्थ- यह संसारी जीव, नाना प्रकार के धर्मकार्य पुस्तकें जिनेन्द्र भगवान के मंदिर मठ छात्र और कीर्त्ति की रक्षा करने के लिये सदा व्यग्रचित्त रहता है। उन कार्यो से रंच मात्र भी इसे अवकाश नहीं मिलता। इसलिये न यह किसी प्रकार का आत्म ध्यान कर सकता। न इसकी बुद्धि निर्मल रह सकती है। और न शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति और निराकुलता रूप सुख ही मिल सकता है। अतः बुद्धिमानों को चाहिये कि वे इन सब बातों पर भले प्रकार विचार कर आत्मा के चिन्तवन आदि कार्यो में अच्छी तरह यत्न करें।

१२. ॐ ह्रीं कीर्त्यादिरक्षणचिन्तारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजसौख्यस्वरूपोऽहम् ।

संसारी नाना धर्म कर्म में उलझा ।
इसलिए न अपने शुद्ध कार्य हित सुलझा ॥
जिन मंदिर आदिक पुण्य कार्य में रहता ।
निज कीर्त्ति हेतु ही पुण्य कर्म रत रहता ॥
अवकाश न मिलता यों हीं भव जाता है ।
यह आत्म ध्यान तो तनिक न कर पाता है ॥
अतएव शुद्ध चिद्रूप ध्यान में लाओ ।
हे बुद्धिमान अब तो आत्मा को ध्याओ ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥१२॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

अहं भ्रांतः पूर्व तदनु च जगत् मोहवशतः,
पर द्रव्ये चिंतासततकरणादाभवमहो ।
पर द्रव्यं मुक्त्वा विहरति चिदानंदनिलये,
निजद्रव्ये यो वै तमिह पुरुषं चेतसि दधे ॥१३॥

जब तक अज्ञान हृदय में शिव पथ न प्राप्त हो सकता।
बिन ज्ञान भाव के कोई शिवसुख न व्याप्त हो सकता ॥

अर्थ- मोह के फंद में पड़ कर परद्रव्यों की चिंता और उन्हें अपनाने से प्रथम तो मैंने संसार में परिभ्रमण किया। और फिर मेरे पश्चात् यह समस्त जनसमूह घूमा। इसलिये जो महापुरुष पर द्रव्यों से ममता छोड़कर चिदानंद स्वरूप निज द्रव्य में बिहार करने वाला है निज द्रव्य का ही मनन स्मरण ध्यान करने वाला है, उस महात्मा को मैं अपने चित्त में धारण करता हूं ।

१३. ॐ ह्रीं चिदानन्दनिलयस्वरूपाय नमः ।

अभयस्वरूपोऽहम् ।

मोहादिक से मैं पर की चिन्ता करता ।
पर द्रव्यों को अपना भवदधि मैं बहता ॥
जो मोह त्याग चिद्रूप शुद्ध ध्याता है ।
वह ही महात्मा बहु आदर पाता है ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥१३॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

हित्वा यः शुद्धचिद्रूपस्मरणं हि चिक्रीर्षति ।
अन्यत्कार्यमसौ चिंतारत्नमश्मग्रहं कुधीः ॥१४॥

अर्थ- जो दुर्बुद्धि जीव शुद्धचिद्रूप का स्मरण न कर अन्य कार्य करना चाहते हैं। वे चिंतामणि रत्न को त्याग कर पाषाण ग्रहण करते हैं। ऐसा समझना चाहिये ।

१४. ॐ ह्रीं अन्यकार्यचिकीर्षारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

बोधरत्नोऽहम् ।

दुर्बुद्धि जीव चिद्रूप शुद्ध तज देते ।
वे अन्य कार्यों में जीवन खो देते ॥
चिन्तामणि रत्न त्याग पाषाण उठाते ।
अपने चिद्रूप शुद्ध को मूढ़ न ध्याते ॥

ज्ञानमयी देदीप्यमान दीपक की ज्योति प्रकाश करूं ।
संशय विभ्रम मिथ्यातम की अब प्रभु सत्ता नाश करूं ॥

चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥१४॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

स्वाधीनं च सुखं ज्ञानं परं स्यादात्मचिन्तनात् ।
तन्मुक्त्वा प्राप्तुमिच्छंति मोहतस्यतद्विलक्षणम् ॥१५॥

अर्थ- इस आत्मा के चिंतवन से शुद्धचिद्रूप के ध्यान से निराकुलता रूप सुख और उत्तम ज्ञान की प्राप्ति होती है। परन्तु ये मूढ़ जीव मोह के वश होकर आत्मा का चिंतवन करना छोड़ देते हैं और उससे विपरीत कार्य जो कि अनंत क्लेश देने वाला है कर निकलते हैं ।

१५. ॐ ह्रीं स्वाधीनसुखज्ञानस्वरूपाय नमः ।

निजालयस्वरूपोऽहम् ।

आत्मा का ही चिन्तवन सतत उत्तम है ।
चिद्रूप शुद्ध स्वाधीन ध्यान उत्तम है ॥
पर मूढ़ मोह वश शुद्ध ध्यान तज देता ।
विपरीत कृत्य कर महा क्लेश ही लेता ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥१५॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

यावन्मोहो बली पुंसि दीर्घसंसारतापि च ।
न तावत् शुद्धचिद्रूपे रुचिरत्यंतनिश्चला ॥१६॥

अर्थ- जब तक इस आत्मा के साथ महाबलवान मोहनीय कर्म का संबंध है और दीर्घ संसारता-चिरकाल तक संसार में भ्रमण करना बाकी है। तब तक इसका कभी शुद्धचिद्रूप में निश्चल रूप से प्रेम नहीं हो सकता ।

निरावरण मेरा स्वभाव है कर्म आवरण कर दूं नष्ट ।
इक शत अड़तालीस प्रकृतियां उत्तर कर दूं पूरी भ्रष्ट ॥

१६. ॐ ह्रीं दीर्घसंसाररहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अनन्तबलस्वरूपोऽहम् ।

जब तक आत्मा में महामोह रहता है ।
तब तक संसार शीघ्र बढ़ता रहता है ॥
चिद्रूप शुद्ध प्रति प्रेम कहाँ से आए ।
यह मोह भाव में ही तो बहता जाए ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥१६॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमसाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

अंधे नृत्यं तपोऽज्ञे गदविधिरतुला स्वायुषो वाऽनवसाने ।
गीतं बाधिर्ययुक्ते वपनमिह यथाऽयप्यूषरे वार्यतृष्णे ।
स्निग्धे चित्राण्यभव्ये रुचिविधिरनघः कुंकुमं नीलवस्त्रे ।
नात्ममप्रीतौ तदाख्या भवति किल वृढ़ा निःप्रतीतौ सुमंत्रः ॥१७॥

अर्थ- जिस प्रकार अंधे के सामने नाच अज्ञानी का तप आयु के अंत में औषध का प्रयोग बहिरे के आगे गीतों का गाना, ऊसर भूमि में अन्न का बोना बिन प्यासे मनुष्य के लिये जल देना, चिकने पर चित्र का खींचना, अभव्य को धर्म की रुचि कहना, काले कपड़े पर केसरिया रंग और प्रतीति रहित पुरुष के लिये मंत्र प्रयोग करना कार्यकारी नहीं। उसी प्रकार जिसका आत्मा पर प्रेम नहीं उस मनुष्य को आत्मा के ध्यान करने का उपदेश भी कार्यकारी नहीं सब व्यर्थ है ।

१७. ॐ ह्रीं अज्ञानतादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञाननिलयस्वरूपोऽहम् ।

अंधे को नृत्य तथा तप अज्ञानी को ।
औषधि प्रयोग मरणादि समय प्राणी को ॥

शुद्ध ज्ञान सामर्थ्य प्राप्त कर महा मोक्ष को प्राप्त कर ।
शुद्ध अनंत चतुष्टय अपने अंतरंग में व्याप्त कर ॥

बहिरे के आगे गीत आदि का गाना ।
ज्यों ऊसर भू में बोकर अन्न उगाना ॥
बिन प्यासे को जल अभव्य को समझाना ।
काले वस्त्रों पर केसर रंग चढ़ाना ॥
ऐसे सब कृत्य न कभी कार्यकारी हैं ।
मन की विडबनाएं हैं दुखकारी हैं ॥
जिसको आत्मा से प्रेम नहीं होता है ।
उसको देना उपदेश व्यर्थ होता है ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥१७॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

स्मरति परद्रव्याणि मोहान्मूढ़ाः प्रतिक्षणम् ।
शिवाय स्वं चिदानंदमयं नैव कदाचन ॥१८॥

अर्थ- ये मूढ़ मनुष् मोह वश हो प्रति समय पर द्रव्य का स्मरण करते हैं। परन्तु मोक्ष के लिए शुद्ध चिदानंद का कभी भी ध्यान नहीं करते ।

१८. ॐ ह्रीं परद्रव्यस्मरणरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चिदानन्दमयशिवोऽहम् ।

जो मूढ़ मोह वश पर का सुमिरण करते ।
चिद्रूप शुद्ध का ध्यान न वे कर सकते ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥१८॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

दर्शन ज्ञान वीर्य सुख मंडित पद अनर्घ्य अविराम वरूं ।
पुण्य भाव के अर्घ्य नष्ट कर ज्ञान भाव के अर्घ्य धरूं ॥

(१९)

मोह एवं परं बैरी नान्यः कोऽपि विचारणात् ।
ततः स एव जेतव्यो बलवान् धीमताऽऽदरात् ॥१९॥

अर्थ- विचार करने से मालूम हुआ है कि यह मोह ही जीवों का अहित करने वाला महा बलवान बैरी है। इसी के अधीन हो मनुष्य नाना प्रकार के क्लेश भोगते रहते हैं। इसलिये जो मनुष्य विद्वान हैं, आत्मा के स्वरूप के जानकार है उन्हें चाहिये कि वे सबसे पहिले इस मोह को जीतें अपने वश में करें ।

१९. ॐ ह्रीं बलवान्मोहबैरीरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानबलस्वरूपोऽहम् ।

सम्यक् विचार करने पर मैंने जाना ।
यह मोह अहित कर बैरी है यह माना ॥
इसके अधीन जो होते क्लेश भोगते ।
जो मोह जीत लेते वे सौख्य भोगते ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥१९॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

भवकूपे महोहपंकेऽनादि गतं जगत् ।
शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानरज्वा सर्व समुद्धरे ॥२०॥

अर्थ- यह समस्त जगत अनादि काल से संसाररूपी विशाल कूप के अन्दर महामोह रूपी कीचड़ में फंसा हुआ है इसलिये अब मैं शुद्धचिद्रूप के ध्यानरूपी मजबूत रस्सी के द्वारा उसका उद्धार करूंगा ।

२०. ॐ ह्रीं भवकूपगतमहामोहपंकरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानरज्जूस्वरूपोऽहम् ।

क्षुधा व्याधि से पीड़ित होकर अब तक पाए हैं बहु कष्ट।
ज्ञान भाव के सुचरु प्राप्त कर भव पीड़ा कर दूँगा नष्ट॥

राधिका

सारा जग ही अनादि से द्रह में डूबा ।
भव क्रूर मध्य दुख पाए किन्तु न ऊबा ॥
अब तो मैं प्रभु चिद्रूप शुद्ध ध्याऊंगा
दृढ़ रस्सी द्वारा मैं ऊपर आऊंगा ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥२०॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

(२१)

शुद्धचिद्रूपसदध्यानादन्यत्कार्य हि मोहजं ।
तस्माद् बंधसस्ततो दुःखं मोह एव ततो रिपुः ॥२१॥

अर्थ- संसार में सिवाय शुद्धचिद्रूप के ध्यान के जितने कार्य है सब मोहज मोह के द्वारा उत्पन्न है। सब की उत्पत्ति मैं प्रधान कारण मोह है। तथा मोह से कर्मो का बंध और उससे अनन्त क्लेश भोगने पड़ते हैं, इसलिये सबसे अधिक जीवों का बैरी मोह ही है।

२१. ॐ ह्रीं दुःखरूपमोहरिपुरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अबन्धोऽहम् ।

राधिका

चिद्रूप शुद्ध का ध्यान छोड़ जो कृत हैं ।
वे सारे ही दुष्कृत्य मोह आवृत हैं ॥
भव का प्रधान कारण यह मोह बंध है ।
सर्वाधिक दुख का दाता कर्म द्वंद है ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥२१॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागममाय अर्घ्यं नि. ।

मैं प्रत्यक्ष ज्ञान से शोभित हे प्रभु निज कल्याण करूं ।
युगपत दर्शी ज्ञान प्राप्त कर श्री केवली स्वपद वरूं ॥

(२२)

मोहं तज्जातकार्याणि संगं हित्वा च निर्मलम् ।
शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानं कुरु त्यक्त्वान्यसंगतिम् ॥२२॥

अर्थ- अत- जो मनुष्य शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति के अभिलाषी है उन्हें चाहिये कि वे मोह और उससे उत्पन्न हुए समस्त कार्यो का सर्वथा त्याग कर दें। उनकी और झांक कर भी न देखें। और समस्त पर द्रव्यों से ममता छोड़ केवल शुद्धचिद्रूप क़ा ही मनन ध्यान और स्मरण करें।

२२. ॐ ह्रीं अन्यसंगतिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निष्परिग्रहोऽहम् ।

राधिका

जिनको चिद्रूप शुद्ध की है अभिलाषा ।
वे मोह जन्य भावों की तज दें पाशा ॥
उस ओर झांककर भी न कभी वे देखें ।
अपने चिद्रूप शुद्ध को प्रतिक्षण पेखें ॥
चिद्रूप शुद्ध ही शिव सुखकारी पाऊं ।
आनंद अतीन्द्रिय धारा हृदय सजाऊं ॥२२॥

ॐ ह्रीं भट्टारकज्ञानभूषणविरचित तत्त्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपध्यानाय मोहत्याग प्रतिपादकनवमाध्याये शाश्वतबोधनिलयस्वरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्य

छंद हे दीनबंधु

दुर्ध्यान मेरा पूर्णतया जब से हुआ नाश ।
तो आर्त्तरौद्र ध्यान का भी हो गया विनाश ॥
शुद्धात्मा की गंध आयी बड़ी दूर से ।
तो धर्म ध्यान का हृदय में हो गया निवास ॥

इन्द्रिय चक्षु बहिर्मुख होते अंतर्मुख हैं आगम चक्षु ।
सकल वाङ्मय की महिमा पा बन जाऊं प्रभु निर्मल चक्षु॥

रत्नत्रय सहित परम संयमी हुआ प्रभो ।
तो धर्म ध्यान स्वर्ग सौख्य पद का हुआ वास ॥
फिर शुक्ल ध्यान ध्या के क्षपक श्रेणी चढ़ गया ।
तो मोह क्षीण गुणस्थान हुआ मेरे पास ॥
सर्वज्ञ दशा प्रगट हुई पूर्ण ज्ञान पा ।
तो ध्यान विलय हुआ मिला मुक्ति का प्रकाश ॥
स्वध्यान फल मिला तो ध्यान पीछे रह गया ।
निज सिद्ध पुर में हो गया सदा सदा को वास ॥
चिद्रूप शुद्ध पाके हुआ गुण अनंतमय ।
संसार चक्र नष्ट हुआ नाश हुआ त्रास ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पण करूं पाऊं भव दुख कूप ।
परम शक्ति शाली प्रभो एक शुद्ध चिद्रूप ॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्य नि. ॥

जयमाला

वीरछंद

धर्म कीर्त्ति पति क्षय कर डाला तुमने भव भव का संताप।
परम पारिणामिक स्वभाव के ही अधिपति हो हे प्रभु आप॥
दर्शन ज्ञान त्रिवेणी के संगम हे प्रभु संयम सम्राट ।
समिति गुप्ति व्रत वंशी कालिंदी पतित पावनी हृदय विराट॥
गुण अनंत के अलंकरण से सदा सुशोभित त्रिभुवन नाथ।
भव जल राशि अगाध सुखाकर लिया आत्मा को ही साथ॥
प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं दि ध्वनि के अनुपम स्रोत ।
परम शुद्ध अध्यात्म न्याय से हृदय आपका ओतः प्रोत ॥

आदि अन्त अरु मध्य रहित है ज्ञान मात्र सत्ता से युक्त।
आत्म स्वसंवेदन केवल से हो जाऊं प्रभु भव दुख मुक्त॥

तुव उपदेशित हार्द करूं मैं आत्मसात ये ही वर दो ।
नित्य निरंजन निष्कलंक हो जाऊं प्रभु ऐसा कर दो ॥
निःश्रेयस पथ पर बढ़ जाऊं आत्म अभ्यदय ध्रुव पाऊं ।
निज स्वरूप संबोधि प्राप्त कर आलोकित जीवन पाऊं॥
आत्म तत्त्व हृदयंगम करना स्वाध्याय का है निष्कर्ष ।
अपने से अपना परिचय कर करूं नाथ मैं आत्मोत्कर्ष ॥
परम शुद्ध चिद्रूप ध्यान की लगन हृदय में रहे सदा ।
अनुभव रस की पवित्र धारा अंतरंग में बहे सदा ॥

ॐ ह्रीं नवम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

परम शुद्ध चिद्रूप का महाअर्घ्य अविकार ।
जो भी इसको निरखता पाता ज्ञान अपार ॥

इत्याशीर्वाद :

भजन

मोक्ष पाने के लिए चाहिए साहस चेतन ।
माता जिनवाणी का पयपान करो बस चेतन ॥
आत्म कल्याण का अवसर मिला है मुश्किल से ।
भेद विज्ञान की महिमा हृदय में लो चेतन ॥
बिना सम्यक्त्व के भव पार नहीं जाओगे ।
शुद्ध रत्नत्रयी आनंद का लो रस चेतन ॥
आत्म अनुभव के बिना सब क्रिया अधूरी है ।
नित पियो शुद्ध बुद्ध आत्मा का रस चेतन ॥
मोक्ष की प्राप्ति फिर दुर्लभ कभी नहीं होगी ।
अपनी शुद्धात्मा का ध्यान तो करो चेतन ॥

आत्म अनादि निधन गुण वैभव से संपन्नित को जानूं ।
एक पदार्थ समूह जान लूं शुद्ध स्वपद को पहचानूँ ॥

ॐ

पूजन क्रमांक ११

तत्त्वज्ञान तरंगिणी दशम अध्याय पूजन

स्थापना

गीतिका

तत्त्वज्ञान तरंगिणी का यह दशम अधिकार है ।
शुद्ध निज चिद्रूप का तो नाम ही सुखकार है ॥
शुद्ध निज चिद्रूप के ध्यानार्थ तज दो अहंकार ।
साथ ही ममकार तज दो फिर बनो तुम निर्विकार ॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद चौपइ आंचली बद्ध

सात तत्त्व का ज्ञान करूं निज का ही श्रद्धान करूं ।
परम सुख हो पूजे नाथ परम सुख हो ॥
त्रिविध रोग का करूं विनाश परम शुद्ध चिद्रूप प्रकाश ।
महा सुख हो देखे नाथ महा सुख हो ॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

ज्ञानानंद लोक का अधिपति परमात्मा बन जाऊं मैं ।
भेदहीन अस्खलित शाश्वत सिद्ध स्वपद प्रगटाऊं मैं ॥

छह द्रव्यों का ज्ञान करूं। निज स्वद्रव्य का भान करूं ।
परम सुख हो पूजे नाथ परम सुख हो ॥
भव आतप ज्वर करूं विनाश परम शुद्ध चिद्रूप प्रकाश।
महा सुख हो देखे नाथ महा सुख हो ॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

पंच अस्ति कायों को जान अस्ति काय निज लूं पहचान।
परम सुख हो पूजे नाथ परम सुख हो ॥
अक्षय पद में करूं निवास परम शुद्ध चिद्रूप प्रकाश ।
महा सुख हो देखे नाथ महा सुख हो ॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

अनुभव पुष्पों की हो वास हो निष्काम भावना पास ।
परम सुख हो पूजे नाथ परम सुख हो ॥
कामबाण का करूं विनाश परम शुद्ध चिद्रूप प्रकाश ।
महा सुख हो देखे नाथ महा सुख हो ॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

निज नैवेद्य सहज सुख रूप क्षुधा रोग नाशूं दुखरूप ।
परम सुख हो पूजे नाथ परम सुख हो ॥
करूं आत्मा में ही वास परम शुद्ध चिद्रूप प्रकाश ।
महा सुख हो देखे नाथ महा सुख हो ॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

मैं सामान्य विशेष रूप से हूं चेतन पदार्थ शाश्वत ।
बाहयान्तर निर्ग्रंथ दशा पा रहूं आत्मा में जाग्रत ॥

शाश्वत दीप जलाऊं आज मोह विनाशूं हे जिनराज ।
परम सुख हो पूजे नाथ परम सुख हो ॥
करूं ज्ञान कैवल्य विकास परम शुद्ध चिद्रूप प्रकाश ।
महा सुख हो देखे नाथ महा सुख हो ॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

धर्म धूप ही ला अनमोल नाशूं आठों कर्म किलोल ।
परम सुख हो पूजे नाथ परम सुख हो ॥
शुद्ध अबंध स्वरूप विकास परम शुद्ध चिद्रूप प्रकाश ।
महा सुख हो देखे नाथ महा सुख हो ॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि ।

सर्वोत्तम फल मोक्ष महान मैं भी पाऊं पद निर्वाण ।
परम सुख हो पूजे नाथ परम सुख हो ॥
पाऊं ध्रुव शिवपुर का वास परम शुद्ध चिद्रूप प्रकाश ।
महा सुख हो देखे नाथ महा सुख हो ॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

पद अनर्घ्य पाऊं अविलंब हरूं चार गतियों का दंभ ।
परम सुख हो पूजे नाथ परम सुख हो ॥
मुक्ति भवन में करूं निवास परम शुद्ध चिद्रूप प्रकाश ।
महा सुख हो देखे नाथ महा सुख हो ॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

बुझ जाती है अग्नि बिना ईधन के ज्यों देखो तत्काल ।
मैं भी कर्म रहित हो करके पाऊंगा शिवसौख्य विशाल ॥

अर्घ्यावलि

दशम अध्याय

शुद्ध चिद्रूप के ध्यानार्थ अहंकार
ममकारता के त्याग

(१)

निरंतरमहंकारं मूढ़ाः कुर्वन्ति तेन ते ।
स्वकीयं शुद्धचिद्रूपं विलोकंते न निर्मलं ॥१॥

अर्थ- दृढ़ पुरुष निरंतर अहंकार के वश रहते हैं। देहादि पर पदार्थों में आत्म बुद्धि किये हुए हैं; इसलिये अतिशय निर्मल अपने चिद्रूप की ओर वे जरा भी नहीं देखने पाते ।

१. ॐ ह्रीं स्वकीयनिर्मलशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ब्रह्मालयस्वरूपोऽहम् ।

छंद सरसी

सतत निरंतर अहंकार वश रहते अज्ञानी ।
अपने आगे नहीं किसी का समझें दुर्ध्यानी ॥
अतः शुद्ध चिद्रूप स्व निर्मल देख नहीं पाते ।
निज चिद्रूप शुद्ध के इच्छुक ही इसको पाते ॥
जो चिद्रूप शुद्ध का ध्याता वह सुख पाता है ।
जो चिद्रूप शुद्ध ना ध्याता वह दुख पाता है ॥१॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२)

देहोऽहं कर्मरूपोऽहं मनुष्योऽहं कुशोऽकृशः ।
गौरोऽहं श्यामवर्णोऽहमद्विजोऽहं द्विजोऽथवा ॥२॥

अर्थ- मैं देह स्वरूप हूं, कर्म स्वरूप हूं, मनुष्य हूं, कृश हूं, स्थूल हूं, गोरा हूं, काला हूं, ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रिय वैश्य आदि हूं ब्रह्मण हूं, मूर्ख हूं, ।

राग समूह सर्वथा निग्रह करने का मेरा निश्चय ।
राग मूल जड़ से काटूंगा पाऊंगा निज आत्म निलय ॥

२. ॐ ह्रीं कृशाकृशादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानघनस्वरूपोऽहम् ।

मैं देह तथा मै कर्म तथा मैं नर हूं मैं नारी ।
मैं कृश हूं मैं स्थूल और गोरा काला भारी ॥
मैं निर्धन हूं धनिक तथा विद्वान मूर्ख मैं हूँ ।
ऐसे अहंकार में रहता पूर्ण मूढ़ मैं हूं ॥
जो चिद्रूप शुद्ध का ध्याता वह सुख पाता है ।
जो चिद्रूप शुद्ध ना ध्याता वह दुख पाता है ॥२॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

अविद्वानप्यहंविद्वान् निर्धनो धनवानहम् ।
इत्यागिचिंतनं पुंसामहंकारो निरुच्यते ॥३॥

अर्थ- विद्वान हूं, निर्धन हूं धनवान हूं, इत्यादि रूप से मन में विचार करना अहंकार है। मूढ़ मनुष्य इसी अहंकार में चूर रहते हैं।

३. ॐ ह्रीं विद्वानाविद्वानापर्यायरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरहंकारोऽहम् ।

यह पर में एकत्व भाव ही भव दुख वर्धक है ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध हूं यह मति सम्यक् है ॥
जो चिद्रूप शुद्ध का ध्याता वह सुख पाता है ।
जो चिद्रूप शुद्ध ना ध्याता वह दुख पाता है ॥३॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

ये नरा निरहंकारं निवतन्वंति प्रतिक्षणम् ।
अद्वैतं ते स्वचिद्रूपं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥४॥

अर्थ- जो मनुष्य प्रति समय निरहंकारता प्रकट करते रहते हैं। अहंकार नहीं करते, उन्हें

मैं विज्ञान ज्ञान हूँ मैं अर्हंत अवस्था पाऊंगा ।
पूर्ण प्रौढ़ता ज्ञान भाव की निज बल से प्रगटाऊँगा ॥

निसन्देह अद्वैत स्वरूप शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति होती है ।

४. ॐ ह्रीं अद्वैतस्वचिद्रूपाय नमः ।

निःसंशयस्वरूपोऽहम् ।

जो निरहंकारी भावों की ही सतत वृद्धि करते ।
अहंकार करते न रंच चिद्रूप शुद्ध वरते ॥
वे अद्वैत स्वरूप भावना को ही भाते हैं ।
निःसंदेह वही चिद्रूप शुद्ध को पाते हैं ॥
जो चिद्रूप शुद्ध का ध्याता वह सुख पाता है ।
जो चिद्रूप शुद्ध ना ध्याता वह दुख पाता है ॥४॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(५)

न देहोऽहं न कर्माणि न मनुष्यो द्विजोद्विजः ।
नैव स्थूलो कृशो नाहं किन्तु चिद्रूप लक्षणः ॥५॥

अर्थ- जो मनुष्य भेद विज्ञानी हैं। जड़ और चेतन का वास्तविक भेद जानते है। उनका न मैं देह स्वरूप हूं, न कर्म स्वरूप हूं, न मनुष्य हूं न ब्राह्मण न क्षत्रिय आदि हूं; न स्थूल हूं, न कृश हूं, किन्तु शुद्धचिद्रूप हूं, ।

५. ॐ ह्रीं द्विजाद्विजविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चैतन्यकुलस्वरूपोऽहम् ।

जड़ चेतन का भेद वास्तविक जान रहा ज्ञानी ।
पर से प्रथक जानता निज को वही भेदज्ञानी ॥
मैं न देह हूँ मैं न कर्म हूं मैं न मनुज हूं कृश ।
मैं तो द्वैत भाव से विरहित हूं अपने ही वश ॥
जो चिद्रूप शुद्ध का ध्याता वह सुख पाता है ।
जो चिद्रूप शुद्ध ना ध्याता वह दुख पाता है ॥५॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

निज स्वरूप से तन्मय होकर आत्म भावना भाऊं ।
मैं सामान्य विशेष आत्मा को ही प्रतिपल ध्याऊँ ॥

(६)

चिंतनं निरहंकारो भेत विज्ञानिनामिति ।
स एव शुद्धचिद्रूपलब्धये कारणं परम् ॥६॥

अर्थ- इस प्रकार का चिंतन करना निरहंकार अहंकार का अभाव है। और यह निरहंकार शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति में असाधारण कारण है ।

६. ॐ ह्रीं मनष्यकर्मरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानकुलोऽहम् ।

मेरे भीतर अहंकार का है अभाव पूरा ।
मैं चिद्रूप शुद्ध निरहंकारी पूरा पूरा ॥
जो चिद्रूप शुद्ध का ध्याता वह सुख पाता है ।
जो चिद्रूप शुद्ध ना ध्याता वह दुख पाता है ॥६॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

ममत्वं ये प्रकुर्वनित परवस्तुषु मोहिनः ।
शुद्धचिद्रूपसंप्राप्तिस्तेषां स्वप्नेऽपि नो भवेत् ॥७॥

अर्थ- जो मूढ़ जीव पर पदार्थो में ममता रखते हैं, उन्हें अपनाते हैं, उनको स्वप्न में भी शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

७. ॐ ह्रीं परवस्तुममत्वरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्ममचिद्रूपोऽहम् ।

जो पर में ममत्व रखते हैं पर को अपनाते ।
वे न स्वप्न में भी अपना चिद्रूप देख पाते ॥
जो चिद्रूप शुद्ध का ध्याता वह सुख पाता है ।
जो चिद्रूप शुद्ध ना ध्याता वह दुख पाता है ॥७॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

विध निषेध की समान ज्ञान विधि द्वारा कर्म घटाऊं ।
रागादिक का निषेध करके वीतराग बन जाऊं ॥

(८)

शुभाशुभानि कर्माणि मम देहोऽपि वा मम ।
पिता माता स्वसा भ्राता मम जायात्मजात्मजः ॥८॥

अर्थ- शुभ अशुभ कर्म मेरे हैं। शरीर पिता माता बहिन भाई स्त्री पुत्री पुत्र गाय अश्व बकरी हाथी पक्षी दुकान मकान मेरे हैं और पुर राजा और देश भी मेरे हैं। इस प्रकार का मन में चिंतवन करना ममत्व है। अर्थात् इनको अपनाना ममत्व कहलाता है ।

८. ॐ ह्रीं पितामातादिविषयकममत्वरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शिवलक्ष्मीस्वरूपोऽहम् ।

कर्म शुभाशुभ मेंरे हैं अरु मात पिता मेरे ।
बहिन भ्रात सुत सुता अश्व गज धन मंदिर मेरे ॥
जो चिद्रूप शुद्ध का ध्याता वह सुख पाता है ।
जो चिद्रूप शुद्ध ना ध्याता वह दुख पाता है ॥८॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

गौरश्वो,जो गजो रा विरापणं मंदिरं मम ।
पू राजा मम देशश्च ममत्वमिति चिंतनम् ॥९॥

९. ॐ ह्रीं अश्वगजादिविषयकममत्वरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ब्रह्ममंदिरस्वरूपोऽहम् ।

मेरी नगरी मेरा राज्य अरु मेरा देश विमान ।
यही चिन्तवन ममत्व कारण दुख की है पहचान ॥
जो चिद्रूप शुद्ध का ध्याता वह सुख पाता है ।
जो चिद्रूप शुद्ध न ध्याता वह दुख पाता है ॥९॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

आत्म तेज का प्रकाश करूं संयम की रुचि के द्वारा ।
कर्मो का प्रवाह रोकूंगा काटूंगा भव कारा ॥

(१०)

निर्ममत्वेन चिद्रूपप्राप्तिर्जाता मनोषिणाम् ।
तस्मात्तदर्थिना चिंत्यं तदेवैकं मुहुर्मुहुः ॥१०॥

अर्थ- जिन किन्हीं विद्वान मनुष्यों को शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति हुई है उन्हें शरीर आदि पर पदार्थो में ममता न रखने से ही हुई है इसलिये जो महानुभाव शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति के अभिलाषी है उन्हें चाहिये कि वे निर्ममत्व का ही बार बार चिंतवन करें। उसी की ओर अपना दृष्टि लगायें ।

१०. ॐ ह्रीं मनीषित्वपदविषयकममत्वरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अक्षरबोधस्वरूपोऽहम् ।

जिनको भी चिद्रूप शुद्ध की प्राप्ति हुई पावन ।
उन सबने जीता ममत्व को किया आत्म चिन्तन ॥
जो चाहें चिद्रूप शुद्ध को निर्ममत्व होवें ।
पर पदार्थ में जो ममत्व है उसे पूर्ण खोवें ॥
जो चिद्रूप शुद्ध का ध्याता वह सुख पाता है ।
जो चिद्रूप शुद्ध ना ध्याता वह दुख पाता है ॥१०॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

शुभाशुभानि कर्माणि न मे देहोपि नो मम ।
पिता माता स्वसा भ्राता न मे जायात्मजात्मजः ॥११॥

अर्थ- शुब अशुभ कर्म मेरे नहीं है । देह माता पिता भाई बहिन स्त्री पुत्र मेरे नहीं है।

११. ॐ ह्रीं स्वसांजायादिविशषयकममत्वरहितनिर्ममत्वस्वरूपाय नमः ।

सौख्यनिलयस्वरूपोऽहम् ।

शुभ या अशुभ कर्म से मेरा कुछ संबंध नहीं ।
माता पिता अरु बहिन भाई सुत पत्नी कभी नहीं ॥

निज अंतर आलोक प्रगट कर गहराई में जाऊंगा ।
बीन बीन कर राग द्वेष को मैं सम्पूर्ण जलाऊंगा ॥

जो चिद्रूप शुद्ध का ध्याता वह सुख पाता है ।
जो चिद्रूप शुद्ध न ध्याता वह दुख पाता है ॥११॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

गौरश्वो गजो रा विरापणं मंदिरं न मे ।
पू राजा मे न देसो निर्ममत्वमिति चिंतनम् ॥१२॥

अर्त- गाय अश्व हाथी धन पक्षी दुकान मकान पुर राजा और देश मेरे नहीं है इस प्रकार का जो मन में चिन्तवन करना है, वह निर्ममत्व है ।

१२. ॐ ह्रीं पूराजादेशादिविषयकममत्वरहितनिर्ममत्वस्वरूपाय नमः ।

निरपेक्षस्वरूपोऽहम् ।

मैं अद्वैत शुद्ध हूं चेतन चिन्तन करता हूं ।
निमर्मत्व का यही भाव निज उर में धरता हूं ॥
जो चिद्रूप शुद्ध का ध्याता वह सुख पाता है ।
जो चिद्रूप शुद्ध ना ध्याता वह दुख पाता है ॥१२॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

ममेतिचिंतनाद् बदो मोचनं न ममेत्यतः ।
बंधनं द्वयक्षराभ्यां च मोचनं त्रिभिरक्षरैः ॥१३॥

अर्थ- स्त्री पुत्र आदि मेरे हैं। इस प्रकार के विचार करने से कर्मो का बंध होता है। और ये मेरे नहीं ऐसा विचार करने से कर्म नष्ट होते हैं, इसलिये मम (मेरे) ये दो अक्षर तो कर्म बंध के कारण हैं। और मम न (मेरे नहीं) इन तीन अक्षरों के चिन्तवन करने से कर्मो से मुक्ति होती है ।

१३. ॐ ह्रीं बंधमोचनादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

स्वतन्त्रब्रह्मस्वरूपोऽहम् ।

है चैतन्य दीप्ति ज्योतिर्मय विभ्रम तम कर देती नष्ट ।
फिर न कभी भी दे पाता है मोह शत्रु भी कोई कष्ट ॥

स्त्री पुत्रादिक के चिन्तन से होता है बंध ।
ये मेरे हैं नहीं इसी चिन्तन से रंच न बंध ॥
मम मेरा मम के विचार ही बंध कराते हैं ।
मम न यही तीन अक्षर तो कर्म मिटाते हैं ॥
जो चिद्रूप शुद्ध का ध्याता वह सुख पाता है ।
जो चिद्रूप शुद्ध ना ध्याता वह दुख पाता है ॥१३॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

निर्ममत्वं परं तत्त्वं ध्यानं चापि व्रतं सुखम् ।
शीलं खरोधनं सत्मात्निर्ममत्वं विचिंतयेत् ॥१४

अर्थ- यह निर्ममत्व सर्वोत्तम तत्व है। परम ध्यान परमव्रत परम सुख और परम शील हैं। इससे इन्द्रियों के विषयों का निरोध होता है। इसलिये उत्तम पुरुषों को चाहिये कि वे इस शुद्धचिद्रूप का ही ध्यान करें ।

१४. ॐ ह्रीं व्रतध्यानादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानशीलस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

उत्तम पुरुष शुद्ध चिद्रूप ध्यान का करते सदा उपाय ।
इसी ध्यान में लय हो करके पाते शाश्वत पद सुखदाय॥
निर्ममत्व सर्वोच्च तत्त्व है परम ध्यान सुखवत मय शील।
इन्द्रिय विषयों का निरोध होता अनंत गुण की यह झील॥
जो चिद्रूप शुद्ध की महिमा जान उसे ही ध्याता है ।
पर ममत्व को क्षय करता है महा मोक्ष पद पाता है ॥१४॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञान शक्ति का मैं भंडार ।
बिना कर्म के ऊर्ध्व गमन कर पाऊंगा शिव सुख अविकार॥

(१५)

याता ये यांति यास्यंति भदंता मोक्षमव्ययम् ।
निमर्मत्वेन ते तस्मान्निर्ममत्वं विचिन्तयेत् ॥१५॥

अर्थ- जो मुनिगण मोक्ष गये, जा रहे हैं, और जायंगे। उनके मोक्ष की प्राप्ति में यह निर्ममत्व ही कारमणहै। इसी की कृपा से उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुई है। इसलिये मोक्षाभिलाषियों को निर्ममत्व का ही ध्यान करना चाहिये।

१५. ॐ ह्रीं अव्ययानन्दस्वरूपाय नमः ।

अक्षयानन्दोऽहम् ।

ताटंक

जो भी मुनिवर मोक्ष गए जा रहे और अब जाएंगे ।
उनको मोक्ष प्राप्ति में कारण निर्ममत्व ही ध्यायेंगे ॥
अतः मोक्ष प्राप्ति में कारण निर्ममत्व ही उत्तम ध्यान ।
इसकी महा कृपा से मिलता आराधक को पद निर्वाण ॥
जो चिद्रूप शुद्ध की महिमा जान उसे ही ध्याता है ।
पर ममत्व को क्षय करता है महा मोक्ष पद पाता है ॥१५॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

निर्ममत्वे तपोपि स्यादुत्तमं पंचमं व्रतम् ।
धर्मोऽपि परमस्तस्मन्निर्ममत्वं विचिंतयेत् ॥१६॥

अर्थ- पर पदार्थों की ममता न रखने से, भले प्रकार निर्ममत्व के पालन करने से, उत्तम तप और पांचवें निष्परिग्रह नामक व्रत का पूर्ण रूप से पालन होता है। सर्वोत्तम धर्म की भी प्राप्ति होती है। इसलिये यह निर्ममत्व ही ध्यान करने योग्य है ।

१६. ॐ ह्रीं परमानन्तगुणस्वरूपाय नमः ।

परमज्ञानामृतोऽहम् ।

स्वपर भेद विज्ञान प्राप्त कर पाऊंगा निज की अनुभूति।
निमिष मात्र में जाग्रत होगी निज अंतर में आत्म प्रतीति॥

पर पदार्थ से रखें न ममता निर्ममत्व पालन करते ।
तप व्रत अपरिग्रह पालन कर उत्तम धर्म प्राप्त करते ॥
जो चिद्रूप शुद्ध की महिमा जान उसे ही ध्याता है ।
पर ममत्व को क्षय करता है महा मोक्ष पद पाता है ॥१६॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

निर्ममत्वाय न क्लेशो नान्ययाञ्चा न चाटनम् ।
न चिन्ता न व्ययस्तस्मान्निर्ममत्वं विचिंतयेत् ॥१७॥

अर्थ- इस निर्ममत्व के लिये न किसी प्रकार का क्लेश भोगन पड़ता है। न किसी से कुछ मांगना और न इधर उधर भ्रमण करना पड़ता है। किसी प्रकार की चिंता और द्रव्य का व्यय भी नहीं करना पड़ता। इसलिये निर्ममत्व ही ध्यान करने के योग्य है ।

१७. ॐ ह्रीं याचनचाटनादिरहितनिरपेक्षस्वरूपाय नमः ।

चैतन्यश्रीस्वरूपोऽहम् ।

वीरछंद

निर्ममत्व के लिए भोगना क्लेश नहीं पड़ता है रंच ।
नहीं यातना नहीं चाटुता करना पड़ती नहीं प्रपंच ॥
तनिक न चिन्ता नहीं द्रव्य व्यय नहीं परिश्रम का है श्रम।
अतः ध्यान निर्ममत्व करना है सर्वोत्तम पावन श्रम ॥
जो चिद्रूप शुद्ध की महिमा जान उसे ही ध्याता है ।
पर ममत्व को क्षय करता है महा मोक्ष पद पाता है ॥१७॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

नास्रवो निर्ममत्वेन न बधोऽशुभकर्मणाम् ।
नासंयमो भवेत्तस्मान्निर्ममत्वं विचिंयतेत् ॥१८॥

अर्थ- इस निर्ममत्व की ओर झुकने से अशुभ कर्म का आस्रव और बंध नहीं होता। संयम

प्रखर शक्ति जब इस आत्मा की क्षय करती आठों ही कर्म।
वस्तु स्वभाव धर्म को पाकर हो जाती पूरी निष्कर्म ॥

में भी किसी प्रकार की हानि नहीं आती। वह भी पूर्ण रूप से पलता है; इसलिये यह निर्ममत्व ही चिंतवन करने के योग्य पदार्थ है ।

१८. ॐ ह्रीं अशुभकर्मास्रवादिरहितचिद्रूपाय नमः ।

निरास्रवोऽहम् ।

ताटंक

निर्ममत्व भावों से अशुभास्रव का बंध नहीं होता ।
संयम में भी हानि न होती राग द्वेष भी क्षय होता ॥
निर्ममत्व ही चिन्तन करने योग्य पदार्थ जगत में है ।
इसको पाकर कहीं न कोई लघु श्रम भी इस जग में है॥
जो चिद्रूप शुद्ध की महिमा जान उसे ही ध्याता है ।
पर ममत्व को क्षय करता है महा मोक्ष पद पाता है ॥१८॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

सद्दृष्टिर्ज्ञानवान् प्राणी निर्ममत्वेन संयमी ।
तपस्वी च भवेत्तस्मान्निर्ममत्वं विचिंतयेत् ॥१९॥

अर्थ- इस निर्ममत्व की कृपा से जीव सम्यग्दृष्टि ज्ञानवान संयमी और तपस्वी कहलाता हैं; इसलिये जीवों को निर्ममत्व का ही चिंतवन कार्यकारी है ।

१९. ॐ ह्रीं संयमतपादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शान्तोऽहम् ।

निर्ममत्व की कृपा प्राप्त कर सम्यक् दृष्टि जीव होता ।
ज्ञान ध्यान संयमी तपस्वी ज्ञानी ध्यानी मुनि होता ॥
इसीलिए जीवों को चिन्तन निर्ममत्व का सुखकारी ।
यही श्रेष्ठ कार्यकारी है सर्वोत्तम निज हितकारी ॥
जो चिद्रूप शुद्ध की महिमा जान उसे ही ध्याता है ।
पर ममत्व को क्षय करता है महा मोक्ष पद पाता है ॥ १९॥

मोह राग द्वेषादि जीतने का जो करता नित्य उपाय ।
पंचम गुणस्थान पाने को सीख रहा है मोक्षोपाय ॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

रागद्वेषादयो दोषा नश्यंति निर्ममत्वतः ।
साम्यार्थी सततं तस्मान्निर्ममतत्वं विचिंतयेत् ॥२०॥

अर्थ- इस निर्ममत्व के भले प्रकार पालन करने से राग द्वेष आदि समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं, इसीलिये जो मनुष्य समता के अभिलाषी है. अपनी आत्मा को संसार के दुंखों से मुक्त करना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि वे अपने मन को सब और से हटाकर शुद्धचिद्रूप की और लगावें। उसी का भले प्रकार मनन ध्यान और स्मरण करें।

२०. ॐ ह्रीं रागद्वेषादिदोषरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

विरागोऽहम् ।

निर्ममत्व के पालन करने से सब दोष नष्ट होते ।
जो समता के अभिलाषी हैं इसको पा सुखिया होते ॥
भव दुख से जो बचना चाहें वे इसका ही ध्यान करें ।
सभी ओर से दृष्टि हटाकर मनन स्मरण ज्ञान करें ॥
जो चिद्रूप शुद्ध की महिमा जान उसे ही ध्याता है ।
पर ममत्व को क्षय करता है महा मोक्ष पद पाता है ॥२०॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२१)

विचार्येत्थमहंकारममकारौ विमुंचति ।
यो मुनिः शुद्धचिद्रूपध्यानं स लभते त्वरा ॥२१॥

अर्थ- इस प्रकार जो मुनि अहंकार और ममकार को अपने वास्तविक स्वरूप शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति के नाश करने वाले समझ उनका सर्वथा त्याग कर देता है। अपने मन को रंचमात्र भी उनकी और जाने नहीं देता, उसे शीघ्रही संसार में शुद्धचिद्रूप के ध्यान की प्राप्ति हो जाती है ।

२१. ॐ ह्रीं अहंकारममकाररहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अनुत्सेकोऽहम् ।

यह एकान्त विनय संशय विपरीत मान्यता जीत चुका ।
यह अज्ञान भाव से भी अब पूरा पूरा रीत चुका ॥

अहंकार ममकार शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति में है बाधक ।
इस प्रकार मुनि अहंकार ममकार नाश बनते साधक ॥
मन को रंच मात्र भी इत उत कभी न जो जाने देता ।
उसे शीघ्र चिद्रूप शुद्ध की होती प्राप्ति सौख्य लेता ॥
जो चिद्रूप शुद्ध की महिमा जान उसे ही ध्याता है ।
पर ममत्व को क्षय करता है महा मोक्ष पद पाता है ॥२१॥

ॐ ह्रीं भट्टारकज्ञानभूषणविरचित तत्त्वज्ञानं तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपध्याना अहंकारममकार त्यागप्रतिपादकदशमाध्याये निरभिलाषचैतन्यस्वरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्य

छंद सरसी

हे अरहंत जिनेश्वर तुमको जो भी ध्याता है ।
स्वपर भेद विज्ञान प्राप्त कर शिव पथ पाता है ॥
रत्नत्रय को धारण कर जो निज को ध्याता है ।
केवलज्ञान प्रगट करता तुम सम बन जाता है ॥
अरहंतों की महिमा को जो उर में लाता है ।
सकल द्रव्य गुण पर्यायों को हृदय सजाता है ॥
हो अयोग केवली सिद्ध पद को प्रगटाता है ।
भव सागर से पार उतरता शिव सुख पाता है ॥
परम शुद्ध चिद्रूप गीत जो मन से गाता है ।
सादि अनंतानंत काल तक निज सुख पाता है ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पित करूं पाऊं दर्शन ज्ञान ।
परम शुद्ध चिद्रूप की महिमा महा महान ॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्य नि. ।

जड़ चेतन जितने पदार्थ हैं मेरा उनसे क्या संबंध ।
मैं तो मोक्ष स्वरूपी चेतन मेरे भीतर एक न बंध ॥

जयमाला

ताटंक

प्राप्त करूं अरहंत अवस्था जिन सर्वज्ञ दशा पाऊं ।
शुद्ध अनंत चतुष्टय रूपी अविनाशी संपति पाऊं ॥
निरावरण साक्षात् मोक्ष का कारण आत्म स्वसंवेदन ।
अनुभव रस निर्मित चरु पाकर क्षय कर दूं भव के बंधन॥
गुण अनंत के नक्षत्रों का कभी न हो फिर उल्कापात ।
आत्म प्रदेशों ने अनंत गुण रक्खे हैं अपने में सात ॥
इस अलंध्य भव सागर को भी जीत लिया है मैंने आज।
निज में निज के द्वारा निजने निज कासफल किया है काज॥
आत्मोत्पन्न सौख्य का सागर स्वसंवेद्य परमात्म स्वरूप ।
दुलर्भता से प्राप्त हुआ है आज मुझे सहजात्म स्वरूप ॥
यह प्रधान अध्यात्म भावना दुर्लभता से आती है ।
जब निजात्मा की निज महिमा यह निजात्मा ही गाती है॥
मैं अध्यात्म शिरोमणि मुनिवर कुन्द कुन्द का अनुयायी।
अमृत पायी आज हुआ हूं कल तक तो था विषपायी ॥
यह प्रक्रिया आत्म चिन्तन की प्रतिपल प्रतिक्षण है सक्रिय ।
मैं अपने में जागरूक हूं पर में हूं सदैव निष्क्रिय ॥
अब तो भाव मरण होने का अवसर पास नहीं आता ।
अचलित हूं अपने स्वभाव में कोई त्रास नहीं पाता ॥

ॐ ह्रीं दशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

परम शुद्ध चिद्रूप ही शिव सुख वर्षा स्रोत ।
महाअर्घ्य अर्पण करूं होऊं ओतः प्रोत ॥

इत्याशीर्वाद :

भाव अभाव रूप हूं मैं तो शुद्ध भाव का स्वामी हूं ।
पद अनर्घ्य का अधिपति हूं मैं तीन लोक में नामी हूं ॥

ॐ

पूजन क्रमांक १२

तत्त्वज्ञान तंरगिणी एकादशम अध्याय पूजन

स्थापना

गीतिका

तत्त्वज्ञान तरंगिणी एकादशम अध्याय सुन ।
शुद्ध निज चिद्रूप के ही गुण अनंतानंत गुन ॥
शुद्ध निज चिद्रूप में लवलीन विरले जीव हैं ।
आत्म गुण अनुरक्त प्राणी बहुत अल्प सदीव हैं ॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थानं ।

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद विजया

जनम दुख जरा दुख मरण दुख विनाशूं ।
यही भावना मेरे उर में जगी है ॥
परम शान्त जल मैने पाया स्वभावी ।
तो परिणति विभावी स्वयं ही भगी है ॥
मिला शुद्ध चिद्रूप का भव्य वैभव ।
तो फिर बोलो दुनिया में कैसे रहूँगा ॥

सलिल ज्ञान गंगा की धारा सर्वेश्वर पद देती है ।
जन्म जरा मरणादि रोगत्रय पल भर में हर लेती है ॥

निजानंद घन मैंने पाया है स्वामी ।
तो फिर बोलो भव धार कैसे बहूँगा ॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

भवातप विनाशक स्वचंदन मिला है ।
परम शान्त शीतल स्वभावी निराला ॥
कहीं कोई भव ज्वर की बाकी न पीड़ा
रही है मेरा आत्मा है निराला ॥
मिला शुद्ध चिद्रूप का भव्य वैभव ।
तो फिर बोलो दुनिया में कैसे रहूँगा ॥
निजानंद घन मैंने पाया है स्वामी ।
तो फिर बोलो भव धार कैसे बहूँगा ॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

भवोदधि मैं बह करके मैंने अनेकों ।
सुमेरु से ऊँचे महा दुख उठाए ॥
रहा भव की पीड़ा से मैं नाथ व्याकुल ।
कभी आत्मा के न दर्शन सुहाए ॥
मिला शुद्ध चिद्रूप का भव्य वैभव ।
तो फिर बोलो दुनिया में कैसे रहूँगा ॥
निजानंद घन मैंने पाया है स्वामी ।
तो फिर बोलो भव धार कैसे बहूँगा ॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

बाहय पदार्थों के समूह में जो भी प्राणी होता है ।
अक्षय पद को प्राप्त न करता दुखिया प्राणी होता है ॥

महाकाम कंदर्प ने मुझको काटा ।
किए घाव तन पर अनंतों सदा ही ।
नहीं काम नाशक मिली है महौषधि ।
मिली भी तो मैंने त्वरित ही गँवाई ॥
मिला शुद्ध चिद्रूप का भव्य वैभव ।
तो फिर बोलो दुनिया में कैसे रहूँगा ॥
निजानंद घन मैंने पाया है स्वामी ।
तो फिर बोलो भव धार कैसे बहूँगा ॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

क्षुधा व्याधि ने मुझको दुर्बल किया है ।
सभी शक्तियां छीन ली हैं निमिष में ॥
स्वपद छोड़ भाया अपद ही मुझे प्रभु ।
मगन मैं रहा हूँ चतुर्गति के विष में ॥
मिला शुद्ध चिद्रूप का भव्य वैभव ।
तो फिर बोलो दुनिया में कैसे रहूँगा ॥
निजानंद घन मैंने पाया है स्वामी ।
तो फिर बोलो भव धार कैसे बहूँगा ॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

महामोह ने मुझको अंधा बनाया ।
पता ही न चलता कभी मेरे घर का ॥
बना संशयी घोर एकान्त वादी ।
कुनय ज्ञान विपरीत है मुझको पर का ॥

अधुनातन जीवन जीने को आत्म ध्यान का लो आश्रय।
विविध विकल्प नष्ट करने को जल्पादिक सब कर दो क्षय ॥

मिला शुद्ध चिद्रूप का भव्य वैभव ।
तो फिर बोलो दुनिया में कैसे रहूँगा ॥
निजानंद घन मैंने पाया है स्वामी ।
तो फिर बोलो भव धार कैसे बहूँगा ॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

कभी धूप देखी नहीं धर्म की प्रभु ।
बिना ध्यान के ज्ञान कैसे मैं पाता ॥
प्रभो अष्टकर्मो के इन हाथियों पर ।
बताओ कहाँ से विजय कैसे पाता ॥
मिला शुद्ध चिद्रूप का भव्य वैभव ।
तो फिर बोलो दुनिया में कैसे रहूँगा ॥
निजानंद घन मैंने पाया है स्वामी ।
तो फिर बोलो भव धार कैसे बहूँगा ॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि ।

जगी मोक्ष पाने की इच्छा सदा ही ।
मगर भाव खोटे मैं करता रहा हूँ ॥
महामोक्षफल तो बहुत दूर है प्रभु ।
भवोदधि में ही नाथ बहता रहा हूँ ॥
मिला शुद्ध चिद्रूप का भव्य वैभव ।
तो फिर बोलो दुनिया में कैसे रहूँगा ॥
निजानंद घन मैंने पाया है स्वामी ।
तो फिर बोलो भव धार कैसे बहूँगा ॥

अविकल्पी स्वरूप आत्मा नहीं विकल्पों का है काम।
सब संकल्प विकल्पों विरहित है इस चेतन का ध्रुवधाम॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

नहीं अर्घ्य लाया मैं निज ज्ञान वाले ।
तो निज ध्यान कैसे मैं करता बताओ ॥
स्वपद कैसे पाता विभावों के आगे ।
स्वभावों का अब मार्ग हे प्रभु दिखाओ ॥
मिला शुद्ध चिद्रूप का भव्य वैभव ।
तो फिर बोलो दुनिया में कैसे रहूँगा ॥
निजानंद घन मैंने पाया है स्वामी ।
तो फिर बोलो भव धार कैसे बहूँगा ॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

अर्घ्यावलि

एकादशम अधिकार

(१)

शांताः पांडित्ययुक्ता यमनियमबलत्यागरैवृत्तवन्तः,
सद्गीशीला स्तपोर्चानुतिनतिकरणा मौनिनः संत्यसंख्याः ।
श्रोतारश्च कृतज्ञा व्यसनखजयिनोऽत्रोपसर्गेऽपिधीराः ।
निःसंगाः शिल्पिनः कश्चन भुवि विरलः शुद्धचिद्रूपरक्तः ॥१॥

अर्थ- यद्यपि संसार में शांतचित्त, विद्वान, यमवान, नियमवान, बलवान, धनवान, चारित्रवान, गोदान, तप, पूजा, स्तुति और नमस्कार करने वाले मौनी श्रोता, कृतज्ञ व्यसन और इंद्रियों के जीतनेवाले उपसर्गो के सहने में धीरवीर परिग्रहों से रहित और नाना प्रकार की कलाओं के जानकार असंख्य मनुष्य हैं। तथापि शुद्धचिद्रूप के स्वरूप में अनुरक्त कोई एक विरला ही है ।

अन्तर्मन में धुक धुक है तो आत्म ध्यान होगा कैसे ।
संशय युत अज्ञान पास तो आत्म ज्ञान होगा कैसे ॥

१. ॐ ह्रीं नुतिनत्यादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

परमानन्दनिलयस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

यदपि विश्व में शान्त चित्त विद्वान यम नियम धारि बहुत।
बलशाली धनवान चरित्री उत्तम वक्ता पुरुष बहुत ॥
शीलवान तपवान विवेकी चतुर गुणी भी जीव बहुत ।
मौनी श्रोता इन्द्रिय विजयी व्यसन मुक्त भी मनुज बहुत॥
उपसर्गो में धीर वीर अपरिग्रहधारी कला प्रधान ।
नाना भांति मनुष्य असंख्यों मिलते हैं कर लो पहचान ॥
किन्तु शुद्ध चिद्रूप ध्यान अनुरक्त विरल कोई होता ।
उस विरले मनुष्य को वन्दन जो चिद्रूप लीन होता ॥१॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२)

ये चैत्यालयचैत्यदानमहसद्यात्राकृतौ कौशला-
नानाशस्त्रविदः परीषहसहा रक्ताः परोपकृतौ ।
निःसंगाश्च तपस्विनोपि वहवस्ते संति ते दुर्लभा-
रागद्वेषविमोहवर्जनपराश्चित्तत्वलीनाश्च ये ॥२॥

अर्थ- संसार में अनेक मनुष्य जिन मन्दिरों का निर्माण प्रतिमाओं का दान उत्सव और तीर्थों की यात्राएं करने में प्रवीण हैं। नाना शास्त्र के जानकार परीषहों के सहन करनेवाले, परोपकार में रत, समस्त प्रकार के परिग्रहों से रहित और तपस्वी भी हैं। परन्तु राग द्वेष और मोह के सर्वथा नाश करने वाले एवं शुद्धचिद्रूप रूपी तत्त्व में लीन बहुत ही थोड़े हैं ।

२. ॐ ह्रीं चैत्यालयचैतत्यदानादिवकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अकृत्रिमचिद्रूपोऽहं ।

मुक्ति लक्ष्मी के निवास को पाने का ही यत्न करो ।
सर्व पाप भावों को क्षय करने का पूर्ण प्रयत्न करो ॥

गीतिका

निर्माण जिनमंदिर कराते बहु मनुज संसार में ।
प्रतिष्ठा उत्सव मनाते बहु मनुज संसार में ॥
तीर्थ यात्रा सुरुचि उर में हैं परिग्रह से रहित ।
उपसर्ग परिषह सहन करते परोपकार महान रत ॥
तपस्वी हैं शास्त्र के जानकार विज्ञ विचार वान ।
वे मनुज भी हैं अनेकों स्वयं बनते ज्ञानवान ॥
किन्तु राग अरु द्वेष मोह अभाव कर्त्ता बहुत कम ।
शुद्ध निज चिद्रूप ध्याता बहुत थोड़े अल्पतम ॥
अतः निज चिद्रूप ध्याता एक विरला जानिये ।
वही सर्वोत्तम सुखों का हितेच्छुक है मानिये ॥२॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

गणकचिकित्सकतार्किकपौराणिकवास्तुशब्दशास्त्रज्ञाः ।
संगीतादिषु निपुणाः सुलभा नहि तत्त्ववेत्तारः ॥३॥

अर्थ- ज्योतिषी वैद्य नौयायिक पुराण के वेत्ता, गृहनिर्माण विद्यापारगामी, व्याकरण शास्त्र के जानकार और संगीत आदि कलाओं में भी प्रवीण बहुत से मनुष्य हैं। परन्तु तत्त्वों के जानकार नहीं है ।

३. ॐ ह्रीं गणकचिकित्सकतार्किकादिपदरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरुपाधिस्वरूपोऽहं ।

ज्योतिषी जन वैद्य तार्किक पुराणों के जानकार ।
व्याकरण अरु शास्त्र ज्ञानी बहुत हैं संगीतकार ॥
किन्तु ज्ञानी तत्त्व के मिलते नहीं है कभी भीं ।
अगर हों दो चार तो वे दृष्ट होते नहीं भी ॥

करो आत्मा का आराधन अगर शान्ति सुख पाना है ।
पर का आराधन यदि है तो निश्चित भव दुख पाना है॥

अतः निज चिद्रूप ध्याता एक विरला जानिये ।
वही सर्वोत्तम सुखों का हितेच्छुक है मानिये ॥३॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

सुरुषबललावण्यधनापत्यगुणान्विताः ।
गांभीर्यधैर्यधौरेयाः सन्त्यसंख्यो न चिद्रताः ॥४॥

अर्थ- उत्तम रूप, बल, लावण्य, संतान और गुणों से भूषित भी बहुत से मनुष्य हैं। गंभीर धीर और वीर भी अशसख्य हैं। परन्तु शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति में लीन बहुत ही कम मनुष्य हैं ।

४. ॐ ह्रीं बललावण्यादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानलावण्यरूपोऽहं ।

रूप बल लावण्य धन संतान गुण भूषित बहुत ।
लीन निज चिद्रूप में ऐसे मनुज ह अल्प मित ॥
अतः निज चिद्रूप ध्याता एक विरला जानिये ।
वही सर्वोत्तम सुखों का हितेच्छुक है मानिये ॥४॥

ॐ ह्रीं एकादशम आधेकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(५)

जलद्यूतवनस्त्रीवियुद्धगोलकगीतिषु ।
क्रीडन्तोऽत्र विलोक्यन्ते घनाः कोऽपि चिदात्मनि ॥५॥

अर्थ- अनेक मुष्य जलक्रीड़ा जूआ वनविहार स्त्रियों के विलास पक्षियों के युद्ध, गोलीमार, क्रीड़ा और गायन आदि में भी दत्तचित्त दिखाई देते हैं। परन्तु चिदात्मा में विहार करनेवाला कोई विरला ही दीखता है ।

५. ॐ ह्रीं जलद्यूतवनादिक्रीड़ारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानजलक्रीडास्वरूपोऽहं ।

भव दुख क्षय करना है तो फिरआस्रव भाव करो न कभी।
संवर भावों को हृदयंगत करके आगे बढ़ो अभी ॥

बहु मनुज उपवन बिहारी द्यूत जल कीड़ा सुरत ।
युद्ध गोलीमार क्रीड़ा दत्त चित भ्रमणादि युत ॥
पर चिदात्मा के बिहारी नहीं मिलते हैं कहीं ।
अगर विरला मिले भी तो बात करते ही नहीं ॥
अतः निज चिद्रूप ध्याता एक विरला जानिये ।
वही सर्वोत्तम सुखों क हितेच्छुक है मानिये ॥५॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

सिंहसर्पगजव्याधाहितादीनां वशीकृतौ ।
रताः सन्त्यत्र वहवो न ध्याने स्वचिदात्मनः ।६॥

अर्थ- इस संसार में बहुत से मनुष्य सिंह सर्प हाथी व्याघ्र और अहितकारी शत्रु आदि के भी वश करने वाले हैं। परन्तु शुद्ध चिद्रूप के ध्यान करने वाले नहीं है ।

६. ॐ ह्रीं सिंहसर्पगजव्याधादिवशीकरणरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजशाश्वतज्ञानवशोऽहं ।

ताटंक

सिंह सर्प गज व्याघ्र अहितकर शत्रु सभी वश कर लेते हैं ।
किन्तु शुद्ध चिद्रूप ध्यान कर्त्ता न कहीं भी मिलते है ॥
अतः तत्त्व ज्ञानी विरले हैं जो करते अपना कल्याण ।
एक मात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लते निज पद निर्वाण ॥६॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

जलाग्निरोगराजाहिचौरशत्रुनभस्वताम् ।
दृश्यंते स्तंभने शक्तनाघस्य स्वात्मचिन्तया ॥७॥

अर्थ- जल, अग्नि, रोग, राजा, सर्प, चोर, बैरी और पवन के स्तंभन करने में उनकी शक्ति को दवा देने में भी बहुत से मनुष्य समर्थ है। परन्तु आत्म ध्यान द्वार पाप को

आत्म भावना भाओगे तो आत्मीक सुख होगा प्राप्त ।
आत्मीक आनंद मिलेगा हो जाओगे तुम भी आप्त ॥

नष्ट करने में सर्वथा असमर्थ है ।

७. ॐ ह्रीं जलाग्निरोगादिस्तंभनक्रियारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानचमत्कारस्वरूपोऽहं ।

अग्नि रोग नृप सर्प चोर बैरी जल पवन जीत लेते ।
प्रबल शक्ति धर भी निजात्मा में लवलीन नहीं होते ॥
अतः तत्त्व ज्ञानी विरले हैं जो करते अपना कल्याण ।
एक मात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥७॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

प्रतिक्षणं प्रकुर्वन्ति चिन्तनं परवस्तुनः ।
सर्वे व्यामोहिता जीवाः कदा कोऽपि चिदात्मनः ॥८॥

अर्थ- इस संसार में रहनेवाले जीव प्रायः मोह के जाल में जकड़े हुए हैं। उन्हें अपनी सुध बुध का कुछ भी होश हबास नहीं है; इसलिये प्रतिक्षण वे पर पदार्थो का ही चिन्तवन करते रहते हैं। उन्हें ही अपनाते हैं। परन्तु शुद्धचिदात्मा का कोई विरला ही चिंतवन करता है ।

८. ॐ ह्रीं परवस्तुचिन्तनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजसुधास्वरूपोऽहं ।

ताटंक

जग के प्राणी मोह जाल में जकड़े सुध बुध उन्हें नहीं ।
पर पदार्थ ही चिन्तन करते निज चिन्ता की सुरुचि नहीं॥
कोई विरला ही निजात्मा का करता है सम्यक् ध्यान ।
चिदानंद चिद्रूप शुद्ध का उसको ही होता है भान ॥
अतः तत्त्व ज्ञानी विरले हैं जो करते अपना कल्याण ।
एक मात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥८॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

जब तक कर्मो की छाया है तब तक सुख होता न कभी।
कर्म नष्ट हो जाएंगें तो फिर भव दुख होगा न कभी ॥

(९)

दृश्यन्ते बहवो लोके नानागुणविभूषिताः ।
विरलाः शुद्धचिद्रूपे स्नेहयुक्ता व्रतान्विताः ॥९॥

अर्थ- बहुत से मनुष्य संसार में नाना प्रकार के गुणों से भूषित रहते हैं। परन्तु ऐसे मनुष्य विरले ही हैं जो शुद्ध चिद्रूप में स्नेह करने वाले और व्रतों से भूषित हों ।

९. ॐ ह्रीं लौकिकनानागुणभूषणरहितचिद्रूपाय नमः ।

बोधभूषणोऽहं ।

इस जग में आज्ञा गुण भूषित मनुज बहुत मिल जाते हैं।
किन्तु शुद्ध चिद्रूप प्रेम रत नहीं दृष्टि में आते है ॥
अतः तत्व ज्ञानी विरले हैं जो करते अपना कल्याण ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥९॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

एकेन्द्रियादिसंज्ञाक्याः पूर्णपर्यन्तदेहिनः ।
अनंतानंतमा संति तेषु कोऽपि न तादृशः ॥१०॥

अर्थ- एकेन्द्रिय से लेकर पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त जो जीव इस संसार में अनन्तानन्त भरे हुए हैं, उनमें तो शुद्धचिद्रूप के ध्यान करने की सामर्थ्य ही नहीं है ।

१०. ॐ ह्रीं अनन्तानन्तैकेन्द्रियादिपर्यायविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अतीन्द्रियबोधस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक जीव असंज्ञी बहुत प्रकार ।
किन्तु सभी असमर्थ आत्म चिन्तन में ऐसा यह संसार ॥
अतः तत्व ज्ञानी विरले हैं जो करते अपना कल्याण ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥१०॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

तीर्थयात्रा करना है तो आत्म तीर्थ की ओर चलो ।
ज्ञान भावना भाते भाते पाप पुण्य परभाव दलो ॥

(११)

पंचाक्षसंज्ञिपूर्णेषु केचिदासन्नभव्यताम् ।
नुत्वं चालभ्य तादृक्षा भवन्त्यार्याः सुबुद्धयः ॥११॥

अर्थ- परन्तु जो जीव पंचेन्द्रिय संज्ञी (मन सहित) पर्याप्त हैं, उनमें भी जो आर्य स्वपर स्वरूप के भले प्रकार जानकार हैं; और आसन्न भव्य बहुत शीध्रघमोक्ष प्राप्त करने वाले हैं। वे ही शुद्धचिद्रूप का ध्यान कर सकते हैं ।

११. ॐ ह्रीं पञ्चाक्षसंज्ञिपूर्णादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अक्षातीतोऽहं ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय समर्थ है आत्म ज्ञान में भली प्रकार ।
पर आसन्न भव्य ही करता परम शुद्ध चिद्रूप विचार ॥
अतः तत्व ज्ञानी विरले हैं जो करते अपना कल्याण ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥११॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

शुद्धचिद्रूपसंलीनाः सव्रता न कदाचन ।
नरलोकवहिर्भागेऽसंख्यातद्वीपवार्धिषु ॥१२॥

अर्थ- ढाई द्वीप तक मनुष्य क्षेत्र है। और उसके आगे असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। उनमें रहने वाले भी जीव कभी शुद्धचिद्रूप में लीन और व्रतों से भूषित नहीं हो सकते ।

१२. ॐ ह्रीं असंख्यातद्वीपसमुद्रगतजीवविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

स्वात्मनिलयस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

ढाई द्वीप तक मनुज लोक है आगे द्वीप समुद्र असंख्य।
उनमें रहने वाले प्राणी शुद्ध ज्ञान में सदा अशक्य ॥
अतः तत्व ज्ञानी विरले हैं जो करते अपना कल्याण ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥१२॥

जो जीवंत शक्ति से संयुत हो शिवपथ पर चलता है ।
वही आत्मा को ध्यातेध्याते कर्मो को दलता है ॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

अधोलोके न सर्वस्मिन्नूर्ध्वलोकेऽपि सर्वतः ।
ते भवन्ति न ज्योतिष्के हा हा क्षेत्रस्वभावतः ॥१३॥

अर्थ- समस्त अधोलेक ऊर्ध्वलोकर और ज्योतिलोक में भी क्षेत्र के स्वभाव से जीव व्रतों के आचरण सहित शुद्धचिद्रूप का ध्यान नहीं कर सकते यह बड़ा कष्ट हैं ।

१३. ॐ ह्रीं क्षेत्रस्वभावगतव्रतायुक्तजीवविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अनुपमज्ञानस्वरूपोऽहं ।

ऊर्ध्व अधो ज्योतिषी लोक तो व्रत धारण के सदा अयोग्य।
क्षेत्र स्वभाव अनादि काल से ऐसा ही है सदा संयोग ॥
अतः तत्व ज्ञानी विरले हैं जो करते अपना कल्याण ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥१३॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

नरलोके पि ये जाता नराः कर्मवशाद् घनाः ।
भोगभूम्लेच्छखण्डेषु ते भवन्ति न तादृशाः ॥१४॥

अर्थ- मनुष्य क्षेत्र में भी जो जीव भोगभूमि और म्लेच्छ खण्ड में उत्पन्न हुए हैं। उन्हें भी सधन रूप से कर्मो द्वार जकड़े हुए होने के कारण शुद्ध चिद्रूप का ध्यान ओर व्रतों का आचरण करने का अवसर प्राप्त नहीं होता ।

१४. ॐ ह्रीं भोगभूम्लेच्छखण्डगतजीवविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्लेपस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

मनुज क्षेत्र में भोग भूमि अरु म्लेक्ष खंड भी ना इस योग्य।
जीव कर्म बंधन से जकड़े आत्म ध्यान के सदा अयोग्य॥

शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञानामृत रस धारा का स्वामी है शुद्ध ।
निर्विकल्पहै जल्प विजल्प रहित है ये त्रैलोक्य प्रसिद्ध॥

अतः तत्व ज्ञानी विरले है जो करते अपना कल्याण ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥१४॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

आर्यखण्डभवाः केचिद् विरलाः संति तादृशाः ।
अस्मिन् क्षेत्रे भवां द्वित्रा स्युरद्य न कदापि वा ॥१५॥

अर्थ- परन्तु जो जीव आर्यखण्ड में उत्पन्न हुए हैं, उनमें से भी विरले ही शुद्धचिद्रूप के ध्यानी और व्रतों के पालक होते हैं। तथा इस भरत क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले तो इस समय दो तीन ही हैं। अथवा है ही नहीं ।

१५. ॐ ह्रीं आर्यखण्डोत्पन्नजीवविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजानन्दनिलयस्वरूपोऽहं ।

ताटंक

आर्य खंड में जो उपजें है उनमें भी ज्ञानी विरले ।
ध्यान शुद्ध चिद्रूप लीन व्रत पालक होते है विरले ॥
अतः तत्व ज्ञानी विरले हैं जो करते अपना कल्याण ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥१५॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

अस्मिन् क्षेत्रेऽधुना संति विरला जैनपाक्षिकाः ।
सम्यक्त्वसहितास्तत्र तत्राणुव्रतधारिणः ॥१६॥

अर्थ- इस क्षेत्र में प्रथम तो इस समय. सम्यग्दृष्टि पाक्षिक जैनी विरले ही हैं। यदि वे भी मिल जांय तो अणुव्रतधारी मिलने कठिन हैं।

१६. ॐ ह्रीं जैनपाक्षिकादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजानन्तगुणकुलस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूपीमहिमामय हैं श्री अरहंत ।
केवल ज्ञान सूर्य के स्वामी त्रिभुवन वंदित श्री भगवंत ॥

भरत क्षेत्र में उत्पन्नित मनुजों में होते दोषालीन ।
अथवा समझो नहीं कहीं होते हैं ये निज ध्यानालीन ॥
अतः तत्व ज्ञानी विरले हैं जो करते अपना कल्याण ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥१६॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

महाव्रतधराः धीराः सति चात्यंतदुर्लभाः ।
तत्वातत्वविदस्तेषु चिद्रक्तोऽत्यंतदुर्लभः ॥१७॥

अर्थ- अणुव्रतधारी भी हों तो धीर वीर महाव्रतधारी दुर्लभ हैं। यदि वे भी हों तो तब अतत्वों के जानकार बहुत कम हैं। यदि वे भी प्राप्त हो जायं तो शुद्धचिद्रूप में रत मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ है ।

१७. ॐ ह्रीं दुर्लभमहाव्रतादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

सदाशिवस्वरूपोऽहं ।

अणुव्रत धारी हों भी तो मुनि महाव्रती अति दुर्लभ हैं ।
मुनि भी हों तो तत्त्व रसिक युत बहु श्रुत ज्ञानी दुर्लभ हैं॥
अतः तत्व ज्ञानी विरले हैं जो करते अपना कल्याण ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥१७॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

तपस्विपात्रविद्वत्सु गुणिसद्गतिगामिषु ।
वंद्यस्तुत्येषु विज्ञेयःस एवोत्कृष्टतां गतः ॥१८॥

अर्थ- जो महानुभाव शुद्धचिद्रूप के ध्यान में अनुरक्त हैं. वे ही तपस्वी उत्तम पात्र विद्वान गुणी समीचीन मार्ग के अनुगामी और उत्तम बंदनीय स्तुत्य मनुष्यों में उत्कृष्ट हैं।

१८. ॐ ह्रीं सद्गतिगाम्यादिजनविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अभेदचिद्रूपोऽहं ।

पंचाचारी गुण छत्तीस सहित होते आचार्य महान ।
संघव्यवस्था के अधिपति हैं आत्म ध्यान में रत श्रीमान॥

वीरछंद

जो चिद्रूप ध्यान में हैं अनुरक्त तपस्वी उत्तम मात्र ।
सभीचीन पथ के अनुगामी भी गुणी तथा स्तुत्य सुपात्र॥
अतः तत्व ज्ञानी विरलें है जो करते अपना कल्याण ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥१८॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

उत्सर्पणापसर्पणकालेऽत्राद्यन्तवर्जिते स्तोकाः ।
चिद्रक्ता व्रतयुक्ता भवन्ति केचित्कदाचिच्च ॥१९॥

अर्थ- इस अनादि अनंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में शुद्धचिद्रूप के ध्यानी और व्रतों के धारक बहुत ही कम मनुष्य होते हैं। और वे भी कभी किसी समय प्रतिसमय नहीं ।

१९. ॐ ह्रीं उत्सर्पिण्यवसर्पणविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शाश्वतोऽहं ।

उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी काल प्रवाह अनंत अपार ।
व्रतधारी चिद्रूप शुद्ध के ध्यानी विरले करो विचार ॥
अतः तत्व ज्ञानी विरले हैं जो करते अपना कल्याण ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥१९॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

मिथ्यात्वादिगुणस्थानचतुष्के संभवन्ति न ।
शुद्धचिद्रूप के रक्ता व्रतिनोपि कदाचन ॥२०॥

अर्थ- मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर अविरत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान पर्यन्त जीव कभी शुद्ध चिद्रूप के ध्यानी और व्रती नहीं हो सकते ।

ग्यारह अंगपूर्व चौदह के पाठी उपाध्याय भगवान ।
सबको जिनवाणी का सार सिखाते रहते हैं श्रीमान ॥

२०. ॐ ह्रीं मिथ्यात्वादिगुणस्थानरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निष्कलङ्कोऽहं ।

ताटंक

पहिले मिथ्या गुणस्थान से चौथे गुणस्थान तक जो ।
होते हैं चिद्रूप शुद्ध के ध्यानी प्राणी भी ना वो ॥
अतः तत्व ज्ञानी विरले हैं जो करते अपना कल्याण ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥२०॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२१)

पंचमादिगुणस्थानदशके तादृशोऽगिनः ।
स्युरिति ज्ञानिना ज्ञेयं स्तोकजीवसमाश्रते ॥२१॥

अर्थ- किंतु देशविरत पंचम गुणस्थान से लेकर अयोग केवली नामक चौदहवें गुण स्थान पर्यन्त के जीव ही शुद्ध चिद्रूप के ध्यानी व्रती होते हैं। इसलिये शुद्धचिद्रूप का ध्यान और व्रतों का पालन बहुत थोड़े जीवों में है ।

२१. ॐ ह्रीं गुणस्थानसंख्याविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

नित्यानंन्दमंदिरस्वरूपोऽहं ।

वीरछंद

पंचम से ले चौदह गुणं स्थान तक होते थोड़े जीव ।
व्रती शुद्ध चिद्रूप ध्यान रत होते अल्प मनुष्य सदीव ॥
अतः शुद्ध चिद्रूप ध्यान थोड़े जीवों को होता है ।
व्रत धारी चिद्रूप ध्यान कर सर्व कर्म रज होता है ॥
अतः तत्व ज्ञानी विरले हैं जो करते अपना कल्याण ।
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध ध्या पा लेते निज पद निर्वाण ॥२१॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

पंचमहाव्रत पंचसमिति त्रयगुप्ति त्रयोदश विध चारित्र ।
है निर्ग्रंथ साधु मुनि रत्नत्रय धारी अतिपरम पवित्र ॥

(२२)

दृश्यन्तेऽ गेधनादावनुजसुतसुताभीरुपित्रंविकासु,
ग्रामे गेहे खमोगे नगनगरखगे वाहने राजकार्ये ।
आहार्यैऽगे वनादौ व्यसनकृषिमुखे कूपवापीतडागे,
रक्ताश्च प्रेक्षणादौ यशसिपशुगणे शुद्धचिद्रूपके न ॥२२॥

अर्थ- इस संसार में कोई मनुष्य तो इत्र फुलेल आदि सुगन्धित पदार्थो में अनुरक्त हैं। और बहुत से छोटा भाई, पुत्र, पुत्री, स्त्री, पिता, माता, गांव, घर, इंद्रियों के भोग, पर्वत, नगर, पक्षी, सवारी, राजकार्य, खाने योग्य पदार्थ, शरीर, वन, व्यसन, खेती, कुआ, बाबड़ी, और तालाबों में प्रेम करने वाले हैं, और बहुत से अन्य मनुष्यों के इधर उधर भेजने में यश और पशु गणों की रक्षा करने में अनुराग करने वाले हैं। परन्तु शुद्ध चिद्रूप का अनुरागी कोई भी मनुष्य नहीं है ।

२२. ॐ ह्रीं गन्धनादिविषयकरागरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अगन्धोऽहं ।

वीरछंद

इस जग में कोई मनुष्य तो इत्र फुलेल गंध अनुरक्त ।
कोई मात पिता गृह भोग आदि विषयों में ही है रक्त ॥
पर चिद्रूप शुद्ध अनुरागी खोजे पर भी ना मिलते ।
भिन्न भिन्न है प्रकृति सभी की निज को तज पर में रहते॥
बाह्य पदार्थो में होकर के मुग्ध व्यर्थ दुख पाते हैं ।
निज चिद्रूप शुद्ध को ये भी भूले से ना ध्याते हैं ॥२२॥

ॐ ह्रीं भट्टारकज्ञानभूषणविरचित तत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपासक्त विरलप्रतिपादकैकादशाध्याये नित्याज्ञानानन्दस्वरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

इनके अनुयायी श्रावक जन उत्तम समकित धारी हैं ।
एक देश संयम के धारी निर्मल अणुव्रत धारी हैं ॥

महाअर्घ्य

छंद गज़ल

शुद्ध चिद्रूप की महिमा के गीत गाऊंगा ।
धारा आनंद अतीन्द्रिय की मैं भी पाऊंगा ॥
बना विद्रूप मैं अपनी ही भूल के कारण ।
त्याग विद्रूप अब चिद्रूप उर सजाऊंगा ॥
राग की बीन बजा कर के हुआ हूँ कुन्ठित ।
अपने चिद्रूप के ही वाद्य अब बजाऊंगा ॥
तत्त्व श्रद्धान मुझे बहुत भला लगता है ।
इसी की शक्ति से मैं सिद्ध लोक जाऊंगा ॥
पूर्ण सुख का समुद्र उर हिलोर लेता है ।
इसको पाकर मैं नहीं किसी ओर जाऊंगा ॥

छंद चौपायी

एक शुद्ध चिद्रूप हमारा बना हुआ विद्रूप बिचारा ।
जड़ पुद्गल तन के संग रहता भव समुद्र भंवरों संग बहता॥
राग द्वेष मद प्रतिपल पीता पर भावों में ही यह जीता ।
परभावों का दास बना है चारों गति का कष्ट घना है ॥
मुक्ति पवन इसको ना भाता भव अटवी का भवन सुहाता।
सद्गुरु जब समझाने आते इसको उनके वचन न भाते॥
नहीं सीखता भेदज्ञान विधि व्यर्थ खो रहा है अपनी निधि।
जब तक है मिथ्यात्व हृदय में भेद न जानेगा जल पय में ॥
जब स्वकाल पाएगा उत्तम करणलब्धि होगी अत्युत्तम ।
यह सम्यक् दर्शन पाएगा भेद ज्ञान उर में लाएगा ॥

पांचों परमेष्ठी महान हैं जिनवाणी जिनधर्म महान ।
जिन चैत्यालय जिनप्रतिमा नवदेव यही है श्रेष्ठ प्रधान ॥

संयम धारेगा शिवकारी हो जाएगा यह अविकारी ।
तब चिद्रूप शुद्ध पाएगा सिद्ध स्वपद निज प्रगटाएगा ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पित करूं नाश करूं विद्रूप ।
नव नूतन सुख स्रोत है एक शुद्ध चिद्रूप ॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्य नि.।

जयमाला

तांटक

दुर्निवार कंदर्प दर्प को क्षय करता है यह आत्मा ।
पुण्य पाप रागादि भावकर सौख्य रहित होता आत्मा ॥
क्लेशोदधि का मिला किनारा पायी संयम की तरणी ।
जल्दी से तू इस पर चढ़ जा यह भव सागर दुख हरणी॥
अपना यह भगवान आत्मा वीतराग जिन बिम्ब स्वरूप ।
यह अनादि से ही शिवसुखमय निज स्वभावमय मोक्षस्वरूप॥
विषय कषायों के डाकू मिल लूट रहे तेरी संपत्ति ।
विषय कषाय भाव तजने पर ही जाएगी घोर विपत्ति ॥
नित्य शुद्ध चिद्रूप शक्ति का अगर भाव हो जाएगा ।
पीते ही आनन्दामृत फिर राग न रहने पाएगा ॥
पूर्णानन्द स्वरूप आत्मा का जब हो जाता है भान ।
तभी आत्मा पा लेता है अपना सिद्ध स्वपद निर्वाण ॥
निज स्वभाव का अरु विभाव का मेल नहीं होता चेतन।
निज स्वभाव का आश्रय लेने वाला शिव होता चेतन ॥
आत्म स्वरूप निवृत्ति रूप है परम शान्त है सुखदायी ।
किन्तु शुभाशुभ जो विभाव की प्रवृत्ति है वह दुखदायी ॥

नव देवों के अनुयायी श्रावक करते हैं नित स्वाध्याय ।
स्वाध्याय ही मंगलमय तप स्वाध्याय ही शिवसुखदाय ॥

जब आनंद अतीन्द्रिय का आल्हाद हृदय में आता है ।
तत्क्षण ही चैतन्यराज निज परमात्मा पद पाता है ॥
एक अनादि निधन हेतु तो है आनंद कंद प्रभु आप ।
तेरे भीतर कहीं नहीं है कोई भी भव का संताप ॥
सावधान हो जाएगा तो कर्म चोर क्यों आएंगें ।
जो पहिले से भीतर बैठे वे भी सब भग जाएंगे ॥
असावधानी से लुट जाएगा तो बहु दुख पाएगा ।
तेरी दुखमय दशा देखकर कोई बचा न पाएगा ॥
अतः निरंतर सावधान हो निज रत्नत्रय त्वरित संवार ।
ये ही तुझको ले जाएगा दुखप्रद भव समुद्र के पार ॥
अद्भुताद्भुत शुद्ध आत्मा सत् चित् आनंद रूप महान।
साक्षात् चैतन्य महा प्रभु परम स्वयंभू ध्रुव भगवान ॥
प्रीतवंत अपने स्वभाव में ही संतुष्ट अभी हो जा ।
परम तृप्त हो निज स्वरूप में लय हो शुद्ध सिद्ध हो जा॥
चिदानंद आनंद कंद चिद्रूप शुद्ध निज अधिपति है ।
चारों गतियों से वहीन है तेरी तो पंचम गति है ॥

ॐ ह्रीं एकादशम अधिकार स ंचित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

परम शुद्ध चिद्रूप का महाअर्घ्य बलवान ।
प्राणी निज पद प्राप्त कर करते दुख अवसान ॥

इत्याशीर्वाद

स्वध्याय से सातों तत्त्वों का हो जाता सम्यक् ज्ञान ।
स्वाध्याय से आत्म तत्त्व की हो जाती सम्यक् पहचान ॥

ॐ

पूजन क्रमांक १३

तत्त्वज्ञान तरंगिणी द्वादशम अध्याय पूजन

स्थापना

छंद गीतिका

तत्त्वज्ञान तरंगिणी का द्वादशम अध्याय है ।
शुद्ध निज चिद्रूप ही तो मुक्ति सौख्य प्रदाय है ॥
शुद्ध निज चिद्रूप की उपलब्धि का कारण महान ।
असाधारण श्रेष्ठ रत्नत्रय परम भव जलधियान ॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं द्वादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीं द्वादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहीत भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद पयूष राशि

तत्त्वज्ञान तरंग की पायी हिलोर ।
नाच उट्ठा आज मेरा हृदय भोर ॥
ज्ञान जल से करूंगा अभिषेक आज ।
जन्म मृत्यु जरा हरूंगा नाथ आज ॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

आत्म तत्त्व का जब होता है भान तभी समकित होता ।
ज्ञान और चारित्र स्वयं ही अंतर में विकसित होता ॥

तत्त्वज्ञान तरंग की पायी हिलोर ।
नाच उठा आज मेरा हृदय भोर ॥
भवातप ज्वर नाश करना है मुझे ।
रागमय संसार हरना है मुझे ॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

तत्त्वज्ञान तरंग की पायी हिलोर ।
नाच उठा आज मेरा हृदय भोर ॥
भव समुद्र अपार को अब पार कर ।
मुक्ति पाऊंगा स्वरूप विहार कर ॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

तत्त्वज्ञान तरंग की पायी हिलोर ।
नाच उठा आज मेरा हृदय भोर ॥
कामबाण विनाश कर दूंगा सभी ।
प्राप्त पद निष्काम कर लूंगा अभी ॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

तत्त्वज्ञान तरंग की पायी हिलोर ।
नाच उठा आज मेरा हृदय भोर ॥
क्षुधा की भव वेदना का नाश कर ।
सुचरु पाऊँगा स्वरूप प्रकाशकर ॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

जो समकित पा लेता उसका सिद्धस्वपद निश्चित होता।
जो न इसे पा सकता है वह चारों गतियों में रोता ॥

तत्त्वज्ञान तरंग की पायी हिलोर ।
नाच उट्ठा आज मेरा हृदय भोर ॥
मोह भ्रम तम को मिटाऊंगा अभी ।
ज्ञान केवल किरण पाऊंगा अभी ॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

तत्त्वज्ञान तरंग की पायी हिलोर ।
नाच उट्ठा आज मेरा हृदय भोर ॥
धूप निज से अष्टकर्म जलाऊंगा ।
पद महान प्रकाशमय निज पाऊंगा ॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अषष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

तत्त्वज्ञान तरंग की पायी हिलोर ।
नाच उट्ठा आज मेरा हृदय भोर ॥
मोक्ष फल ही प्राप्त करना है मुझे ।
स्वयं ही तो आप्त बनना है मुझे ॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

तत्त्वज्ञान तरंग की पायी हिलोर ।
नाच उट्ठा आज मेरा हृदय भोर ॥
पद अनर्घ्य अपूर्व निश्चित पाऊंगा ।
लौटकर भव मध्य अब ना आऊंगा ॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

आर्त्तरौद्र ध्यानों में मिथ्यादृष्टि अटकता रहता है ।
चारों गति के भँवर जाल में सतत भटकता रहता है ॥

अर्घ्यावलि

द्वादशम अधिकार

शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति के असाधारण कारण रत्नत्रय

(१)

रत्नत्रयोपंलभेन बिना शुद्धचिदात्मनः ।
प्रादुर्भावो न कस्यापि श्रूयते हि जिनागमे ॥१॥

अर्थ- जैन शास्त्र से यह बात जानी गई हैं कि बिना रत्नत्रय को प्राप्त किये आज तक किसी भी जीव को शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति न हुई। सबको रत्नत्रय के लाभ होने पर ही हुई है ।

१. ॐ ह्रीं रत्नत्रयोपलम्भविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शिवरत्नोऽहम् ।

छंद हरिगीता

बिना रत्नत्रय न होती प्राप्ति शुद्ध स्वरूप की ।
लाभ रत्नत्रय मिले तो प्राप्ति हो चिद्रूप की ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥१॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२)

बिना रत्नत्रयं शुद्धचिद्रूपं न प्रपन्नवान् ।
कदापि कोऽपि केनापि प्रकारेण नरःक्वति् ॥२॥

अर्थ- बिना रत्नत्रय के प्राप्त किये आज तक किसी मनुष्य ने कहीं कभी किसी दूसरे उपाय से शुद्धचिद्रूप को प्राप्त न किया। सभी ने पहिले रत्नत्रय को पाकर ही शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति की है ।

२. ॐ ह्रीं ज्ञानरत्नाकरस्वरूपाय नमः ।

अनन्तगुणरत्नोऽहम् ।

जो शुद्धात्म तत्त्व निज ध्याता भव से वही सटकता है ।
जो न ध्यान कर पाता वह भव तरु पर सदा लटकता है ॥

बिना रत्नत्रय किसी ने भी न पाया निज स्वरूप ।
प्रथम रत्नत्रय लिया फिर लिया है चिद्रूप रूप ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥२॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

रत्नत्रयाद्विना चिद्रूपोपलब्धिर्न जायते ।
यथर्धिस्तपसः पुत्रीपितुर्वृष्टिर्वलाहकात् ॥३॥

अर्थ- जिस प्रकार तप के बिना ऋद्धि, पिता के बिना पुत्री, और मेघ के बिना वर्षा नहीं हो सकती उसी प्रकार बिना रत्नत्रय की प्राप्ति के शुद्धचिद्रूप की भी प्राप्ति नहीं हो सकती।

३. ॐ ह्रीं वृष्टिकारणवलाहकविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ब्रह्मामृतस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीता

बिना तप के ऋद्धि दुर्लभ बिन पिता पुत्री नहीं ।
मेघ बिन वर्षा नहीं है कार्य कारण बिन नहीं ॥
बिना रत्नत्रय न होती प्राप्ति निज चिद्रूप की ।
यही रत्नत्रय सुकारण प्राप्ति में चिद्रूप की ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥३॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

दर्शनज्ञानचचारित्रस्वरूपात्मप्रवर्त्तनम् ।
युगपदभण्यते रत्नत्रयं सर्वजिनेश्वरैः ॥४॥

अर्थ- भगवान जिनेश्वर ने एक साथ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र स्वरूप आत्मा की प्रवृत्ति को रत्नत्रय कहा है ।

स्वर्गो में जा कुछ साता पा लेता है विनाशकारी ।
पुनः अधोगति में जाता है भव दुख पाता भ्रमकारी ॥

४. ॐ ह्रीं दर्शनज्ञानचारित्रात्मस्वरूपाय नमः ।

चैतन्यचिन्होऽहम् ।

हरिगीता

जिनेश्वर ने एक संग सम्यक्त्व ज्ञान चरित्र .युत ।
आत्मा की प्रकृति को ही कहा रत्नत्रय सुव्रत ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥४॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(५)

निश्चयव्यवहाराभ्यां द्विधा तत्परिकीर्त्तितम् ।
सत्यस्मिन् व्यवहारे तन्निश्चयं प्रकटीभवेत् ॥५॥

अर्थ- यह रत्नत्रय निश्चय और व्यवहार के भेद से दो प्रकार का है। और व्यवहार रत्न त्रय के होते ही निश्चय रत्नत्रय की प्रकटता होती है ।

५. ॐ ह्रीं निश्चयव्यवहाररत्नत्रयविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अखण्डशिवनिलयस्वरूपोऽहम् ।

रत्न त्रय निश्चय तथा व्यवहार से है दो प्रकार ।
जहाँ हो व्यवहार निश्चय रत्न त्रय होता अपार ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥५॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

श्रद्धानं दर्शनं सप्ततत्त्वानां व्यवहारतः ।
अष्टांगं त्रिविधं प्रोक्तं तदौपशमिकादितः ॥६॥

अर्थ- व्यवहारनय से सातों तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन हैं। और इसके आठ अंग हैं। तथा यह औपुशमिक [illegible]क एवं क्षोपोपशमिक के भेद से तीन प्रकार का है।

नरकों में जा शीत उष्ण वेदना महान उठाता है ।
कठिनाई से महा पुण्य से जब तब बाहर आता है ॥

६. ॐ ह्रीं सप्ततत्त्वाष्टाङ्गादिश्रद्धानविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निराकाङ्क्षोऽहम् ।

हरिगीता

व्यवहार से श्रद्धान सातों तत्त्व का समकित कहा ।
अंग वसु त्रय भेद उपशम क्षयोपशम क्षायिक कहा ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥६॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

सत्ता वस्तूनि सर्वाणि स्याच्छब्देन वचांसि च ।
चिता जगंति व्याप्तानि पश्यन् सददृष्टिरुच्यते ॥७॥

अर्थ- जो महानुभाव सत्‌रूप से समस्त पदार्थों का विस्वास कराता है। अनेकांत रूप से समस्त वचनों को बोलता है और जिसको वह श्रद्धान हैं, कि समस्त जगत ज्ञान से व्याप्त हैं, वह सम्यग्दृष्टि है।

७. ॐ ह्रीं स्याच्छब्दयुक्तवचनविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

विष्णुस्वरूपोऽहम् ।

सत स्वरपी वस्तु का विश्वास जिसके हृदय में ।
देखता सब श्रद्धता समदृष्टि रह निज निलय में ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥७॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

स्वविकीये शुद्धचिद्रपे रुचि र्या निश्चयेन तत् ।
सद्दर्शनं मतं तज्ज्ञैः कर्मेधनहुताशनम् ॥८॥

अर्थ- आत्मिक शुद्धचिद्रूप में जो रुचि करना है, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। और यह

गति त्रिर्यंच के भी दुख पाता वध बंधन से भरे हुए ।
पलभर चैन नहीं मिल पाता दुख तरु सारे हरे हुए ॥

कर्मरूपी ईधन के लिये जाज्वल्यमान अग्नि है। निश्चय सम्यग्दर्शन के आश्रय से समस्त कर्म जलकर खाक हो जाते हैं ।

८. ॐ ह्रीं कर्मेन्धनहुताशनहेतुरूपसद्दर्शनविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अव्याबाधोऽहम् ।

हरिगीता

आत्मिक चिद्रूप रुचि सम्यकक्त्व निश्चय युत महान ।
कर्म ईंधन जलाने में अग्नि सम जाज्ज्वल्यमान ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥८॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

यदि शुद्धंचिद्रूपं निजं समस्तचं त्रिकालगं युगपत् ।
जानन् पश्चन् पश्यति तदा स जीवः सुदृक् तत्वात् ॥९॥

अर्थ- जो जीव तीन काल में रहनेवाले अपने शुद्धचिद्रूप को एक साथ जानता देखता है, वास्तविक दृष्टि से वही सम्यग्दृष्टि है।

९. ॐ ह्रीं त्रिकालगतपरवस्तुविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निराबाधोऽहम् ।

जीव जो त्रय कालवर्त्ती जानता चिद्रूप को ।
वही सम्यक् दृष्टि है जो देखता निज रूप को ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥९॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

ज्ञात्वाष्टांगनि तस्यापि भाषितानि जिनागमे ।
तैरमा धार्यते तद्धिमुक्तिसौख्याभिलाभिणा ॥१०॥

मिली मनुज गति महा पुण्य से भाव मरण करता रहता।
आत्म स्वरूप नहीं लख पाता भव सागर दुख में बहता॥

अर्थ- जो महानुभाव मोक्षसुख के अभिलाषी है। मोक्ष की प्राप्ति से ही अपना कल्याण समझते हैं। वे जैनशास्त्र में वर्ण किये गये सम्यग्दर्शन को उसके आठ अंगों के साथ धारण करते हैं ।

१०. ॐ ह्रीं अष्टाङ्गयुक्तसम्यग्दर्शनधारणविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शुचिसच्चिद्रूपोऽहम् ।

मुक्ति सुख अभिलाष जो कल्याण निज का चाहते ।
अंग आठों सहित वे सम्यक्त्व उर में धारते ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥१०॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

अष्टधाचारसंयुक्तं ज्ञानमुक्तं जिनेशिना ।
व्य.वहारनयाच्छर्वतत्वोद्भासो भवेद्यतः ॥११॥

अर्थ- भगवान जिनेन्द्र ने व्यवहार से आठ प्रकार के आचारों से युक्त ज्ञान बतलाया हैं। और उससे समस्त पदार्थो का भले प्रकार प्रतिभास होता है।

११. ॐ ह्रीं अष्टाचारसंयुक्तज्ञानविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शुद्धज्ञाननिलयस्वरूपोऽहम् ।

व्यवहार से आचार वसुयुत ज्ञान ही तो ज्ञान है ।
सब पदार्थो का सतत प्रतिभास ही वह ज्ञान है ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥११॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

स्वस्वरूपपरिज्ञानं तज्ज्ञानं निश्चयादवरम् ।
कर्मरेणूच्चये वातं हेतुं विद्धिशिवश्रियः ॥१२॥

चारों गतियों के दुख पाये कभी नहीं उद्धार हुआ ।
जहाँ गया दुख ही दुख पाया प्रतिपल कष्ट अपार हुआ॥

अर्थ- परन्तु जिसे स्वस्वरूप का ज्ञान हो। जो शुद्धचिद्रूप को जानें वह निश्चय सम्यग्ज्ञान है । यह निश्चय सम्यग्ज्ञान समस्त कर्मो का नाशक है। और मोक्षरूपी लक्ष्मी की प्राप्ति में परम कारण है। इससे मोक्ष सुख अवश्य प्राप्त होता है ।

१२. ॐ ह्रीं कर्मरेणूच्चयघातहेतुसम्यग्ज्ञानविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शिवश्रीस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीता

ज्ञान हो स्वस्वरूप का जिससे वही निज ज्ञान है ।
यही निश्चय ज्ञान करता कर्म का अवसान है ॥
मोक्ष रूपी लक्ष्मी की प्राप्ति का कारण यही ।
मोक्ष सुख का प्रदाता है भवोदधि तारण यही ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥१२॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

यदि चिद्रूपेऽनुभवो मोहाभावे निजे भवेत्तत्वात् ।
तत्परमज्ञानं स्याद्बहिरंतरसगमुक्तस्य ॥१३॥

अर्थ- मोह के सर्वथा नाश हो जो पर बाह्य आभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रहों से रहित पुरुष का जो आत्मिक शुद्धचिद्रूप का अनुभव करना है, वही वास्तविक रूप से परम ज्ञान है।

१३. ॐ ह्रीं बहिरन्तरसङ्गरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अक्षयपरमबोधोऽहम् ।

मोह क्षय कर बाह्य अंतर परिग्रह से रहित है ।
आत्मिक चिद्रूप अनुभव आत्म ज्ञान सुसहित है ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥१३॥

नवदेवों की सुछवि न भाई इत उत भटका है संसार ।
नरक त्रिर्यंच देव नर गति में पाए कष्ट अनंत अपार ॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

निवृत्तिर्यत्र सावद्यात् वृः शुभप्रत्तिकर्मसु ।
त्रयोदशप्रकारं तच्चारित्रं व्यवहारतः ॥१४॥

अर्थ- जहां पर सावद्य हिंसा के कारण रूप कार्यो से निवृत्ति और शुभ कार्यो में प्रवृत्ति हो, उसे व्यवहार चारित्र कहते हैं। और वह तेरह प्रकार का है ।

१४. ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकारव्यवहारचारित्रविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निष्क्रियचित्स्वरूपोऽहम् ।

हरिगीता

सावद्य हिंसा से निवृत्ति प्रवृत्ति हो शुभ कार्य में ।
यही है व्यवहार चारित त्रयोदश विधि मार्ग में ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥१४॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

मूलोत्तरगुणानां यत्पालनं मुक्तये मुनः ।
दृशा ज्ञानेन सयुक्तं तच्चारित्रं न चापरम् ॥१५॥

अर्थ- सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के सात जो मूल और गुणों का पालन करना है, वह चारित्र है। अन्य नहीं। तथा यही चारित्र मोक्ष का कारण है ।

१५. ॐ ह्रीं मूलोत्तरगुणपालनरूपचारित्रविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अक्षुब्धोऽहम् ।

शुद्ध समकित ज्ञान के संग मूल उत्तर गुण पले ।
वही है चारित्र उत्तम वही कर्मो को दले ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥१५॥

नर भव फिर तूने पाया है अब तो कर ले निज उद्धार।
आत्म ज्ञान का संबल लेकर अब तो होजा भव से पार॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

संग् मुक्तवा जिनाकारं धृत्वा दृशं धियम् ।
यः स्मरेत् शुद्धचिद्रूपं वृत्तं तस्य किलोत्तमम् ॥१६॥

अर्थ- बाह्य आभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रहों का सर्वथा त्याग कर, नग्नमुद्रा समता, सम्यग्दर्शन और सम्ययग्ज्ञान का धारक होकर जो शुद्धचिद्रूप का स्मरण करता है, उसी के उत्तम चारित्र होता है ।

१६. ॐ ह्रीं जिनाकारधारणादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

समतामन्दिरस्वरूपोऽहम् ।

बाह्य अभ्यंतर परिग्रह सर्वथा ही त्याग कर ।
नग्न जिनमुद्रा जु समता ज्ञान दर्शन ध्याय कर ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का जो सतत करते स्मरण ।
वही है चारित्र सम्यक् भवोदधि तारण तरण ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥१६॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

ज्ञप्तया दृष्टया युतं सम्यक्चारित्रं तन्निरुच्यते ।
सत्तां सेव्यं जगत्पूज्यं स्वर्गादिसुखसाधनम् ॥१७॥

अर्थ- सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के साथ ही सम्यक् चारित्र सज्जनों को आचरणीय है, और वह ही समस्त संसार में पूज्य तथा स्वर्ग आदि सुखों को प्राप्त कराने वाला है ।

१७. ॐ ह्रीं जगत्पूज्यस्वर्गादिसुखसाधनररूपसम्यक्चारित्रविकलल्परहितशुद्ध चिद्रूपाय नमः ।

पवित्रचिदालयस्वरूपोऽहम् ।

पहिले जिनदर्शन पूजन कर सदाचार का ले आधार।
फिर कर स्वाध्याय शास्त्रों का फिर तू अपना रूप विचार ॥

सज्जनों को ज्ञान दर्शन चरित्र आचरणीय हैं ।
पूज्य है संसार में सुख शान्ति हित करणीय हैं ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥१७॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

शुद्धे स्वे चित्स्वरूपे या स्थितिरत्यन्तनिश्चला ।
तच्चारित्रं परं विद्धि निश्चयात्कर्मनाशकृत् ॥१८॥

अर्थ- आत्मिक शुद्धस्वरूप में जो निश्चय रूप से स्थिति है, उसे निश्चय चारित्र कहते हैं। और इस चारित्र की प्राप्ति से समस्त कर्मो का अवश्यक ही नाश हो जाता है। अर्थात् निश्चय चरित्र के प्राप्त होते ही जीव समस्त कर्मो का नाशकर सिद्ध अवस्था को प्राप्त होते हैं।

१८. ॐ ह्रीं कर्मनाशहेतुचारित्रविकल्परहितशुद्धस्वरूपाय नमः ।

निश्चलशिवालयस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीता

ज्ञान दर्शन स्वबल से आत्मा स्व में यदि थित रहे ।
वही निश्चय श्रेष्ठ चारित स्वयं में सुस्थित रहे ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥१८॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

यदि चिद्रूपे शुद्धे स्थितिर्निजे भवति दृष्टिबोधबलात् ।
परद्रव्यंस्यास्मरणं शुद्धनयादगिनो वृत्तम् ॥१९॥

अर्थ- यदि इस जीव की सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के बल से शुद्धचिद्रूप में निश्चय रूप से स्थिति हो जाय। और पर पदार्थो से सर्वथा प्रेम हट जाय, तो उसी को शुद्धनिश्चय

अंतर रूप समझ में आते ही तू समकित पाएगा ।
भेदज्ञान की निधि पाएगा अपने घर में आएगा ॥

नय से चारित्र समझना चाहिये ।

१९. ॐ ह्रीं परद्रव्यस्मरणरहितचिद्रूपाय नमः ।

निजगुणमन्दिरोऽहम् ।

ज्ञान दर्शन स्वबल से निश्चलित हो चिद्रूप में ।
विस्मरण पर का करे चारित्र शुद्ध स्वरूप में ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥१९॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

रत्नत्रयं किल ज्ञेयं व्यवहारं तु साधनम् ।
सद्भिश्च निश्चयं साध्यं मुनीनां सद्विभूषणम् ॥२०॥

अर्थ- निश्चय रत्नत्रय की प्राप्ति में व्यवहार रत्नत्रय साधन (कारण) हैं। और निश्चय रत्नत्रय साध्य है। तथा वह निश्चय रत्नत्रय मुनियों का उत्तम भूषण है ।

२०. ॐ ह्रीं भूषणरूपनिश्चयरत्नत्रयविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चिदानन्दभूषणस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीता

व्यवहार रत्नत्रय सुकारण शुद्ध निश्चय प्राप्ति में ।
शुद्ध निश्चय रत्नत्रय है साध्य शिवसुख व्याप्ति में ॥
यही निश्चय रत्नत्रय मुनिराज का भूषण महान ।
यही उत्तम निधि जगत में यही निश्चय जलधियान ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥२०॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२१)

रत्नत्रयं परं ज्ञेयं व्यवहारं च निश्चयम् ।
निदानं शुद्धचिद्रूपस्वरूपात्मोपलब्धये ॥२१॥

फिर तू संयम पथ पर आकर पंचमहाव्रत धारेगा ।
मुनि निर्ग्रंथ दशा पाएगा पर से कभी न हारेगा ॥

अर्थ- यह व्यवहार और निश्चय दोनों प्रकार का रत्नत्रय शुद्धचिद्रूप के स्वरूप की प्राप्त में असाधारण कारण है। बिना दोनों प्रकार के रत्नत्रय को प्राप्त किये कदापि शुद्धचिद्रूप के स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता ।

२१. ॐ ह्रीं निजस्वरूपोपलब्धिकारणविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

कारणसमयसारोऽहम् ।

व्यवहार निश्चय द्वय प्रकारी रत्नत्रय कारण महान।
असाधारण है यही चिद्रूप पाने में प्रधान ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥२१॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२२)

स्वशुद्धचिद्रूपपरोपलब्धिः कस्यापि रत्नत्रयमंतरेणः ।
क्वचितकदाचिन्न च निश्चयोऽयं दृढोऽस्ति चित्ते मम सर्वदैव॥२२॥

अर्थ- इस शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति बिना रत्नत्रय के आज तक कभी और किसी देश में नहीं हुई। सबको रत्नत्रय की प्राप्ति के अनन्तर ही शुद्धचिद्रूप का लाभ हुआ है। यह मेरी आत्मा में दृढ निश्चय हैं।

२२. ॐ ह्रीं दृढ़चित्तविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अचलगुणरत्नोऽहम् ।

हरिगीता

प्राप्ति निज चिद्रूप की अब तक हुई है ना कभी ।
बिना रत्नत्रय कहीं भी प्राप्ति इसकी है नहीं ॥
सभी को पश्चात रत्नत्रय हुई है प्राप्ति यह ।
सुदृढ़ निश्चय आत्मा में हो गया है आज यह ॥
अतः रत्नत्रय सजग हो हृदय धरना चाहिये ।
शुद्ध निज चिद्रूप की ही प्राप्ति करना चाहिए ॥२२॥

ॐ ह्रीं भट्टारकज्ञानभूषणविरचिततत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपप्राप्त्यै रत्नत्रयप्रतिपादक द्वादशाध्याये निजानन्तगुणरत्नस्वरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रेणी चढ़कर यथाख्यात चारित्रसहज ही पाएगा ।
मोहक्षीण कर घाति नाशकर पद अरहंत सुहाएगा ॥

महाअर्घ्य

छंद गजल

शुद्ध चिद्रूप के महलों में तो उजाला है ।
किन्तु संसार में अंधेरा घोर काला है ॥
शुद्ध चिद्रूप की है रोशनी रवि से बढ़कर ।
इसका अंदाजे बयाँ पूर्णतः निराला है ॥
वही पाता है इसे जो स्वभाव में जगता ।
उसने इसके ही रंग में स्वयं को ढाला है ॥
मोह की माधुरी बाधक है इसके पाने में ।
वही पाता है जिसने मोह क्षय कर डाला है ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पण करूं मन वच काय संवार ।
परम शुद्ध चिद्रूप ही ले जाता भव पार ॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री त्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्यं नि. ।

जयमाला

छंद समान सवैया

भक्त अमर तुमको बनना है तो तुम भक्ति स्वयं की कर लो।
अन्तर्मन की सकल कलुषता निज पुरुषार्थ शक्ति से हर लो ॥
सौ सौ बार तुम्हें समझाया सौ सौ बार तुम्हें रोका है ।
सौ सौ बार शपथ दी तुमको सौ सौ बार तुम्हें टोका है॥
पर तुम तो बेहोश रहे हो विषय कषायों में ही पड़कर ।
खोटे कृत्यों में रत रहते खोटे भावों में ही बहकर ॥
कैसे सत्पथ पर आओगे कैसे समझोगे तुम बोलो ।
तिलतिल अवसर बीत रहा है अब तो अपनी आँखे खोलो॥
अरे आयु घट रीत रहा है बूँद बूँद रिसता जाता है ।
कोई नही बचाने आता काल तुम्हें लेकर जाता है ॥

शत इन्द्रों से वन्दित होगा त्रिभुवन में होगी जयकार ।
फिर अघातिया भी क्षय होंगे शिवसुख होगा अपरंपार ॥

कोई जीवित नहीं रहा है एक दिवस फिर मर जाओगे ।
निन्दा के ही पात्र बनोगे फिर न पुनः नर तन पाओगे ॥
अतः सँभल जाओ मेरे मन अवसर बीत रहा है पल पल।
सत्संगति पा अब तो सँभलो अपना मुख कर लो तुम उज्ज्वल॥
अब तो अपनी ओर निहारो निज स्वरूप को ही तुम निरखो।
सत्यम् शिम् सुन्दरम् तुम हो चाहे जैसे निज को परखो॥
सदाचार की दिव्य शक्ति ले करो आचरण शिव सुखदायी।
भव पीड़ा क्षय हो जाएगी राग नहीं होगा दुखदायी ॥
पर की पीड़ा से व्याकुलहो पर की पीड़ा शीघ्र हरो तुम।
यशोध्वजा अपनी लहराओ ऐसा ही कुछ काम करो तुम॥
महापुरुष जितने भी होते वे सब सत् पथ पर चलते हैं।
हिंसा झूठ शील परिग्रह पाप नहीं उनको छलते हैं ॥
परम धाम तुमको पाना है तो ध्रुव धामी अभी बनो तुम।
पर भावों से पर द्रव्यों से निर्मोही बन अभी तनो तुम॥
इतना ही करना है तुमको शेष स्वयं सब हो जाएगा ।
शाश्वत अचल स्वभाव तुम्हारा पल भर में शिव हो जाएगा॥
मोह चक्र को जीतोगे तुम ज्ञान चक्र निश्चित पाओगे ।
परम अहिंसा सात्य धर्म की यशो ध्वजा तुम लहराओगे॥
एक मात्र चिद्रूप शुद्ध का अवलंबन ही परमोत्तम है ।
तत्त्व ज्ञान की तरंग हो तो निज चेतन ही लोकत्तम है॥

ॐ ह्रीं द्वादशम अधिकार समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

परम शुद्ध चिद्रूप में शाश्वत स्वगुण अनंत ।
शाश्वत सुख आधार ही पाता जीव भवंत ॥

इत्याशीर्वाद :

आस्रव के गड़बड़ झाले ने इस चेतन को भरमाया ।
गोरख धंधा अपनाकर चारों गतियों में दुखपाया ॥

ॐ

पूजन क्रमांक १४

तत्त्वज्ञान तरंगिणी त्रयोदशम अधिकार पूजन

स्थापना

छंद गीतिका

तत्त्वज्ञान तरंगिणी अध्याय शुद्ध त्रयोदशम ।
शुद्ध निज चिद्रूप पाने का उपाय निजात्म श्रम ॥
शुद्ध निज चिद्रूप पाने के लिए हो उर विशुद्धि ।
राग विरहित भावना हो तभी होगी परम शुद्धि ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद विजया

रूप की माधुरी नें मुझे घेरा है प्रभु ।
त्रिविध रोग देकर मुझे छल रही है ॥
मेरे ज्ञान को ये बना करके अंधा ।
मेरी आत्मा को सतत छल रही है ॥
करूं क्या बताओ मुझे प्रभु सुमति दो ।
मैं सन्मार्ग पाऊँ स्वकल्याण के हित ॥

ज्ञान है तो राग का क्या काम है ।
राग है तो ज्ञान का क्या काम है ॥

परम शुद्ध चिद्रूप ही नित्य ध्याऊं ।
सतत अष्ट कर्मो के अवसान के हित ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

नहीं ज्ञान चंदन मिला मुझको अब तक ।
मैं भव ज्वर से व्याकुल हुआ जा रहा हूं ॥
विभावों के चंदन लगाए हैं इस पर ।
भवोदधि में बहता ही मैं जा रहा हूं ॥
करूं क्या बताओ मुझे प्रभु सुमति दो ।
मैं सन्मार्ग पाऊँ स्वकल्याण के हित ॥
परम शुद्ध चिद्रूप ही नित्य ध्याऊं ।
सतत अष्ट कर्मो के अवसान के हित ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

नहीं ज्ञान अक्षय की पायी स्वमहिमा ।
नहीं आत्मा के किए मैंने दर्शन ॥
जगा ही नही अक्षती भाव मेरा ।
किए हैं सदा मैने कर्मो के बंधन ॥
करूं क्या बताओ मुझे प्रभु सुमति दो ।
मैं सन्मार्ग पाऊँ स्वकल्याण के हित ॥
परम शुद्ध चिद्रूप ही नित्य ध्याऊं ।
सतत अष्ट कर्मो के अवसान के हित ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

ज्ञान की महिमा नहीं हो राग का सम्मान हो ।
तो बताओ आत्मा का किस तरह कल्याण हो ॥

नहीं ज्ञान पुष्पों की प्रभु गंध पायी ।
मेरी देह दुर्गंध से सड़ रही है ।
ये कामाग्नि तो मेरी बुझती नहीं है ।
मेरे अपने घर में अरे अड़ रही है ॥
करूं क्या बताओ मुझे प्रभु सुमति दो ।
मैं सन्मार्ग पाऊँ स्वकल्याण के हित ॥
परम शुद्ध चिद्रूप ही नित्य ध्याऊं ।
सतत अष्ट कर्मो के अवसान के हित ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

नहीं ज्ञान के चरु मिले आज तक प्रभु ।
क्षुधा व्याधि वर्धक यह भोजन दुखद ही ॥
नहीं तृप्ति की भावना उर में जागी ।
तो कैसे मिलेगा स्वपद निज सुखद ही ॥
करूं क्या बताओ मुझे प्रभु सुमति दो ।
मैं सन्मार्ग पाऊँ स्वकल्याण के हित ॥
परम शुद्ध चिद्रूप ही नित्य ध्याऊं ।
सतत अष्ट कर्मो के अवसान के हित ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

न निज ज्ञान के दीप अब तक जलाए ।
सदा घोर अज्ञान छाया हृदय में ॥
तो विभ्रम का तम कैसे क्षय होगा हे प्रभु ।
मैं जाऊंगा कैसे कभी निज निलय में ॥

पंच पापों की हवा में जो सदा उड़ते हैं ।
वे अधोगति कोपा परभाव से ही जुड़ते हैं ॥

करूं क्या बताओ मुझे प्रभु सुमति दो ।
मैं सन्मार्ग पाऊँ स्वकल्याण के हित ॥
परम शुद्ध चिद्रूप ही नित्य ध्याऊं ।
सतत अष्ट कर्मो के अवसान के हित ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

नहीं ध्यान की धूप पायी कभी भी ।
तो निज ध्यान कैसे कहाँ से लगाता ॥
महा कष्टकारी इन कर्मो की सेना ।
कहो नाथ कैसे सदा को भगाता ॥
करूं क्या बताओ मुझे प्रभु सुमति दो ।
मैं सन्मार्ग पाऊँ स्वकल्याण के हित ॥
परम शुद्ध चिद्रूप ही नित्य ध्याऊं ।
सतत अष्ट कर्मो के अवसान के हित ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

नहीं ज्ञान फल मैंने पाये कभी भी ।
तो फिर मोक्ष फल कैसे मिलता बताओ ।
ये पाक फल मैंने भव विष के खाए ।
तो निर्वाण सुख कैसे मिलता जताओ ॥
करूं क्या बताओ मुझे प्रभु सुमति दो ।
मैं सन्मार्ग पाऊँ स्वकल्याण के हित ॥
परम शुद्ध चिद्रूप ही नित्य ध्याऊं ।
सतत अष्ट कर्मो के अवसान के हित ॥

पंच अणुव्रत धारकों को स्वर्ग सुख मिलता सहज ।
ज्ञान वृद्धिंगत हुआ तो आत्म सुख झिलता सहज ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

नहीं ज्ञान के अर्घ्य उर में सजाए ।
तो पदवी अनर्घ्य भी मिलती कहाँ से ॥
महामोह विष मैंने खाया सदा ही ।
तो भवदुख का पर्वत भी हिलता कहाँ से ॥
करूं क्या बताओ मुझे प्रभु सुमति दो ।
मैं सन्मार्ग पाऊँ स्वकल्याण के हित ॥
परम शुद्ध चिद्रूप ही नित्य ध्याऊं ।
सतत अष्ट कर्मो के अवसान के हित ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

अर्घ्यावलि

त्रयोदशम अधिकार

शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति के लिए
विशुद्धि की आवश्यकता का प्रतिपादन

(१)

विशुद्धं वसनं श्लाध्यं रत्नं रुप्यं च यांचनम् ।
भाजनं भवनं सर्वंयथा चिद्रूपकं तथा ॥१॥

अर्थ- जिस प्रकार निर्मल वस्त्र रत्न चांदी सोना पात्र और भवन आदि पदार्त उत्तम और प्रशस्य गिने जाते हैं। उसी प्रकार यह शुद्धचिद्रूप भी अति उत्तम और प्रशस्य हैं।

१. ॐ ह्रीं श्लाध्यरत्नरूप्यकाञ्चनादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चैतन्यकाञ्चनस्वरूपोऽहम् ।

छंद चौपई

महाव्रत धारकों को मोक्ष सुख मिलता सदा ।
ज्ञान निज कैवल्य का अंबुज हृदय खिलता सदा ॥

जैसे निर्मल वस्त्र रत्न सब सोना चाँदी मात्र भवन सब।
उत्तम प्रशंस्य माने जाते त्यों उत्तम चिद्रूप सुहाते ॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥१॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२)

रागादिलक्षणः पुंसि संक्लेसोऽशुद्धता मता ।
तन्नासो येन चांशेन तेनांशेन विशुद्धता ॥२॥

अर्थ- पुरुष में राग द्वेष आदि लक्षण का धारक संक्लेश अशुद्धपना कहा जाता है। और जितने अंश में राग द्वेष आदि का नाश हो जाता है उतने अंश में विशुद्धपना कहा जाता है ।

२. ॐ ह्रीं रागादिलक्षणारूपसंक्लेशरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

विरागनिलयस्वरूपोऽहम् ।

चौपायी

ज्यों पुरुषों में राग द्वेष हैं अशुद्ध उर में संक्लेश है ।
राग द्वेष जितना जाता है उतने अंश शुद्धि पाता है ॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥२॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

येनोपायेन संक्लेशश्चिद्रूपाद्याति वेगतः ।
विशुद्धिरेति चिद्रूपे स विधेयो मुमुक्षणा ॥३॥

अर्थ- जो जीव मोक्षाभिलाषी हैं अपनी आत्मा को समस्त कर्मो से रहित करना चाहते हैं। उन्हें चाहिये कि जिस, उपाय से यह संक्लेश दूर हो। विशुद्धपना आवे। वह उपाय अवश्य करें ।

३. ॐ ह्रीं संक्लेशनाशोपायविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरभिलाषसौख्यस्वरूपोऽहम् ।

शाश्वत जिनमार्ग पर जो चलेंगे सुख पाएंगे ।
विनश्वर भव मार्ग पर जो चलेंगें दुख पाएंगें ॥

जिन्हें मोक्ष की है अभिलाषा कर्म रहित होने की आशा।
क्षय संक्लेश उपाय करें वे जिससे मिले विशुद्धि करें वे॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥३॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

सत्पूज्यानां स्तुतिनुतियजनं षटकमावश्यकानां-
वृत्तादीनां दृढतरधरणं सत्तपस्तीर्थयात्रा ।
संगादीनां त्यजनमजननं क्रोधमानादिकाना-
माप्तैरुक्तं वरतरकृपया सर्वमेतद्धि शुद्धयै ॥४॥

अर्थ- जो पुरुष उत्तम और पूज्य हैं, उनकी स्तुति नमस्कार और पूजन करना, सामायिक प्रतिक्रमण आदि छह प्रकार के आवश्यकों का आचरण करना, सम्यक् चारित्र का दृढ़ रूप से धारण करना, उत्तम तप और तीर्थयात्रा करना, बाह्य आब्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रहों का त्याग करना और क्रोध मान माया आदि कषायों को उत्पन्न न होने देना आदि विशुद्धि के कारण हैं। बिना इन बातों के आचरण किये विशुद्धि नहीं हो सकती।

४. ॐ ह्रीं षट्कर्मावश्यकादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

सरलबोधस्वरूपोऽहम् ।

चौपायी

उत्तम पूज्य पुरुष की संस्तुति परमात्मा पूजा अरु स्तुति।
सामायिक प्रतिक्रमण आदि सब षड आवश्यक क्रिया आदि सब ॥
साधक चरित्र धारण करता तप व्रत तीर्थ यात्रा करता।
सर्व परिग्रह त्याग अपावन क्रोध मान मायादि सर्व हन ॥
उर कषाय होने ना देना यही विशुद्धि ज्ञान में लेता ।
इनके बिना विशुद्धि नहीं है किसी भांति की शुद्धि नहीं है॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥४॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

अगर साता चाहिये तो मंद कीजेगा कषाय ।
अगर शिवसुख चाहिये तो कीजिएगा क्षय कषाय ॥

(५)

रागादिविक्रया दृष्टवांगिनां क्षोभादि मा व्रज ।
भवे तदितरं किं स्यात् स्वस्थं शिवपदं स्मर ॥५॥

अर्थ- हे आत्मन्! मनुष्यों में रागद्वेष आदि का विकार देख तुझे किसी प्रकार का क्षोन न करना चाहिए, क्योंकि संसार में सिवाय राग आदि विकार के और होना ही क्या है! इसलिये तू अतिशय विशुद्ध मोक्षमार्ग का ही स्मरण कर ।

५. ॐ ह्रीं क्षोभादिदोषरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अविकारोऽहम् ।

चौपायी

राग द्वेष के विकार हरकर क्षोभ नहीं करना समता धर।
यह जग राग द्वेष का धारी ज्ञान मार्ग है श्रेयसकारी ॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥५॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

विपर्यस्तो मोहादहमिद विवेकेन रहितः
सरोगो निःस्वो वा विमतिरगुणः शक्तिविकलः ।
सदादोषी निद्योऽगुरुविधिरकर्मा हि वचनं ।
वदन्नांगी त्याद्यं भवति भुवि वैशुद्धयसुखभाक् ॥६॥

अर्थ- मैं मोह के कारण विपर्यस्त होकर ही अपनी को विवेकहीन रोगी निर्धन मतिहीन अगुणी शक्ति रहित दोषी निन्दनीय हीनक्रिया का करनेवाला अकर्मणय आलसी मानता हूं। इस प्रकार वचन बोलने वाला विशुद्धता के सुख का अनुभव करता है ।

६. ॐ ह्रीं मोहविपर्ययत्वरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अनन्तवीर्यस्वरूपोहम् ।

रोगी निर्धन शक्तिहीन हूँ दोषी और विवेक हीन हूँ ।
अगुणी निन्दनीय आलसी अकर्मण्य हूँ मोह भ्रम वशी ॥

विषय भोगों में रहे हो आत्मा को भूलकर ।
भवोदधि में ही बहे हो राग पर में झूल कर ॥

ऐसे वचन सदा ही कहना है विशुद्धि का उत्तम गहना ।
यह विशुद्धता उर में ध्याता ऐसा सुख नित अनुभव पाता॥
शुद्ध बुद्ध चैतन्य स्वरूपी ज्ञाता दृष्टा आनन्द रूपी ॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥६॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

राज्ञी ज्ञातेश्च दस्योर्ज्वलनजलरिपोरीतितो मृत्युरोगात् ।
दोषोदभूतेरकीर्तेः सततमतिभयं रैनृगोमंदिरस्य ॥
चिंता तन्नाशशोको भवति च गृहिणां तेनतेषां विशुद्ध–
चिद्रूपध्यानरत्नं श्रुतजलधिभवं प्रायशो दुर्लभं स्यात् ॥७॥

अर्थ- संसारी जीवों को राजा, जाति, चोर अग्नि, डल, बैरी, अतिवृष्टी, अनावृष्टि, आद ईति मृत्यु रोग, दोष, और अकीर्ति से सदा भय बना रहता है। धन कुटुम्बी मनुष्य, गाय और महल मकान की चिन्तायें लगी रहती है। एवं उनके नाश से सोक होता रहता है; इसलिये उन्हें शास्त्ररूपी अगाध समुद्र से उत्लप्न शुद्ध चिद्रूप के ध्यान रतन की प्राप्ति होना नितान्त दुर्लभ है ।

७. ॐ ह्रीं मृत्युरोगशोकादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अशोकोऽहम् ।

चौपायी

अनावृष्टि अतिवष्टि अग्निमय ईति भीति जल धोर दुष्ट भय।
राग द्वेष मृत्यु अन्यभय जयति अकीर्त्ति आदिका भी भय॥
संसारी जीवों को हरता धन कुटुम्ब चिन्ता युत होता ।
इष्ट नाश से महादुखी है पलभर को भी नहीं सुखी है॥
उन्हें शास्त्र रूपी जिन अमृत दुर्लभ है चिद्रूप शाश्वत ।
नहीं प्राप्ति होती स्वध्यान की अरुचि सतत चिद्रूप ध्यान की ॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥७॥

विभावों की अंधेरी में ढूंढते हो रोशनी ।
रोशनी हो ज्ञान की तो विश्व भर में रोशनी ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

पठने गमने संगे चेतनेऽचेतनेऽपि च ।
किंचित्कार्यकृतौ पुंसा चिन्ता हेया विशुद्धये ॥८॥

अर्थ- जो महानुभाव विशुद्धता का आकांक्षी है। अपनी आत्मा को निष्कलंक बनाना चाहता है। उसे चाहिये कि यह पढ़ने गमन करने, चेतन अचेतन, दोनों प्रकार के परिग्रह के सम्बन्ध में और किसी अन्य कार्य के करने में किसी प्रकार की चिन्ता न करे अर्थात् अन्य पदार्थों की चिन्ता करने से आत्मा विशुद्ध नहीं बन सकती ।

८. ॐ ह्रीं पठनगमनादिचिन्तारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निश्चिन्तोऽहम् ।

जो विशुद्धता की आकांक्षा निष्कंलक होने की कांक्षा ।
पठन गमन चेतन व अचेतन धरे न चिन्ता अणुभर भी मन॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥८॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

शुद्धचिद्रूपकस्यांशो द्वादशांगश्रुतार्णवः ।
शुद्धचिद्रूपके लब्धे तेन किं मे प्रयोजनम् ॥९॥

अर्थ- आचारांग सूत्रकृतांग आदि द्वादशांगरूपी समुद्र शुद्धचिद्रूप का अंश है, इसलिये यहि शुद्धचिद्रूप प्राप्त हो गया है, तो मुझे द्वादशांग से क्या प्रयोजन? वह तो प्राप्त हो ही गया ।

९. ॐ ह्रीं द्वादशाङ्गश्रुतार्णवविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शाश्वतज्ञानार्णवस्वरूपोऽहम् ।

द्वादशांग रूपी श्रुत सागर है चिद्रूप शुद्ध अंशभर ।
हो चिद्रूप शुद्ध अन्तर्मन द्वादशांग से नहीं प्रयोजन ॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥९॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

ज्ञान पूर्ण प्रकाश हो तो मोह भ्रम तम नाश है ।
परम केवल ज्ञान दर्शनमयी शुद्ध प्रकाश है ॥

(१०)

शुद्धचिद्रूपके लब्धे कर्त्तव्यं किंचिदस्ति न ।
अन्यकार्यकृतौ चिन्ता वृथा मे मोहसंभवना ॥१०॥

अर्थ- मुझे संसार में शुद्धचिद्रूप का लाभ चोगया है। इसलिये कोई कार्य मुझे करने के लिये अवशिष्ट न रहा। सब कर चुका। तथा शुद्धचिद्रूप की प्राप्त हो जाने पर अन्य कार्यो के लिये मुझे चिनता करना भी व्यर्थ है। क्योंकि यह मोह से होती है। अर्थात् मोह से उत्पन्न हुई चिन्ता से मेरा कदापि कल्याण नहीं हो सकता ।

१०. ॐ ह्रीं अन्यकार्यचिन्तारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्मोहधामस्वरूपोऽहम् ।

चौपायी

लाभ शुद्ध चिद्रूप हुआ तो फिर अवशिष्ट न अन्य रहा तो ।
जब चिद्रूप शुद्ध उर आए। फिर क्यों चिन्ता उसे सताए॥
चिन्ता मोह जन्य होती है यह हितकर न कभी होती है।
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥१०॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

वपुषां कर्मणां कर्महेतूनां चिंतनं यदा ।
तदा क्लेशो विशुद्धिः स्याच्छुद्धचिद्रूपचिंतनम् ॥११॥

अर्थ- शरीर कर्म और कर्म के कारणों का चिन्तवन करना क्लेश हैं। अर्थात् उनके चिन्तवन से आत्मा में क्लेश उत्पन्न होता है। शुद्धचिद्रूप के चिन्तवन से विशुद्धि होती है ।

११. ॐ ह्रीं शरीरकर्मकारणचिंतनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

क्लेशरहितनिजध्रुवोऽहम् ।

देह कर्म बंधन का कारण आत्म क्लेश दाता दुखदारुण।
जब चिद्रूप शुद्धि होती है तब विशुद्धि उर में होती है ॥

जिसने भी आत्मा को जान लिया पहिली बार ।
उसने ही प्राप्त किया शुद्ध ज्ञान का आगार ॥

परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥११॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

गृही यति र्न यो वेत्ति शुद्धचिद्रूपलक्षणम् ।
सत्य पंचनमस्कारप्रमुखस्मरणं वरम् ॥१२॥

अर्थ- जो गृहस्थ वा मुनि शुद्धचिद्रूप का स्वरूप नहीं जानता, उसके लिये पंचपरमेष्ठी के मंत्रों का स्मरण करना ही कार्यकारी है। उसी से उसका कल्याण हो सकता है ।

१२. ॐ ह्रीं पञ्चनमस्कारस्मरणविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजकारणपरमात्मस्वरूपोऽहम् ।

चौपायी

जो चिद्रूप शुद्ध ना ज़ाने गृहस्थ मुनि को ना पहचाने ।
करे पंच परमेष्ठी चिन्तन यही कार्यकारी हितकर धन ॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥१२॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

संक्लेशस्य विशुद्धेश्च फलं ज्ञात्वा परीक्षाम् ।
तत्त्यजेत्तां भजत्यंगी योऽत्र मुत्र सुखी स हि ॥१३॥

अर्थ- जो पुरुष संक्लेश और विशुद्ध के फल को परीक्षापूर्वक जानकर, संक्लेश को छोड़ता है और विशुद्धि का सेवन करता है। उस मनुष्य को इस लोक और परलोक दोनों लोकों में सुख मिलता है ।

१३. ॐ ह्रीं संक्लेशविशुद्धिफलपरीक्षणविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्विकल्पानन्दस्वरूपोऽहम् ।

चौपायी

जो नर फल संक्लेश जानता जो विशुद्धि का फल पिछानता।
वह संक्लेश भाव को तजता विशुद्धि का ही सेवन करता॥

जिसने निज आत्मा को आज तक न जाना है ।
उसने ही बार बार घोर दुक्ख छाना है ॥

उस मनुष्य को वहु सुख मिलता लोक और परलोक सुधरता।
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥१३॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

संक्लेशे सकर्मणां बंधोऽशुभानां दुःखदायिनाम् ।
विशुद्धौ मोचनं तेषां बंधो वा शुभकर्मणाम् ॥१४॥

अर्थ- क्योंकि संक्लेश के होने से अत्यन्त दुखदायी अशुभ कर्मो का आत्मा के साथ संबंध होता है। और विशुद्धता की प्राप्ति से इन अशुभ कर्मो का सम्बन्ध छूटता है तथा शुभ कर्मो का सम्बन्ध होता है ।

१४. ॐ ह्रीं दुःखदायकाशुभकर्मबन्धकारणसंक्लेशरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः।

सदानन्दधामस्वरूपोऽहम् ।

चौपायी

यह संक्लेश महादुखदायी अशुभ कर्म आत्मा संग भाई।
जब विशुद्धता की हो प्राप्ति अशुभ कर्म की होती नास्ति॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥१४॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

विशुद्धिः शुद्धचिद्रूपसद्ध्याने मुख्यकारणम् ।
संक्लेशस्तद्विघाताय जिनेनेदं निरूपितम् ॥१५॥

अर्थ- यह विशुद्धि शुद्धचिद्रूप के ध्यान में मुख्य कारण है। इसी से शुद्धचिद्रूप के ध्यान की प्राप्ति होती है। और संक्लेश शुद्धचिद्रूप के ध्यान का विघातक है। जब तक आत्मा में किसी प्रकार का संक्लेश रहता है। तब तक शुद्धचिद्रूप का ध्यान कदापि नहीं हो सकता ।

१५. ॐ ह्रीं चिद्रूपध्यानविघातकसंक्लेशरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अवध्यचिद्रूपोऽहम् ।

जीव का ज्ञान से संबंध जब हो जाता है ।
मोह मिथ्यात्व भाव पल में ही खो जाता है ॥

यह विशुद्धि चिद्रूप ध्यान में उत्तम कारण है स्वध्यान में।
संक्लेश है ध्यान विघातक अरु विशुद्धि निज उत्तम साधक॥
जब तक संक्लेश रहता है तब तक ध्यान नहीं होता है।
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥१५॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

अमृतं च विशुद्धिः स्यान्नान्यल्लोकप्रभाषितम् ।
अतच्यंतसेवने कष्टमन्यस्यास्य परं सुखम् ॥१६॥

अर्थ- संसार में लोग अमृत जिसको कहकर पुकारते हैं- अथवा जिस किसी पदार्थ को लोग अमृत बतलाते हैं। वह पदार्थ वास्तव में अमृत नहीं है। वास्तविक अमृत को विशुधि ही है। क्योंकि लोककथित अमृत के अधिकर सेवन करने से तो कष्ट भोगना पड़ता है। और विशुद्धि रूपी अमृत के अधिक सेवन करने पर भी अनुपम सुख ही मिलता है। किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं भोगना पड़ता, इसलिये जिससे सब अवस्थाओं में सुख मिले, वही सच्चा अमृत है ।

१६. ॐ ह्रीं पेयरुपामृतविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानपीयूषस्वरूपोऽहम् ।

चौपायी

जग जिसको अमृत कहता है नाम मात्र का वह होता है।
सच्चा अमृत शुद्ध भाव है। दुखमय अमृत तो विभाव है॥
लोक कथित अमृत विषपायी सदा सेवने पर दुखदायी।
है चिद्रूप शुद्ध ही अमृत महामोक्ष सुख दाता शाश्वत ॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥१६॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

विशुद्धिसेवनासक्ता वसंति गिरिगव्हरे ।
विमुच्यानुपमं राज्यं स्वसुखानि धनानि च ॥१७॥

मोह मिथ्यात्व की मदिरा का तुम सेवन छोड़ो ।
अपनी निज आत्मा को ज्ञान भाव से जोड़ो ॥

अर्थ- जो मनुष्य विशुद्धता के भक्त हैं। अपनी आत्मा को विशुद्ध बनाना चाहते हैं। वे उसकी सिद्धि के लिये पर्वत की गुफाओं में निवास करते हैं। तथा अनुपम राज्य इन्द्रिय सुख और संपत्ति का सर्वथा त्याग कर देते हैं। राज्य आदि की ओर जरा भी चित्त को भटकने नहीं देते ।

१७. ॐ ह्रीं राज्यसुखधनादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानगिरीस्वरूपोऽहम् ।

जो हैं प्रेमी शुद्ध भाव के साथी बनते हैं स्वभाव के ।
वन पर्वत सरिता तट रहते सर्व परिग्रह वे तज देते ॥
राज्य आदि इन्द्रिय सुख तजते निज को छोड़ न कहीं भटकते।
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥१७॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

विशुद्धेश्चित्स्वरूपे स्यात् स्थितिस्तस्या विशुद्धता ।
तयोरन्योन्यहेतुत्वमनुभूय प्रतीयताम् ॥१८॥

अर्थ- विशुद्ध होने से शुद्धचिद्रूप में स्थिति होती है। और विशुद्धचिद्रूप में निश्चय रूप से स्थिति करने से विशुद्ध होती है; इसलिये इन दोनों को आपस में एक दूसरे का कारण जानकर, इनका वास्तविक स्वरूप जान लेना चाहिये ।

१८. ॐ ह्रीं चिद्रूपस्थितिकारणविशुद्धताविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शुद्धचैतन्यधामस्वरूपोऽहम् ।

चौपायी

जब होती विशुद्धि उर निश्चित तब चिद्रूप शुद्ध में सुस्थित।
जब चिद्रूप शुद्ध हो सुस्थित तब विशुद्धि होती है निश्चित॥
एक दूसरे का कारण यह इस स्वरूप को जानो निस्पृह।
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥१८॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

मुक्ति का मार्ग कठिन है पै सरल हो जाए ।
ऐसी कुछ युक्ति करो ज्ञान भाव जग जाए ॥

(१९)

विशुद्धिः परमो धर्मः पुंसि सैव सुखाकरः ।
परमाचरणं सैव मुक्तेः पंथाच सैव हि ॥१९॥

अर्थ- यह विशुद्धि ही संसार में परम धर्म है। यही जीवों को सुख देने वाला, उत्तम चारित्र, और मोक्ष का मार्ग है। इसलिये जो मुनिगण विद्वान है जड़ और चेतन के स्वरूप के वास्तविक जानकार हैं। उन्हें चाहिये कि वे शुद्धचिद्रूप के चिन्तवन से प्रयत्नपूर्वक विशुद्धि की प्राप्ति कर ।

१९. ॐ ह्रीं ज्ञानसुखाकरस्वरूपाय नमः ।

चिद्रत्नाकरोऽहम् ।

चौपायी

यह विशुद्धि ही परम धर्म है जीवों को सुखमय स्वधर्म है।
यह उत्तम चारित्र मुक्ति पथ ऋषि मुनि विद्वानों का निजरथ ॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥१९॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

तस्मात् सैव विधातव्या प्रयत्नेन मनीषिणा ।
प्रतिक्षणं मुनीशेन शुद्धचिद्रूपचिन्तनात् ॥२०॥

२०. ॐ ह्रीं चिद्रूपरत्नतेजस्वरूपाय नमः ।

ब्रह्मरत्ननिलयस्वरूपोऽहम् ।

चौपायी

जड़ चेतन के जो ज्ञाता हैं वे चिद्रूप शुद्ध ध्याता हैं ।
जो चिद्रूप शुद्ध ध्याएँगें वे चिद्रूप शुद्ध पाएंगे ॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥२०॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

ज्ञान जागेगा तो अज्ञान नाश होगा ही ।
मोह भागेगा तो निर्मल प्रकाश होगा ही ॥

(२१)

यावद्बाह्यान्तरान् संगान् न मुञ्चन्ति मुनीश्वराः ।
तावदायाति नो तेषां चित्स्वरूपे विशुद्धता ॥२१॥

अर्थ- जब तक मुनिगण बाह्य आभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रह का सर्वथा त्याग नहीं कर देते, तब तक उनकें चिद्रूप में विशुद्धपना नहीं आ सकता ।

२१. ॐ ह्रीं बाह्यान्तरसङ्गरहितनिःसङ्गस्वरूपाय नमः ।

निष्किञ्चनस्वरूपोऽहम् ।

जब तक मुनिगण बाहाभ्यंतर क्षय करते न परिग्रह दुखकर ।
जब तक उनके स्वचिद्रूप में विशुद्धि आती ना स्वरूप में॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥२१॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२२)

विशुद्धिनावमेवात्र श्रयंतु भवसागरे ।
मज्जन्तो निखिला भव्या बहुना भाषितेन किम् ॥२२॥

अर्थ- ग्रंथकार कहते हैं कि इस विषय में विशेष कहने से क्या प्रयोजन? प्रिय भव्यों! अनादि काल से आप लोग इस संसार रूपी सागर में गोता खा रहे हैं। अब आप इस विशुद्ध रूपी नौका आश्रय लेकर संसार से पार होने के लिये पूर्ण उद्यम कीजिये ।

२२. ॐ ह्रीं ज्ञानपोतस्वरूपाय नमः ।

चैतन्यनावस्वरूपोऽहम् ।

चौपायी

अधिक कथन से नहीं प्रयोजन भव्यो करो स्वयं का चिन्तन।
काल अनंत दुखों में बीता फिर भी भव सागर ना रीता॥
अब विशुद्धि रूपी नौकालों भव समुद्र हर शाश्वत सुख लो।
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥२२॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

मोक्ष का मार्ग कभी भी न बंद होता है ।
वही कहता है जो आगम से अंध होता है ॥

(२३)

आदेशोऽयं सद्गुरूणां रहस्यं सिद्धान्तानामेतदेवाखिलानाम् ।
कर्त्तव्यानां मुख्यकर्त्तव्यमेतत्कार्या यत्स्वे चित्स्वरूपे विशुद्धि :॥२३॥

अर्थ- अपने चित्स्वरूप में विशुद्धि प्राप्त करना यही उत्तम गुरुओं का उपदेश हैं। समस्त सिद्धान्तों का रहस्य और समस्त कर्त्तव्यों में मुख्य कर्त्तव्य है ।

२३. ॐ ह्रीं सिद्धान्तरहस्यादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजध्रुवरहस्यस्वरूपोऽहम् ।

चिस्वरूप को विशुद्ध करना। गुरु उपदेश हृदय में धरता।
सब सिद्धान्तों का रहस्यहै । कर्त्तव्यों में श्रेष्ठ वश्य है ॥
परम शुद्ध चिद्रूप ध्यान लो। आत्म ज्ञान कर आत्म भान लो।
एक शुद्ध चैतन्य स्वरूपी परम शुद्ध चिद्रूप अनूपी ॥
परम शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति श्रम। त्रिभुवन में ये ही सर्वोत्तम॥२३॥

ॐ ह्रीं ज्ञानभूषणभट्टारकविरचित तत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपलब्ध्यै विशुद्धयानयनविधि प्रतिपादक त्रयोदशाध्याये बोधपोतस्वरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्य

छंद गीत

कल्याण की इच्छा है तो अनुभव का पियो जाम ।
शुद्धात्मा के ध्यान से पाओगे ध्रौव्य धाम ॥
आस्रव के भाव दुखमयी भव में डुबाएंगे ।
इनके अभाव हेतु करो निज को ह्री प्रणाम ॥
संवर की भावना से जुड़ो निर्जरा के हेतु ।
कर्मो के पूर्व बंध नष्ट होंगे फिर तमाम ॥
मिल जाएगी फिर मुक्ति की मंज़िल तुम्हें चेतन ।
भव पार होते ही तुम्हें होगा न कोई काम ॥
जीवंत शक्ति के धनी हो भूल मत करना ।
अपने को ही पहिचान करो सिद्ध अपना काम ॥

तीनों ही काल मोक्ष मार्ग खुला है चेतन ।
तीनों ही काल ज्ञान भाव घुला है चेतन ॥

परमात्मा तुम्हीं हो सिद्ध हो महंत हो ।
चिद्रूप शुद्ध में ही करो तुम सतत विराम ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पित करूं अभिनव ज्ञान स्वरूप ।
सर्व राग द्वेषादि हर अपना ही चिद्रूप ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्य नि.।

जयमाला

गज़ल

पुष्प खिलता है पूर्ण ज्ञान शक्ति के बल से ।
सौख्य होता है पूर्ण आत्मा के ही तल से ॥
शुद्ध अनुभव की कृपा से स्व ज्योति आयी है ।
पूर्ण संयम की दशा आज मैंने पायी है ॥
शुद्ध चिद्रूप ही आनंद अमृत का सागर ।
राग द्वेषादि रहित गुण अनंत की गागर ॥
कोई भी दोष नहीं रंच मात्र है इसमें ।
पूर्ण सम्यक्त्व ज्ञान चरित्र का है यह सरवर ॥
निज से एकत्व पर से है विभक्त तीनों काल ।
ज्ञान दर्शनमयी अनंत सुख सहज शिवकर ॥
शुद्ध है बुद्ध है सिद्धत्व से सुशोभित हैं ।
ध्रुव त्रिकाली है परम शान्त उजागर दिनकर ॥

छंद गज़ल

इसी के आश्रय से मोक्ष प्राप्त होता है ।
जीव अरंहत सिद्ध पूर्ण आप्त होता है ॥
राग होता है तो फिर ज्ञान नहीं होता है ।
ज्ञान होता है तो फिर राग नहीं होता है ॥

राग की आग में जलते ही रहे हैं अब तक ।
मोह की छाँह में पलते ही रहे हैं अब तक ॥

स्वपर विवेक तत्त्व ज्ञान स्वतः होता है ।
तत्त्व के ज्ञान बिन निज भावन नहीं होता है ॥
शुद्ध सम्यक्त्व ही निज धर्म मूल है मानो ।
बिना सम्यक्त्व के निर्वाण नहीं होता है ॥

छंद गीत

उर में स्वभाव भाव का जलता हुआ दिया ।
देखा तो आत्मा के साथ मैं भी चल दिया ॥
तम का न हीं नाम था जगमग थी दिवाली ।
अतएव आत्मा का ध्यान भी अचल किया ॥
श्रेणी क्षपक स्वभावा से चढ़न का किया श्रम ।
अरहंत पद को प्राप्त ममल अरु विमल किया ॥
सर्वज्ञ दशा प्राप्ति कर रस पीता निजानंद ।
सिद्धों का पद भी लूंगा मैं निश्चय अचल किया ॥
आनंद अतीन्द्रिय का ही अब साम्राज्य है ।
अपने स्वभाव भाव को प्रतिपल सरल किया ॥
शुद्धात्मा की भक्ति पूर्ण प्रगट हो गई ।
अनुभव स्वरस का अंजुली भर भर के जल पिया ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशम अधिकार समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

प्राप्ति शुद्ध चिद्रूप की सदा सदा स्व सहाय ।
आत्माश्रय की प्राप्ति ही परमोत्कृष्ट उपाय ॥

इत्याशीर्वाद :

दुखों के बीज हमने बोए हैं सदा से ही ।
खेत हमने उगाए कष्ट के सदा से ही ॥

ॐ

पूजन क्रमांक १५

तत्त्वज्ञान तरंगिणी चतुर्दशम अध्याय पूजन

स्थापना

गीतिका

तत्त्व ज्ञान तरंगिणी अध्याय सरल चुतर्दशम ।
शुद्ध निज चिद्रूप के ही सुस्मरण का करो श्रम ॥
अन्य कार्यो के समय भी करो इसका स्मरण ।
यही करता है सदा को नष्ट जन्म जरा मरण ॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद राधिका

मैं ज्ञान भावना जल के कलश सजाऊं ।
जन्मादि रोग हर निज के वाद्य बजाऊं ।
चिद्रूप शुद्ध की महिमा उर में जागे ।
मिथ्यात्व मोह की परिणति तत्क्षण भागे ॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

अव तक व्यवहार नीर का न किया है सेवन ।
फसल भी लहलहाई सर्वदा बन दुख का घन ॥

मैं ज्ञान भावना चंदन लाऊँ नामी ।
भव ज्वर का नाश करूं हे अततर्न्नामी ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा उर में जागे ।
मिथ्यात्व मोह की परिणति तत्क्षण भागे ॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

मैं ज्ञान भावना अक्षत लाऊं उज्ज्वल ।
अक्षय पद प्राप्त करूं अपना परमोज्ज्वल ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा उर में जागे ।
मिथ्यात्व मोह की परिणति तत्क्षण भागे ॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

मैं ज्ञान भावना पुष्प सुरभि प्रभु पाऊँ ।
कामाग्नि नाश निष्काम स्वपद प्रगटाऊं ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा उर में जागे ।
मिथ्यात्व मोह की परिणति तत्क्षण भागे ॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

मैं ज्ञान भावना सुचरु अनुभवी लाऊं ।
चिर क्षुधारोग हर तृप्ति पूर्ण प्रभु पाऊं ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा उर में जागे ।
मिथ्यात्व मोह की परिणति तत्क्षण भागे ॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

राग की भूमि से होता नहीं है ज्ञानोत्पन्न ।
हृदय में होता रहा हैसदा से रागोत्पन्न ॥

मैं ज्ञान भावना दीप ज्योति मय लाऊं ।
मोहान्धकार हर उर कैवल्य जगाऊँ ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा उर में जागे ।
मिथ्यात्व मोह की परिणति तत्क्षण भागे ॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

मैं ज्ञान भावना धूप धर्म मय लाऊं ।
वसु कर्मो पर तत्काल नाथ जय पाऊं ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा उर में जागे ।
मिथ्यात्व मोह की परिणति तत्क्षण भागे ॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

मैं ज्ञान भावना फल पाऊं समभावी ।
मैं महामोक्ष फल पाऊं ज्ञान स्वभावी ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा उर में जागे ।
मिथ्यात्व मोह की परिणति तत्क्षण भागे ॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

मैं ज्ञान भावना के ही अर्घ्य बनाऊं ।
पदवी अनर्घ्य पाने को निज में आऊं ॥
चिद्रूप शुद्ध की महिमा उर में जागे ।
मिथ्यात्व मोह की परिणति तत्क्षण भागे ॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

विभावी भाव की परिणति सदा ही दुख देती ।
स्वभावी भाव की परिणति सदा ही सुख देती ॥

अर्घ्यावलि

चुतर्दशम अध्याय

अन्य कार्यो के करने पर भी
शुद्ध चिद्रूप के स्मरण का उपदेश

(१)

नीहाराहारपानं खमदनविजयं स्वापमौनासनं च
यानं शीलं तपांसि व्रतमपि कलयन्नागमं संयमं च ।
दानं गानं जिनानां नुतिनतिजपनं मंदिरं चाभिषेकं,
यात्रार्चे मूर्तिमेवं कलयति सुमतिः शुद्धचिद्रूपकोऽहम् ॥१॥

अर्थ- बुद्धिमान पुरुष जिस प्रकार नीहार खाना, पीना, इंद्रिय और काम का विजय सोना मौन आसन गमन शील तप व्रत आगम संयम दान गान भगवान की स्तुति प्रणाम जप मंदिर अभिषेक तीर्थयात्रा पूजन और प्रतिमाओं के निर्माण आदि करने को आवश्यक कार्य समझते हैं, उसी प्रकार मैं शुद्धचिद्रूप हूँ, ऐसा समझने को भी आवश्यक कार्य मानते हैं ।

१. ॐ ह्रीं नीहाराहारपानाादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अनशनचित्स्वरूपोऽहम् ।

गज़ल

शुद्ध चिद्रूप का ही ध्यान तो सर्वोत्तम है ।
शुद्ध चिद्रूप का ही ध्यान तो परमोत्तम है ॥
चाहे आहार हो नीहार हो जगना सोना ।
मौन आसन हो मदन काम का विजय होना ॥
शील तप दान युत आगम का ज्ञान अरु संयम ।
तीर्थ यात्रा हो या अभिषेक अथवा जिन पूजन ॥
सभी कार्यो के समय आत्मा को ही ध्याओ ।
शुद्ध चिद्रूप हूं ऐसा ही ध्यान उर लाओ ॥

कौन सी चाहिए परिणति बताओ तुम चेतन ।
स्वभाव वाली या विभाव की कहो चेतन ॥

शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥१॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२)

कुर्वन् यात्रार्चनाद्यं खजयजपतपोऽव्यापनं साधुसेवां–
दानौघान्योपकार यमिनियमधरा स्वापशीलं दधानः ।
उद्भीभावं च मौनं व्रतसमितिततिं पालयन् संयमौघं–
चिद्रूपध्यानरक्तो भवति च शिवभाग् नापरः स्वर्गभाक् च ॥२॥

अर्थ जो मनुष्य तीर्थयात्रा भगवान की पूजन इन्द्रियों का जप, जप तप अध्यापन साधुओं की सेवा, दान, अन्य, का उपकार, यम नियम, शील, भय का अभाव मौन, व्रत, और समिति का पालन एवं संयम का आवरण करता हुआ शुद्धचिद्रूप के ध्यान में रक्त है। उसे तो मोक्ष की प्राप्ति होती है। और उससे अन्य, अर्थात् जो शुद्धचिद्रूप का ध्यान न कर तीर्थयात्रा आदि का ही करने वाला है। उसे नियम से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।

२. ॐ ह्रीं यात्रार्चनादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्भयबोधोहम् ।

तीर्थ यात्रा तथा भगवान की पूजन जप तप ।
साधु सेवा सुदान अन्य का उपकार सुव्रत ॥
यम नियम शील मौन समिति गुप्ति व्रत संयम ।
शुद्ध चिद्रूप ध्यानलीन मुक्ति में सक्षम ॥
उसे ही मोक्ष की होती है प्राप्ति अति उत्तम ।
जो है चिद्रूप ध्यान रहित उसे स्वर्ग परम ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥२॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

दोनों परिणति ैह तुम्हारे ही सामने चेतन ।
मेरी मानो तो लो स्वभाव की परिणति चेतन ॥

(३)

चित्तं निधाय चिद्रूपे कुर्याद् वागंगचेष्टिनम् ।
सुधीर्निरन्तरं कुंभे यथा पानीयहारिणी ॥३॥

अर्थ- जो मनुष्य विद्वान हैं। संसार के ताप से रहित होना चाहते हैं। उन्हें चाहिये कि वे घड़े में पनिहारी के समान शुद्धचिद्रूप में अपना चित्तस्थिर कर वचन और शरीर की चेष्टा करें।

३. ॐ ह्रीं वाागङ्गचेष्टारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निष्कायचिद्रूपोऽहम् ।

जो भी संसार ताप से रहित होना चाहें ।
शुद्ध चिद्रूप में थिर होके उसे ही ध्यायें ॥
शुद्ध चिद्रूप से संसार ताप क्षय होता ।
शुद्ध चिद्रूप से संसार दुख विजय होता ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥३॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

वैराग्यं त्रिविधं प्राप्य संगं हित्वा द्विधा ततः ।
तत्त्वविद्गुरुमाश्रित्य ततः स्वीकृत्य संयमम् ॥४॥

अर्थ- जो महानुभाव मन से वचन से और काय से वैराग्य को प्राप्त होकर बाह्य आभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रहों को छोड़कर तत्ववेत्ता गुरु का आश्रय लेकर और संयम को स्वीकार कर समस्त शास्त्रों के अध्ययपूर्वक निर्जन निरुपद्रव स्थान में रहते हैं। और वहां समस्त प्रकार की परित्याग शुभ आसन का धारण पदस्थ पिंडस्थ आदि ध्यानों का अवलंबन समत का आश्रय और मन का निश्चलपना धारण कर शुद्धचिद्रूप का स्मरण ध्यान करे हैं। उनके समस्त पाप जड़ से नष्ट हो जाते हैं। नाना प्रकार के कल्याणों को करने वाले धर्म की वृद्धि होती है और उससे उन्हें मोक्ष मिलता है । ४-५-६

द्वैत जब तक है हृदय में अशान्ति पाओगे ।
जहाँ भी जाओगे तुम वहाँ भ्रान्ति पाओगे ॥

४. ॐ ह्रीं संयमादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

विरागरत्नोहम् ।

मन वचन काय से वैराग्य प्राप्त कर लो तुम ।
सदगुरु तत्त्व वेत्ता से ज्ञान कर लो तुम ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥४॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(५)

अधीत्य सर्वशास्त्राणि निर्जने निरुपद्रवे ।
स्थाने स्थित्वा विमुच्यान्यचिंतां धृत्वा शुभासनम् ॥५॥

५. ॐ ह्रीं शुभासनादिधारणविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानासनस्वरूपोऽहम् ।

बाह्य अरु अंतरंग सर्व परिग्रह तज लो ।
संयम स्वीकार करो शास्त्र अध्ययन कर लो ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥५॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

पदस्थादिकमभ्यस्य कृत्वा साम्यावलंबनम् ।
मानसं निश्चलीकृत्य स्वं चिद्रूपं स्मरन्ति ये ॥६॥

६. ॐ ह्रीं पदस्थादिकध्यानावलम्बनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरावलम्बनसमतारूपोऽहम् ।

शुद्ध अद्वैत भावना का फल कल्याण मयी ।
यही है शान्ति का समुद्र है निर्वाण जयी ॥

निर्जन स्थान निरुपद्रवी में ही रहता ।
सभी चिन्ताएं त्याग शुभाचरण ही करता ॥
ध्यान पिंडस्थ अरु पदस्थका ही अवलंबन ।
समता मय भव्य सौन्दर्य युक्त निश्चल मन ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥६॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

पापानि प्रलयं यांति तेषामभ्युदयप्रदः ।
धर्मो विवर्द्धते मुक्तिप्रदो धर्मश्च जायते ॥७॥

७. ॐ ह्रीं पापप्रलयविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निष्पापस्वरूपोऽहम् ।

ध्यान रूपस्थ फिर हो रूपातीत हितकारी ।
इनके पश्चात् शुक्ल ध्यान ही शिव सुखकारी ॥
जो भी चिद्रूप शुद्ध का ही स्मरण करते ।
पाप होते हैं नष्ट धर्म वृद्धि वे करते ॥
उन्हें ही मोक्षमय कल्याण प्राप्त होता है ।
उनके अंतर में परम सौख्य प्राप्त होता है ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥७॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

वार्ताताग्न्यमृतोषवज्रगरुडज्ञानौषधेभारिणा
सूर्येण प्रियभाषितेन च यथा यांति क्षणेन क्षयम् ।

द्वैतों से बचकर ही रहना है कर्त्तव्य श्रावकों का ।
दुष्पापों की छाया से वचना मन्तव्य श्रावकों का ॥

अग्न्यब्दागविषं मलागफणिनोऽज्ञानं गदेभव्रजाः
रात्रि वैंरमिहावनावघचयश्चिद्रूपसंचिंतया ॥८॥

अर्थ- जिस प्रकार जल अग्नि का क्षय करता है। पवन मेघ का, अग्नि वृक्ष का, अमृत विष का, खार मैल का, वज्र पर्वत का, गरुड सर्प का, ज्ञान अज्ञान का औषध रोग का सिंह हाथियों का, सूर्य रात्रि का और प्रिय भाषण बैर का नाश करता है। उसी प्रकार शुद्धचिद्रूप के चिंतवन करने से समस्त पापों का नाश होता है ।

८. ॐ ह्रीं वैरनाशकप्रियभाषणविकलल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानजलोऽहम् ।

जैसे जल अग्नि क्षय करता है पवन मेघों का ।
अग्नि तरु नाश अमृत विष का क्षार मैलों का ॥
वज्र पर्वत का गरुड़ सर्प का औषधि रोगों का ।
सिंह हाथी का सूर्य रात्रि का वच बैरों का ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥८॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

वर्द्धन्ते च यथा मेघात्पूर्व जाता महीरुहाः ।
तथा चिद्रूपसदध्यानात् धर्मश्चाभ्युदयप्रदः ॥९॥

अर्थ- जिस प्रकार पहिले से ऊगे हुए वृक्ष मेघ के जल से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार शुद्धचिद्रूप के ध्यान से धर्म भी वृद्धि को प्राप्त होता है। और नाना प्रकार के कल्याणों को प्रदान करता है ।

९. ॐ ह्रीं अभ्युदयप्रदधर्मविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अक्षयनिजधर्मरूपोऽहम् ।

पूर्व से उगा वृक्ष मेघ जल से बृद्धिंगत ।
त्यों ही चिद्रूप ध्यान से हो धर्म बृद्धिंगत ॥

निर्मल शुद्धलिंग जिनपाकर उसे भ्रष्ट मत कर देना ।
पंच महाव्रत धारे है तो उन्हें नष्ट मत कर देना ॥

शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥९॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

यथा वलाहकवृष्टेर्जायंते हरितांकुराः ।
तथा मुक्ति प्रदो धर्मः शुद्धचिद्रूपचिंतनात् ॥१०॥

अर्थ- जिस प्रकार मेघ से भूमि के अन्दर हरे हरे अंकुर उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार शुद्धचिद्रूप के चिंतवन करने से मुक्ति प्रदान करने वाला धर्म भी उत्पन्न होता है। अर्थात् शुद्धचिद्रूप के ध्यान से अनुपम धर्म की प्राप्ति होती है। और उसकी सहायता से जीव मोक्ष सुख का अनुभव करते हैं ।

१०. ॐ ह्रीं मुक्तिप्रदधर्मविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

स्वानन्दोऽहम् ।

जिस तरह मेघ जल से ऊगते सदा अंकुर ।
त्यों ही चिद्रूप चिन्तवन से धर्म हो सुखकर ॥
शुद्ध चिद्रूप ध्यान से ही धर्म होता है ।
जीव को मोक्ष सुख का स्वानुभव ही होता है ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥१०॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

व्रतानि शास्त्राणि तपांसि निर्जने, निवासमंतर्बहि :संगमोचनम् ।
मौनं क्षमातापनयोगधारणं चिच्चिन्तयामा कलयन् शिवं श्रयेत्॥११॥

अर्थ- जो विद्वान पुरुष शुद्धचिद्रूप के चिंतवन के साथ व्रतों का आचरण करता है। शास्त्रों का स्वाध्याय तप का आराधन, निर्जन वन में निवास, बाह्य. आभ्यन्तर, परिग्रह का त्याग मौन, क्षमा, और आतापन योग धारण करता है । उसे ही मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति

पिछी मयूर पास में रखना जीव दया का महा प्रतीक ।
काष्ठ कमंडल संग में रखना जो है शुचिता भाव प्रतीक॥

होती है ।

११. ॐ ह्रीं मौनक्षमातापनयोगधारणादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

प्रशान्तसागरस्वरूपोऽहम् ।

जो भी चिद्रूप शुद्ध के ही संग व्रत करता ।
शास्त्र स्वाध्याय तपों का ही आराधन करता ॥
निर्जन वन में निवास सकल परिग्रह तजता ।
अपने चिद्रूप शुद्ध का ही सदा वह भजता ॥
क्षमा व मौन योग आतापन धारण करता ।
मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति वही जीव तो करता ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥११॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

शुद्धचिद्रूपके रक्तः शरीरादिपराङ्मुखः ।
राज्यं कुर्वन्न बंधेत कर्मणो भरतो यथा ॥१२॥

अर्थ- जो पुरुष शरीर स्त्री पुत्र आदि से ममत्व छोड़कर शुद्धचिद्रूप में अनुराग करने वाला है, वह राज्य करता हुआ भी कर्मो से नहीं बंधता। जैसे कि चक्रवर्ती राजा भरत।

१२. ॐ ह्रीं शरीरादिपराङ्मुखविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्ममत्वसुखस्वरूपोऽहम् ।

जो पुरुष देह आदि से ममत्व तजता है ।
राजा होकर भी वह कर्मो से नहीं बंधता है ॥
चक्रवर्त्ती भरत की भांति हो ममत्व रहित ।
प्राप्त करता है मोक्ष सुख परम कैवल्य सहित ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥१२॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

अनंत धर्मो का अधिपति हूँ शक्ति अनंतों से संपन्न ।
शुद्ध ज्ञान अवतरण प्राप्त कर करूं मोक्ष सुख को उत्पन्न॥

(१३)

स्मरन् स्वशुद्धचिद्रूपं कुर्यात्कार्यशतान्यपि ।
तथापि न हि वध्येत धीमानशुभकर्मणा ॥१३॥

अर्थ- आत्मिक शशधचिद्रूप का स्मरण करता हुआ बुद्धिमान पुरुष यदि सैकड़ों भी अन्य अन्य कार्य करें। तथापि उसकी आत्मा के साथ किसी प्रकार के अशुभ कर्म का बंध नहीं होता ।

१३. ॐ ह्रीं शतकार्यविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अविकारज्ञानस्वरूपोऽहम् ।

शुद्ध चिद्रूप का स्मरण जो भी करता है ।
अन्य कार्यो को भी करता हुआ न बंधता है ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥१३॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

रोगेण पीड़ितो देही यष्टिमुष्टयादिताडितः ।
वद्धो रज्ज्वादिभिर्दुःखी न चिद्रूपं निजं स्मरन् ॥१४॥

अर्थ- जो मनुष्य शुद्धचिद्रूप का स्मरण करने वाला है। चाहे वह कैसे भी रोग पीड़ित क्यों न हो। लाठी मुक्कों से ताड़ित और रस्सी आदि से भी क्यों न बंधा हुआ हो। उसे जरा भी क्लेश नहीं होता। अर्थात् वह यह जानकर कि ये सारी व्याधियां शरीर में होती हैं, मेरे शुद्धचिद्रूप में नहीं और शरीर मुझसे सर्वथा भिन्न है रंच मात्रा भी दुःख का अनुभव नहीं करता ।

१४. ॐ ह्रीं यष्टिमुष्ट्यादिताडनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

नीरोगस्वरूपोऽहम् ।

शुद्ध चिद्रूप का ही स्मरण जिसे होता ।
बाहय व्याधि में उसे फिर भी क्लेश ना होता ॥

जब तक पर का आलंबन है कर्मो का रुकता न प्रवाह।
जब निज का अवलंबन होता तब आता है शुद्ध स्वभाव॥

जानता है वह व्याधियां तो देह में होतीं ।
मैं तो हूँ भिन्न देह से नहीं मुझमें होतीं ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥१४॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

बुभुक्षया च शीतेन वातेन च विपासया ।
आतपेन भवेन्नार्तो निजचिद्रूपचिंतनात् ॥१५॥

अर्थ- आत्मिक शुद्धचिद्रूप के चिंतवन से मनुष्य को भूख ठंड पवन प्यास और आताप की भी बाधा नहीं होती। भूख आदि की बाधा होने पर भी वह आनन्द ही मानता है ।

१५. ॐ ह्रीं शीतवातातपपिपासादिपीडाररहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

आनन्दजलामृतस्वरूपोऽहम् ।

ग्रीष्म हो ठण्ड पवन प्यास अरु आताप भी हो ।
शुद्ध चिद्रूप के चिन्तन में नहीं बाधा हो ॥
वह तो आनंद मानता है आत्म चिन्तन में ।
वह तो हैं मग्न सतत अपने ही आनंदधन में ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥१५॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

हर्षो नजायते स्तुत्या विषादो न स्वनिंदया ।
स्वकीयं शुद्धचिद्रूपमन्वहं स्मरतोऽगिनः ॥१६॥

अर्थ- जो प्रतिदिन शुद्धचिद्रूप का स्मरण ध्यान करता है। उसे दूसरे मनुष्यों से अपनी स्तुति सुनकर हर्ष नहीं होता और निंदा सुनकर किसी प्रकार का विषाद नहीं होत। निंदा स्तुति दोनों दसा में वह मध्यास्थ रूप से रहता है ।

स्वपर प्रकाश का महिमा धारी ज्ञान जानता लोकालोक।
निर्मल हो जाता है चेतन निज स्वभाव निधिको अवलोक॥

१६. ॐ ह्रीं स्तुतिनिन्दाहर्षविषादादिवकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

समतारत्नस्वरूपोऽहम् ।

शुद्ध चिद्रूप नित्य जो भी स्मरण करता ।
निन्दा संस्तुति में हर्ष या विषाद ना करता ॥
वह तो मध्यस्थ ही रहता है साम्यभावी बन ।
शुद्ध चिद्रूप ध्यान में ही बिताता जीवन ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥१६॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

रागद्वेषौ न जायेते परद्रव्ये गतागते ।
शुभाशुभेऽगिनः शुद्धचिद्रूपासक्तचेतसः ॥१७॥

अर्थ- जिस मनुष्य का चित्त शुद्धचिद्रूप में आसक्त है। वह स्त्री पुत्र आदि पर द्रव्य के चले जाने पर द्वेष नहीं करता। और उनकी प्राप्ति में अनुरक्त नहीं होता। तथा अच्छी बुरी बातों के प्राप्त हो जाने पर भी उसे किसी प्रकार का राग द्वेष नहीं होता ।

१७. ॐ ह्रीं गतागतपरद्रव्यविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

गमनागमनरहितोऽहम् ।

जो भी चिद्रूप शुद्ध में सदा रहता आसक्त ।
जाएं पर द्रव्य द्वेष से भी न होता संयुक्त ॥
नहीं अनुरक्त होता कभी उनके आने पर ।
द्वेष करता ही नहीं उनके चले जाने पर ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥१७॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

द्वैत भाव विद्रूपी हैं तो अंधकार उर में घन घोर ।
यदि अद्वैत भाव हो उर में तो हो जाती सम्यक् भोर ॥

(१८)

न संपदि प्रमोदः स्यात् शोको नापदि धीमताम् ।
आहोस्वित्सर्वदात्मीयशुद्धचिद्रूपचेतसाम् ॥१८॥

अर्थ- सदा शुद्धचिद्रूप में मन लगाने वाले बुद्धिमान पुरुषों को संपत्ति के प्राप्त हो जाने पर हर्ष और विपत्ति के आने पर विषाद नहीं होता। वे संपत्ति और विपत्ति को समान रूप से मानते हैं ।

१८. ॐ ह्रीं संपदापदरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानवैभवस्वरूपोऽहम् ।

प्राप्त संपत्ति हो तो हर्ष नहीं करता है ।
प्राप्त आपत्ति होतो शोक नहीं करता है ॥
चाहे संपत्ति हो चाहे विपत्ति रहता सम ।
शुद्ध चिद्रूप ध्यान से हुआ है यह सक्षम ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥१८॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

स्वकीयं शुद्धचिद्रूपं ये न मुञ्चन्ति सर्वदा ।
गच्छन्तोऽप्यन्यलोकं ते सम्यगभ्यासतो न हि ॥१९॥

अर्थ- जो महानुभाव आत्मिक शुद्धचिद्रूप का कभी त्याग नहीं करते वे यदि अनन्य भव में भी चले जायं, तो भी उनके शुद्धचिद्रूप का अभ्यास नहीं छूटता। पहिले भव में जैसी उनकी शुद्धचिद्रूप में लीनता रहती है वैसी ही बनी रहती है। इसलिये हे आत्मन्! तू शुद्धचिद्रूप के ध्यान का इस रूप से सदा अभ्यास कर, जिससे कि भयंकर दुःख और मरण के प्राप्त हो जाने पर भी उसका विनाश न हो। वह ज्यों का त्यों बना रहे । १९-२०

१९. ॐ ह्रीं अन्यलोकगमनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चिल्लोकस्वरूपोऽहम् ।

बाह्य द्रव्य का अवलंबन ले जो होता है आत्म विमुख ।
वह न कभी भी हो सकता है निज स्वरूप के भी सन्मुख॥

शुद्ध चिद्रूप नहीं जानते हैं जो प्राणी ।
जाएं पर भव में भी तो संग ले जाते प्राणी ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥१९॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

तथा कुरु सदीभ्यासं शुद्धचिद्रूपचिन्तने ।
संक्लेशे मरणे चापि तद्विनाशं यथैति न ॥२०॥

२०. ॐ ह्रीं मरणरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चिदमृतस्वरूपोऽहम् ।

शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति का ही तुम प्रयास करो ।
संग ले जओगे परभव में ये विश्वास करो ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥२०॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२१)

वदन्नन्यै र्हसन् गच्छन पाठयन्नागमं पठन् ।
आसनं शयनं कुर्वन शोचनं रोदनं भयम् ॥२१॥

अर्थ- जो मनुष्य बुद्धिमान हैं। यथार्थ में शुद्धचिद्रूप के स्वरूप के जानकार हैं। वे कर्मो के फंदे में फंसकर बोलते हंसते, चलते, आगम का पढ़ाते, पढ़ते बैठते सोते, शोक करते, रोते, डरते, खाते, पीते, और क्रोध लोभ आदि को भी करते हुए क्षणभर के लिए भी शुद्धचिद्रूप के स्वरूप से विचलित नहीं होते। प्रतिक्षण वे शुद्धचिद्रूप का ही चिन्तवन करते रहते हैं। २१-२२

२१. ॐ ह्रीं आसनशयनशोचनरोदनादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्मलबोधामृतस्वरूपोऽहम् ।

आश्चर्य तो इस धरती पर हमने सुना मात्र इकला ।
चक्रवर्ती निज वैभव भूला राज्य बढ़ाने को निकला ॥

शुद्ध चिद्रूप के यथार्थ में जो ज्ञानी हैं ।
कर्म वश रहते सतत फिर भी शुद्ध ध्यानी है ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥२१॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२२)

भोजनं क्रोधलोभादि कुर्वन कर्मवशात् सुधीः ।
न मुञ्चति क्षणार्द्ध स्वशुद्धचिद्रूपचिन्तनम् ॥२२॥

२२. ॐ ह्रीं भोजनक्रोधलोभादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्लोभस्वरूपोऽहम् ।

शुद्ध चिद्रूप से विचलित न कभी होते हैं ।
धोर प्रतिकूलता हो चलित नहीं होते हैं ॥
शुद्ध चिद्रूप का ही चिन्तवन करते रहते ।
पूर्ण आनंद सरोवर में ही बहते रहते ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन ही श्रेष्ठ है प्रतिक्षण ।
शुद्ध चिद्रूप से कटते हैं कर्म के बंधन ॥२२॥

ॐ ह्रीं भट्टारकज्ञानभूषणविरचित तत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचिद्रूप स्मरन्नन्यकार्यकरोतीति प्रतिपादक चतुर्दशाध्याये सहजानन्दस्वरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्य

छंद हे दीन बंधु

सक्षम नहीं है आत्मा परभाव के लिए ।
सक्षम है अपनी आत्मा निज भाव के लिए ॥
पर का न कुछ भी कर सकी है आज तक कभी ।
दुश्मन रही है यह सदा विभाव के लिए ॥

मोह हो मंद तो समकित का वृक्ष फलता है ।
शुद्ध निज ध्यान की हो तो आत्म धर्म पलता है ॥

है गुण अनंत पास में मुहताज नहीं है ।
करती नहीं है याचना स्वभाव के लिए ॥
कर्मो का आवरण है मगर पूर्ण शुद्ध है ।
प्रस्तुत हुई है कर्म के अभाव के लिए ॥
साधन है साध्य यही यही है साधक ।
यह मोक्ष स्वरूपी है सदा आप के लिए ॥
चिद्रूप शुद्ध का ही इसे करना है स्वज्ञान ।
यह ज्ञान सुलभ है सदैव आप के लिए ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पित करूं भव विडंबना भूल ।
एक शुद्ध चिद्रूप ही परम शान्ति का मूल ॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समनिक्त श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्य नि. ।

जयमाला

छंद समान सवैया

निज स्वरूप जो भूल रहे हैं वे कर्म के जाल वश रहे।
होता शोक उन्हें सदैव ही वे रागों के बीच फंस रहे ॥
आत्मा अजर अमर अविनाशी यह सिद्धान्त अटल अविचल है ।
ज्ञान भावना बिनो न होता ज्ञान कभी भी नियम अटल है॥
जीव अनंतों कर्म श्रंखला से अपने को स्वयं कस रहा है।
इस प्रकार यह हरा भरा रहता है भव दुख वृक्ष सदा ही॥
भव तरु मूल उखाड़ फेंकता ज्ञानी निज केहाथ सदा ही।
महामोह मिथ्यात्व गरल पी मत बाले बन हम विवश रहे॥
मरने पर भी हम रोते हैं जीने पर भी हम रोते हैं ।
फँसे हुए अज्ञान भाव में मोह नींद में हम सोते हैं ॥

रागिनी राग की हो तो अंधेरा हो जाता ।
ज्ञान की भावना हो तो उजाला हो जाता ॥

समभावी रोते न कभी भी वे सम होकर सदा हँस रहे ।
छोड़ो शोक मनाओं खुशियां आने पर भी जाने पर भी ॥
जन्म मरण कर्मानुरूप है नहीं छूटता यह पल भर भी ।
वही छूटते ज्ञान कसौटी पर जो निज को सतत कस रहे॥
पाप पुण्य की परिभाषाएँसबकी अलग अलग होती है।
पाप पुण्य से रहित दशाएँ ही कर्मो का मल धोती है ॥
कर्म रहित जो हो जाते हैं वे नूतन आनंद कर रहे ।
सिद्ध स्वपद के जो अधिपति हैं वे ही शाश्वत सुख पाते हैं ॥
जो कर्मो के जाल बुन रहे वे सदैव ही दुख पाते हैं ।
समभावी बन जाओ देखो भीतर कोई अब न विष रहे ॥
वे ही धन्य हुए हैं जग में हर्ष शोक से जो विरहित है ।
आत्म ध्यान तल्लीन सदा है त्रैकालिक ध्रुव लक्ष्य सहित है ॥
निज स्वरूप से ही है परिचय नहीं राग में रंच बस रहो।
एक शुद्ध चिद्रूप शक्ति का स्वामी चिदानंद चेतन है ॥
परम अहिंसा रूप यही है एकमात्र ज्ञायक चेतन है ।
ऐसा कुछ कर जाओ जिससे इस त्रिभुवन में सदा यश रहो॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

एक शुद्ध चिद्रूप ही अपना शुद्ध स्वभाव ।
रागादिक का नाश कर प्रगटाता निज भाव ॥

इत्याशीर्वाद :

दर्शनी भाव जब होता तभी आनंद आता है ।
विभावी बादली का भ्रम निमिष में नाश पाता है ॥

ॐ

पूजन क्रमांक १६

तत्त्वज्ञान तरंगिणी पंचदशम अध्याय पूजन

स्थापना

छंद गीतिका

तत्त्वज्ञान तरंगिणी अध्याय पंचदशम महान ।
शुद्ध निज चिद्रूप लाने का करो श्रम कुछ सुजान ॥
द्रव्य पर सब त्याग कर दो तभी होगा सहज प्राप्त ।
आस्रव से रहित होलो त्वरित होलो पूर्ण आप्त ॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहित भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद विधाता

शुद्ध चिद्रूप की गंगा जन्म मरणादि दुख हरती ।
निजात्मा शुद्ध करती है अतीन्द्रिय सौख्य उर भरती ॥
शुद्ध चिद्रूप को ध्याऊं शुद्ध चिद्रूप उर लाऊं ।
परम निज ज्ञान धारा से प्रभो तत्काल जुड़ जाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

सरोवर ज्ञान का लहरा के मुझको ही बुलाता है ।
अतीन्द्रिय सौख्य का सागर हृदय में स्वयं आता है ॥

शुद्ध चिद्रूप का चंदन भवातप ज्वरविनाशक है ।
बिना श्रम सौख्य का दाता स्वपर ज्ञायक प्रकाशक है ॥
शुद्ध चिद्रूप को ध्याऊं शुद्ध चिद्रूप उर लाऊं ।
परम निज ज्ञान धारा से प्रभो तत्काल जुड़ जाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

शुद्ध चिद्रूप के अक्षत स्व अक्षय पद प्रदायक हैं ।
परम शिव स्रोत हैं अनुपम मुक्ति सुख के विधायक हैं ॥
शुद्ध चिद्रूप को ध्याऊं शुद्ध चिद्रूप उर लाऊं ।
परम निज ज्ञान धारा से प्रभो तत्काल जुड़ जाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

शुद्ध चिद्रूप के ही पुष्प की निज गंध पावन है ।
काम की पीर क्षय कर्त्ता शील गुण की प्रकाशन है ॥
शुद्ध चिद्रूप को ध्याऊं शुद्ध चिद्रूप उर लाऊं ।
परम निज ज्ञान धारा से प्रभो तत्काल जुड़ जाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

शुद्ध चिद्रूप के मनहर सुचरु ही मुझको भाते हैं ।
तृप्ति दायक परम सुखमय मार्ग ये ही बताते हैं ॥
शुद्ध चिद्रूप को ध्याऊं शुद्ध चिद्रूप उर लाऊं ।
परम निज ज्ञान धारा से प्रभो तत्काल जुड़ जाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

मोह के घन अगर हों तो उजाला कैसे आएगा ।
दुष्ट मिथ्यात्व है जब तक अंधेरा बढ़ता जाएगा ॥

शुद्ध चिद्रूप की ध्रुव ज्योति भव विभ्रम विनाशक है ।
मोह मिथ्यात्व तम हरती महा महिमा प्रकाशक है ॥
शुद्ध चिद्रूप को ध्याऊं शुद्ध चिद्रूप उर लाऊं ।
परम निज ज्ञान धारा से प्रभो तत्काल जुड़ जाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

शुद्ध चिद्रूप की निज धूप मैंने आज पायी है ।
कर्म क्षय की सजग बेला स्वतः ही पास आयी है ॥
शुद्ध चिद्रूप को ध्याऊं शुद्ध चिद्रूप उर लाऊं ।
परम निज ज्ञान धारा से प्रभो तत्काल जुड़ जाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

शुद्ध चिद्रूप का ही ध्यान मैंने अब लगाया है ।
मोक्ष फल प्राप्ति का ही श्रम मुझे हे प्रभु सुहाया है ॥
शुद्ध चिद्रूप को ध्याऊं शुद्ध चिद्रूप उर लाऊं ।
परम निज ज्ञान धारा से प्रभो तत्काल जुड़ जाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

शुद्ध चिद्रूप का ही अर्घ्य हे प्रभु मैं चढ़ाऊंगा ।
कर्म वसु नाश करने को ध्यान अपना लगाऊंगा ॥
शुद्ध चिद्रूप को ध्याऊं शुद्ध चिद्रूप उर लाऊं ।
परम निज ज्ञान धारा से प्रभो तत्काल जुड़ जाऊं ॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

मिली संयम की तरणी तो तुम्हें कोई नहीं भय है ।
भवोदधि पार जाएगी हृदय में पूर्ण निश्चय है ॥

अर्घ्यावलि

पंचदशम अध्याय

शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति के लिए
पर द्रव्यों के त्याग का उपदेश

(१)

गृहं राज्यं मित्रं जनकजननीं भ्रातृपुत्रं कलत्रं–
सुवर्ण रत्नं वा पुरजनपदं वाहनं भूषणं वै ।
खसौख्यं क्रोधाद्यं वसनमशनं चित्तवाक्कायकर्म
त्रिधा मुंचेत्प्राज्ञः शुभमपि निज शुद्धचिद्रूपलब्ध्यै ॥१॥

अर्थ- बुद्धिमान मनुष्यं को शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति के लिये शुभ होने पर भी अपने घर, राज्य, मित्र, पिता, माता, भाई, पुत्र, स्त्री, सुवर्ण, रत्न, पुर, जनपद, सवारी, भूषण, इन्द्रियजन्य सुख, क्रोध, वस्त्र और भोजन आदिक मन वचन काय से सर्वथा त्याग देना चाहिये ।

१. ॐ ह्रीं गृहराज्यमित्रजनकादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

स्वसौख्यरत्नालयस्वरूपोऽहम् ।

छंद हरिगीतिका

प्राप्ति निज चिद्रूप की जो चाहते सम्यक् यथा ।
मन वचन तन पूर्वक परभाव तजते सर्वथा ॥
राज्य घर माता पिता सुत भ्रात मित्र कलत्र सब ।
स्वर्ग जनपद रत्नभूषण सवारी दें त्याग सब ॥
ध्यान इनकी ओर जाता अतः ये बाधक सभी ।
शुद्ध निज चिद्रूप पाने को तजो इनको अभी ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥१॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

भवोदधि पार शिव तरु है जहां आनंद मिलता है ।
सिद्ध पद प्राप्त होता है सौख्य उर पूर्ण झिलता है ॥

(२)

सुतादौ भार्यदौ वपुषि सदने पुस्तकधने,
पुरादौ मंत्रादौ यशसि पठने राज्यकदने ।
गवादौ भक्तादौ सुह्रदि दिवि वाहे खविषये,
कुधर्मे वांछा स्यात् सुरतरुमुखे मोहवशतः ॥२॥

अर्थ- इस दीन जीव की मोह के वश से पुत्र, पुत्री, स्त्री, माता, शरीर, घर, पुस्तक, धन, पुर नगर मन्त्र कीर्ति ग्रन्थ का अभ्यास राज्य युद्ध गौ हाथी भोजन, मित्र स्वर्ग सवारी इन्द्रियों के विषय कुधर्म कल्पवृक्ष आदि में वांछा होती है ।

२. ॐ ह्रीं सुतभार्यादिवाञ्छारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरीच्छस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीता

मोह वश इस जीव को पुत्रादि सुख की बांछा ।
राज्य धन गज कीर्ति मित्रों की सदा आकांक्षा ॥
इन्द्रियों के विषय सुख रस स्वर्ग और कुधर्म की ।
महत्वाकांक्षा ह्रदय में इस तरह के कर्म की ॥
मोह का कैसा उदय है मूढ़ रत संसार में ।
मोह क्षय बिन नहीं जाता कभी भव के पार में ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥२॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

किं पर्यायैर्विभावैस्तव हि चिदचितां व्यंजनार्थाभिधानै–
रागद्वेषाप्तिवीजैर्जगति परिचितैःकारणै संसृतेश्च ।
मत्वैवं त्वं चिदात्मन् परिहर सततं चिंतनं मुंक्षु तेषां–
शुद्धै द्रव्ये चिति स्वे स्थितिमचलतयांतर्दृशां सं विधेहि ॥३॥

स्वदेशी व्रत लिया है तो विदेशों में न तुम जाना ।
दिगम्बर वेश धारण कर मुक्ति के मार्ग पर आना ॥

अर्थ- चिदात्मन्! संसार में चेन और अचतेन की जो अर्थ और व्यंजन पर्यायें मालूम पड़ रही है। वे सब स्वभाव नहीं। विभाव हैं। निंदित हैं। राग द्वेष आदि की और संसार की कारण हैं। ऐसा भले प्रकरा निश्चय कर तू इनका विचार करनाा छोड़ दे। और आत्मिक शुद्ध चिद्रूप को अपनी अंतदृष्टि से भले प्रकार पहिचान कर उसी में निश्चल रूप से स्थिति कर ।

३. ॐ ह्रीं व्यञनार्थपर्यायरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निराकारस्वरूपोऽहम् ।

चेतन अचेतन अर्थ अरु पर्याय व्यंजन जान लो ।
ये स्वभाव नहीं अणुभर हैं विभाव पिछान लो ॥
राग द्वेषादिक विभावी भाव हैं संसार के ।
दृष्टि इन पर से हटाओ बंध हैं संसार के ॥
बनो अन्तर्दृष्टि आत्मिक जान निज चिद्रूप को ।
उसी में निश्चल सुथिर रह लखो आत्म स्वरूप को ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥३॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

स्वर्णै रत्नै र्गृहैः स्त्रीसुतरथशिविकाश्वेभभृत्यैरसंख्यै–
र्भूषावस्त्रैः खगाद्यैर्जनपदनगरैश्चामरैः सिंहपीठैः ।
छत्रैरस्त्रैर्विचित्रै र्वरतरशयनैर्भाजनैर्भोजनैश्च
लब्धैः पांडित्यमुख्यै र्नभवतिकपुरुषो व्याकुलस्तीव्रमोहात् ॥४॥

अर्थ- यह पुरुष मोह की तीव्रता के आकुलता के कारणस्वरूप सुवर्ण, रत्न, घर, स्त्री, पुत्र, रथ, पालकी, घोड़े, हाथी, भृत्य भूषण, वस्त्र माला, देश, नगर, चमर, सिंहासन, छत्र, स्त्र शयन, भोजन और विद्वत्ता, आदि से व्याकुल नहीं होता ।

रंगोली ज्ञान की रचना दर्शनी शुद्ध केवल की ।
सारिका गीत गाएगी तुम्हारे यश समुज्जवल की ॥

४. ॐ ह्रीं रथशिबिकाभूषावस्त्रादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानरथस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीता

तीव्र मोहाकुल पुरुष ही दुखी रहते हैं सदा ।
स्वर्ग स्त्री पुत्र आदिक प्राप्ति हित व्याकुल सदा ॥
मोह की इस तीव्रता से निराकुल होता नहीं ।
कष्ट पाता है बहुत व्याकुल मगर होता नहीं ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥४॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(५)

रैगोभार्यः सुताश्चा गृहवसनरथाः क्षेत्रदासीभशिष्याः –
कर्पूराभूषणाद्यापणवनिशिविका बंधुमित्रायुधाद्याः ।
मंचा वाब्यादिभृत्यातपहरणखगाः स्तूर्यपात्रासनाद्याः,
दुःखानां हेतवोऽमी कलयाति विमतिः सौख्यहेतून् किलैतान् ॥५॥

अर्थ- देखो! इस बुद्धिशून्य जीव की समझदारी! जो धन, गाय, स्त्री,. पुत्री, अश्व, घर, वस्त्र, रथ क्षेत्र, दासी, हाथी, शिष्य, कपूर, आभूषण दुकान वन, पालकी, बंधु मित्र, आयुध, मंच (पलंग) बावड़ी, भृत्य छत्र, पक्षी, सूर्य, भाजन और आसन आदि पदार्थ दुख के कारण हैं। जिन्हें अपनाने से जरा भी सुख नहीं मिलता। उन्हें यह सुख के कारण मानता है। अपने मान रात दिन उनको प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करता रहता है ।

५. ॐ ह्रीं सूर्यपात्रभृत्यारिहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चैतन्यभास्करस्वरूपोऽहम् ।

बुद्धि शून्य मनुष्य की क्या समझदारी जानिये ।
क्षेत्र रथ गृह राज्य वैभव आदि दुखमय मानिये ॥

जो मुनि आत्म ध्यान को तजकर रातों में बातें करते ।
घोर रसातल में जाने को अपनी साधु दशा हरते ॥

इन्हें ही यह सौख्य का कारण जनम से मानता ।
मान अपना उन्हें मूरख देह जड़ निज जानता ॥
इन्हें पाने के लिए है यत्न शील सदैव ही ।
किन्तु ये सब पुण्य के आधीन होते सदा ही ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥५॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

हंस! स्मरसि द्रव्याणि पराणि प्रत्यहं यथा ।
तथा चेत् शुद्धचिद्रूपं मुक्तिः किं ते न हस्तगा ॥६॥

अर्थ- हे आत्मन्! जिस प्रकार प्रतिदिन तू परद्रव्यं का समरण करा है। स्त्री पुत्र आदि को अपना मान उन्हीं की चिंता में मग्न रहताा है। उसी प्रकार यदि तू शुद्धचिद्रूप का भी स्मरण करे। उसी के ध्यान और चिन्तवन में अपना समय व्यतीत करे, तो क्या तेरे लिये मोक्ष समीप न रह जाय। अर्थात् तू बहुत शीघ्र ही मोक्ष सुख का अनुबव करने लग जाय ।

६. ॐ ह्रीं स्त्रीपुत्रादिचिन्तामग्नत्वरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

आनन्दश्रीस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीता

जिस तरह पर द्रव्य का स्मरण करता रात दिन ।
मानकर पर द्रव्य अपना मग्न चिन्ता रात दिन ॥
उस तरह चिद्रूप शुद्ध महान का हो स्मरण ।
समय बीते ध्यान चिन्तन में मिले फिर मुक्ति धन ॥
मोक्ष होगा निकट तेरे जिनागम का कथन है ।
मोक्ष सुख अनुभव करेगा जिनवरों का वचन है ॥

वीतराग विज्ञान स्वभावी फिर भी दुख से दहक रहा ।
अशुचि आश्रव के भावों से रुचि करके ये बहक रहा ॥

शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥६॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

लोकस्य चात्मनो यत्नं रंजनाय करोति यत् ।
तच्चेन्निराकुलत्वाय तर्हि दूरे न तत्पदम् ॥७॥

अर्थ- इस प्रकार यह जीव अपने और लोक के रंजाय मान करने के लिये प्रतिदिन उपाय करता रहता है उसी प्रकार यदि निराकुलतामय मोक्षसुख की प्राप्ति के लिये उपाय करे तो वह मोक्ष स्थान जरा भी उसके लिये दूर न रहे बहुत जल्दी प्राप्त हो जाय ।

७. ॐ ह्रीं स्वपररञ्जनोपायरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निराकुलानन्दस्वरूपोऽहम् ।

लोक रंजन के लिए ही कर रहा प्रतिक्षण उपाय ।
निराकुल सुख मोक्ष पाने का नहीं करता उपाय ॥
अगर थोड़ा भी करे तू ध्यान से सम्यक् उपाय ।
प्राप्त होगा मोक्ष तुझको शाश्वत शिव सौख्य दाय ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥७॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

रंजने परिणामः स्यात् विभावो हि चिदात्मनि ।
निराकुले स्वभावः स्यात् तं विना नास्ति सत्सुखम् ॥८॥

अर्थ- अपने और पर के रंजायमान करने वाले चिदात्मा में जो जीव का परिणाम लगाता है, वह तो विभाव परिणाम गिना जाता है। और निराकुल शुद्धचिद्रूप में जो लगता है, वह स्वभाव परिणाम कहा जाता है। तथा इस परिणाम से ही सच्चे सुख की प्राप्ति होती है। उसके बिना कदापि सच्चा सुख नहीं मिल सकता ।

मेरी वैभाविक परिणति ही भव भव तक दुखदायी है ।
मेरी स्वाभाविक परिणति ही सदा सदा सुखदायी है ॥

८. ॐ ह्रीं निराकुलशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

सच्चित्सौख्यस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीता

स्वपर को रंजायमान बनाने का भाव है ।
विभावी परिणाम है यह नहीं आत्म स्वभाव है ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥८॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

संयोगविप्रयोगौ च रागद्वेषौ सुखासुखे ।
तद्भवे ऽत्रभवे नित्यं दृश्येते तद्भव त्यज ॥९॥

अर्थ- क्यों तो यह भव और क्या परभव? दोनों भवों से जीव को संयोग वियोग राग द्वेष और सुख दुख का समाना करना पड़ता है; इसलिये हे आत्मन्! तू इस संसार का त्याग कर दे ।

९. ॐ ह्रीं संयोगवियोगरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

विज्ञानघनानन्दोऽहम् ।

हरिगीता

कहाँ यह भव कहाँ पर भव सभी में है राग द्वेष ।
जीव को संयोग और वियोग दुख है सतत क्लेश ॥
इसलिए हे आत्मन् संसार का तू त्याग कर ।
स्वपर को रंजायमान बना कर पर भाव हर ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥९॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

आराधना करो निज ज्ञायक प्रभु की दो स्वभाव पर दृष्टि।
वस्तु स्वरूप निष्ठ होते ही होगी अनुभव रस की वृष्टि॥

(१०)

शास्त्राद् गुरोः सधर्मादेर्ज्ञानमुत्पाद्य चात्मनः ।
तस्यावलंबनं कृत्वा तिष्ठ मुंचान्यसंगतिम् ॥१०॥

अर्थ- शास्त्र सदगुरु और साधर्मी भाइयों से अपनी आत्मा का वास्तविक स्वरूप पहचान कर उसी (आत्मा) का अवलम्बन कर। उसी के स्वरूप का मनन ध्यान और चिंतवन कर पर पदार्थों का संसर्ग करना छोड़ दे। उन्हें अपना मन मान ।

१०. ॐ ह्रीं परपदार्थसंसर्गरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अलेपस्वरूपोऽहम् ।

शास्त्र सद्गुरु तथा साधर्मी सभी से ज्ञान ले ।
आत्मा को जान उसका आश्रय कर भान ले ॥
छोड़ दे पर पदार्थो का आज से संसर्ग सब ।
मनन चिन्तन ध्यान निज चिद्रूप का ही सतत अब ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥१०॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

अवश्यं च परद्रव्यं नश्यत्येव न संशयः ।
तद्विनाशे विधातव्यो न शोको धीमता क्वचित् ॥११॥

अर्थ- जो पर द्रव्य है, उसका नाश अवश्य होता है। कोई भी उसके नाश को नहीं रोक सकता; इसलिये जो पुरुष बुद्धिमान है। स्वद्रव्य और परद्रव्य के स्वरूप के भले प्रकार जानकार है। उन्हे चाहिये कि वे उनके नाश होने पर कभी किसी प्रकार का शोक न करें ।

११. ॐ ह्रीं नश्वरपरपदार्थविषयकशोकरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अविनश्वरज्ञानस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीता

आनंद का रस कंद हूँ मैं शान्ति का सागर महान ।
चैतन्य रस का पिंड हूँ मैं परम शुद्ध प्रकाशमान ॥

पर द्रव्य का तो नाश होता है अवश्य विचार लो ।
रोक सकता नहीं कोई पूर्व भूल सुधार लो ॥
द्रव्य निज अरु द्रव्य पर का रूप जानो अव यथार्थ ।
नाश होने पर न हो उर शोक निर्णय करो सार्थ ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥११॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

त्यक्त्वा मां चिदचित्संगा यास्यंत्येव न संशयः ।
तानहं वा च यास्यामि तत्प्रीतिरिति मे वृथा ॥१२॥

अर्थ- ये चेतन अचेतन दोनों प्रकार के परिग्रह अवश्य मुझे छोड़ देंगे और मैं भी सदा काल इसका संग नहीं दे सकता। मुझे भी ये अवश्य छोड़ देने पड़ेंगे इसलिये मेरा इनके साथ प्रेम करना व्यर्थ है ।

१२. ॐ ह्रीं चिदचित्परिग्रहविषयकप्रीतिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निष्परिग्रहबोधस्वरूपोऽहम् ।

चेतन अचेतन परिग्रह ये छोड़ ही देंगे मुझे ।
छोड़ देना पड़ेगा इन सभी को इक दिन मुझे ॥
अतः इनसे प्रेम करना मोह का ही जाल है ।
राग की यह जान ले तू भूल है जंजाल है ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥१२॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

पुस्तकै र्यत्परिज्ञानं परद्रव्यस्य मे भवेत् ।
तद्धेयं किं न हेयानि तानि तत्त्वावलंबिनः ॥१३॥

शुद्ध आत्म स्वरूप मेरा ज्ञानमय आनंद धाम ।
अतीन्द्रिय आनंद का ही महा स्वादी ध्रुव अनाम ॥

अर्थ- मैं अब तत्वावलंबी हो चुका हूं। अपना और पराया मुझे पूर्ण ज्ञान हो गया हैं, इसलिए शास्त्रों से उत्पन्न हुआ परद्रव्यों का ज्ञान भी अब मेरे लिये हेय त्यागने योग्य है। तब उन पर द्रव्यों के ग्रहण का तो अवश्य बही त्याग होता चाहिए ।

१३. ॐ ह्रीं परद्रव्यज्ञानहेयरूपविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजध्रुवधामस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीता

हुआ अपने पराये का ज्ञान मुझको पूर्ण अब ।
हुआ हूँ तत्त्वालंबी भान पाया आज सब ॥
हेय तजने योग्य है यह ज्ञान मुझको हो गया ।
उपादेय महान निज चिद्रूप मय मन हो गया ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥१३॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

स्वर्णै रत्नैः कलत्रै सुतगृहवसनै र्भूषणैराज्यखार्थै-
र्गोहस्त्यश्वैश्च पद्नैरथवरशिविकामित्रमिष्टान्नपानैः ।
चिंतारत्नै र्निधानै सुरतरुनिवहैः कामधैन्वा हि शुद्ध-
चिद्रूपाप्तिं विनांगी न भवति कृतकृत्य कदा क्वापि कोपि ॥१४॥

अर्थ- कोई भी प्राणी क्यों न हो, जब तक उसे शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति नहीं होती तब तक चाहे उसके पास सुवर्ण रत्न स्त्री पुत्र घर वस्त्र भूषण राज्य इंद्रियों के उत्तमोत्तम भोग गाय हाथी अश्व पदाति रथ पालकी, मित्र महामिष्ट; अन्नपान, चिन्तामणि रत्न, खजाने कल्पवृक्ष और कामधेनु आदि अगणित पदार्थ क्यों न मौजूद हों, उनसे वह कहीं किसी काल में भी कृतकृत्य नहीं हो सकता ।

१४. ॐ ह्रीं स्वर्णरत्नकलत्रादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानकामधेनुस्वरूपोऽहम् ।

भाव कर्म निरोध हो तो द्रव्य कर्म निरोध हो ।
द्रव्य कर्म निरोध से संसार पूर्ण निरोध हो ॥

हरिगीता

इन्द्रियों के भोग उत्तम अश्व गज अरु पालकी ।
स्वर्ण भूषण कल्पतरु अरु कामधेनु महान भी ॥
हों असंख्य पदार्थ परकृत कृत्यता होती नहीं ।
बिन निज चिद्रूप पाए धन्यता होती नहीं ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥१४॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

परद्रव्यासनाभ्यासं कुर्वन योगी निरन्तरम् ।
कर्माङ्गादिपरद्रव्यं मुक्त्वा क्षिप्र शिवीभवेत् ॥१५॥

अर्थ- निरंतर पर द्रव्यों के त्याग का चिन्तवन करने वाला योगी शीघ्र ही कर्म और शरीर आदि पर द्रव्यों से रहित हो जाता है, और परमात्मा बन, मोक्ष सुख का अनुभव करने लगता है ।

१५. ॐ ह्रीं परद्रव्यासनाभ्यासविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजद्रव्यरत्नोऽहम् ।

हरिगीता

निरन्तर पर द्रव्य तजने का करे जो चिन्तवन ।
शीघ्र कर्म शरीर से होता प्रथक यह धन्य धन ॥
शीघ्र करता मोक्ष सुख का श्रम उसी का आत्मा ।
शुद्ध निज चिद्रूप जप से जानता परमात्मा ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥१५॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

बनोगे निर्भार जब शुद्धात्मा का बोध होगा ।
हृदय में आनंद होगा शुद्ध ध्रुव आमोद होगा ॥

(१६)

कारणं कर्मबन्धस्य परद्रव्यस्य चिन्तनम् ।
स्वद्रव्यस्य विशुद्धस्य तन्मोक्षस्यैव केवलम् ॥१६॥

अर्थ- स्त्री पुत्र आदि पर द्रव्यों के चिन्तवन से केवल कर्मबंध होता है। और स्वद्रव्य विशुद्धचिद्रूप के चिंतवन करने से केवल मोक्ष सुख ही प्राप्त होता है। संसार में भटकना नहीं पड़ता ।

१६. ॐ ह्रीं कर्मबन्धकारणपरद्रव्यचिन्तनरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

भावकर्ममलरहितनिरञ्जनस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीतिका

पर द्रव्य चिन्तन से सदा ही सतत होता कर्म बंध ।
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन से न होता कर्म बंध ॥
भटकना संसार में फिर सदा को हो पूर्ण बंद ।
मोक्ष सुख ही प्राप्त होता जीव रहता है अबंध ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥१६॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

प्रादुर्भवंति निशेषा गुणाः स्वाभाविकाश्चितः ।
दोषा नश्यंत्यहो सर्वे, परद्रव्यवियोजनात् ॥१७॥

अर्थ- समस्त परद्रव्यों के सर्वथा त्याग से उन्हें न अपनानेसे आत्मा से स्वाभाविक गुण केवल ज्ञान आदि प्रकट होते हैं। और दोषों का नाश होता है ।

१७. ॐ ह्रीं दोषनाशविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्दोषप्रभुस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीतिका

द्रव्य आस्रव रहित हो जा भाव आस्रव छोड़कर ।
द्रव्य बंध विनाश कर तू निर्जरा के भाव कर ॥

पर द्रव्य सबके त्याग से गुण प्रगट होता स्वभाविक ।
ज्ञान के बल प्रगट होता दोष क्षय होते प्रथक ॥
यही है चिद्रूप शुद्ध महान चिन्तन का सुफल ।
आत्म सुख की प्राप्ति होती जीव हो जाता विमल ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥१७॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

समस्तकर्मदगेहादिपरद्रव्यविमोचनात् ।
शुद्धस्वात्मोपलब्धिर्या, सा मुक्तिरिति कथ्यते ॥१८॥

अर्थ- कर्म और शरीर आदि परद्रव्यों के सर्वथा त्याग से शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति होती है। और उसे ही यतिगण मोक्ष कहकर पुकारते हैं ।

१८. ॐ ह्रीं समस्तकर्मदेहादिपरद्रव्यरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

विदेहस्वरूपोऽहम् ।

कर्म और शरीर आदिक द्रव्य पर के त्याग से ।
प्राप्ति होती शुद्ध निज चिद्रूप उचित प्रकाश से ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥१८॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

अतः स्वशुद्धचिद्रूपलब्धये तत्वविन्मुनिः ।
वपुषा मनसा वाचो परद्रव्यं परित्यजेत् ॥१९॥

अर्थ- इसलिये जो मुनिगण भले प्रकार तत्त्वों के जानकार है। स्व और पर का भेद पूर्ण रूप से जानते हैं। वे विशुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति के लिये मन वचन काय से पर द्रव्य का सर्वथा त्याग कर देते हैं। उनमें जरा भी ममत्व नहीं करते ।

नहीं नूतन आस्रव हो शुद्ध हो संवर हृदय ।
बंध फिर क्यों कर्म होंगे बंध पर पायी विजय ॥

१९. ॐ ह्रीं परद्रव्यविषयकमनवचकायव्यापाररहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

विदेहस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीतिका

तत्त्वज्ञानी सुमुनि निज पर भेद पूरा जानते ।
शुद्ध निज चिद्रूप पाते द्रव्य सब पर त्यागते ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥१९॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

दिक्चेलैको हस्तपात्रो निरीहः साम्यारूढस्तत्त्ववेदी तपस्वी ।
मौनी कर्मौघेभसिंहो विवेकी सिद्धयै स्यात्स्वे चित्स्वरूपेऽभिरक्तः ॥२०॥

अर्थ- जो मुनि दिगम्बर पाणिपात्र वाले समस्त प्रकार की इच्छाओं से रहित समता के अवलम्बी तत्वों के वेत्ता, तपस्वी, मौनी, कर्मरूपी हाथियों के विदागरण करने में सिह विवेकी और शुद्धचिद्रूप में लीन है, वे ही परमात्म पद प्राप्त करते हैं। वे ही ईश्वर कहे जाते हैं। अन्य नहीं ।

२०. ॐ ह्रीं हस्तपात्रयुक्ततपस्वीविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजगुणौघस्वरूपोऽहम् ।

पाणि पात्री दिगम्बर मुनि अनिच्छुक समता धरण ।
तत्त्ववेत्ता परम पद को प्राप्त करते हैं महान ।
उसने पायी स्वयं की हीं ध्रुव परम पावन पर शर
वही ईश्वर सिद्ध प्रभु है सकल त्रिभुवन में प्रधान ॥
शुद्ध निज चिद्रूप चिन्तन ही जगत में सार है ।
राज्य धन परिवार आदिक सभी तो निस्सार है ॥२०॥

ॐ ह्रीं भटाटरकज्ञानभूषणविचितत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपलब्ध्यैपरद्रव्यत्यागप्रतिपादक पञ्चदशाध्याये अनन्तगुणवैभवस्विरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

द्रव्ययोग विनाश हित तुम क्षय करो यह भाव योग ।
आत्मा निर्योग रूपी सर्वथा ही है अयोग ॥

महाअर्घ्य

छंद गीत

बड़ी कठिनाई से पायी है ये संयम की शरण ।
मोक्ष के मार्ग पै रक्खा है मैंने पहिला चरण ॥
शुद्ध समकित की पवन मुझको उड़ा कर लायी ।
भेद विज्ञान की महिमा महान अब पायी ॥
श्री जिनराज के चरणों की मिली मुझको शरण ।
मोक्ष के मार्ग पै रक्खा है मैंने पहिला चरण ॥
स्वपर विवेक जगा आत्मा का भान हुआ ।
हेय ज्ञेयादि उपादेय का भी ज्ञान हुआ ॥
मोह मिथ्यात्व की परिणति का किया मैंने हरण ।
मोक्ष के मार्ग पै रक्खा है मैंने पहिला चरण ॥
धर्म अरु शुक्ल ध्यान मेरे पास आया है ।
शुद्ध चारित्र यथाख्यात उर समाया है ॥
मुझे करना है अब तो मोक्ष लक्ष्मी का वरण ।
मोक्ष के मार्ग पै रक्खा है मैंने पहिला चरण ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पित करूं करूँ कर्म अवसान ।
एक शुद्ध चिद्रूप पा हो जाऊं भगवान ॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्य नि. ।

जयमाला

छंद विजया

तुम अगर नित्य स्वाध्याय करते रहो ।
तो तुम्हें तत्त्व का ज्ञान होगा जरूर ॥
सतत ज्ञान अभ्यास में रत रहो ।
तो तुम्हें भेद विज्ञान होगा जरूर ॥

निज में बसना पर से खसना पीना नित्य अतीन्द्रिय रस।
निज में ही दैदीप्यमन है निजानंद गृह उसमें बस ॥

स्वपर ज्ञान होते ही जानेगो तुम ।
देह पुद्गल से तुम पूर्णतः भिन्न हो ॥
गुण अनंतों सहित है ये चैतन्य सुत ।
शुद्ध आत्मा का भी ज्ञान होगा जरूर ॥
स्वपथ पर चलोगे तो सम्यक्त्व धन ।
ज्ञान चारित्र रत्नत्रयी पाओगे ॥
पूर्ण संमय की महिमा सजेगी हृदय ।
आत्म बल से यथाख्यात होगा जरूर ॥
मोह सम्पूर्ण क्षय होगा निज ध्यान से ।
चारों घाति विलय होंगे तत्काल ही ॥
पार संसार का शीघ्र पाओगे तुम ।
एक दिन प्राप्त निर्वाण होगा जरूर ॥
इसलिए आत्मा का ही निर्णय करो ।
आत्मा का ही चिन्तन करो रात दिन ॥
आत्मा की ही महिमा हृदय में धरो ।
उर में शुद्धात्म रस व्याप्त होगा जरूर ॥
शुद्ध चिद्रूप का ही धरो ध्यान नित ।
शुद्ध चिद्रूप की सेवा ही तुम करो ॥
शुद्ध चिद्रूप ही लक्ष्य में लो अब सतत ।
शुद्ध चिद्रूप निज प्राण होगा जरूर ॥

ॐ ह्रीं पंचदशम अध्याय समनिक्त श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि ।

आशीर्वाद

दोहा

ज्ञाता दृष्टा आप ही स्वयं सहज चिद्रूप ॥
यही परमम परमात्मा अपना आत्म स्वरूप ॥

इत्याशीर्वाद :

आध्यात्मिक जीवन जीने की कला जानता सम्यक् दृष्टि।
मुक्ति मार्ग पर सावधान हो चलने वाला यह सम दृष्टि॥

ॐ

पूजन क्रमांक १७

तत्त्वज्ञान तरंगिणी षोडशम अधिकार पूजन

स्थापना

छंद गीतिका

तत्त्व ज्ञान तरंगिणी अध्याय है यह षोडशम ।
शुद्ध निज चिद्रूप पाने को करो नित परिश्रम ॥
परम पद की प्राप्ति के हित करो प्रतिपल शुद्ध ध्यान ।
निर्जरा हो परम उत्तम तभी होगा आत्म ध्यान ॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद तांटक

हो वैराग्य नीर की वर्षा अन्तर्नभ प्रभु स्वच्छ बने ।
सिद्ध स्वरूपी शुद्ध आत्मा जन्म मरण का रोग हने ॥
लज्जा को तज कर वैराग्य याचना करने आया हूं ।
भव तन भोग उदास बनूं कब यही भाव उर लाया हूं ॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

निज स्वभाव विज्ञान ज्ञान धन परम परिणामिक स्वामी।
भाव परिणामिक के आश्रय से हो जाता अन्तर्यामी ॥

समभावी चंदन चर्चितकर भव आतप ज्वर नाश करूं।
अंतरंग में ज्ञान रूप तरु पावन पूर्ण विकास करूं ॥
वर्त्तमान बल को संचित कर यही प्रार्थना करता हूं ।
मैं वैराग्य भाव की निर्मल गंगा उर में भरता है ॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

अक्षय पद की महिमा आयी देखा निज स्वरूप अक्षय ।
मानों भव समुद्र को तिरकर पाया सुन्दर ज्ञान निलय ॥
स्वपर विवेक मयी अक्षत जीवन जीने का भाव जगा ।
विषपायी पर परिणति भागी जिसने अब तक मुझे ठगा॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वितं श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

मैं निष्काम भावना पति बनने का यत्न करूंगा नाथ ।
कामबाण विध्वंस करूंगा निज चिद्रूप शुद्ध ले साथ ॥
उत्तर गुण चौरासी लाख सुने हैं मैंने सिद्धों में ।
शील दोष अष्टादश सहस्र नहीं होते हैं सिद्धों में ॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

चौरासी प्रकार के व्यंजन अहित सदा करते मेरा ।
क्षुधा व्याधि से रहित आत्मा का वैभव हरते मेरा ॥
जब वैराग्य भाव जगता है तब प्राणी जाग्रत होता ।
परम तृप्ति दायक अशरीरी जीवन पा शाश्वत होता ॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तंरगिणी जिनागमाय क्षधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

अहम् भाव को तजकर भजना अपना समता भाव प्रधान।
मात्र परिणामिक स्वभाव से ही तू करना निज पहचान ॥

मोह तिमिर की अंधियारी ने निगल लिया उजियाली को।
ज्ञान भानु का उदय अगर हो तो जीतूं अंधियारी को ॥
दर्शन मोह रूप अंधियारे में शिवमार्ग सूझता है ।
जब वैराग्य भाव जगता है तब निज ज्ञान बूझता है॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

सत्तावन प्रकार का आस्रव रुक जाता है संवर से ।
धूप दशांग धर्म की पाकर जुड़ता है मन अंतर से ॥
शुक्ल ध्यान की अनल धूप में आठों कर्म जलाऊँगा ।
नित्य निरंजन शिवपद पाकर फिर न लौटकर आऊंगा॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

शुद्ध मोक्ष फल पाने का ही उद्यम प्रभु सर्वोत्तम है ।
शुद्ध आत्मा का निर्णय ही दुख हरने में सक्षम है ॥
श्रेष्ठ मोक्ष फल मिले न जब तक तब तक ही प्रभु पूजूंगा।
भव पथ पर चलने को स्वामी मैं सदैव ही धूजूँगा ॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

पद अनर्घ्य पाने का ही यदि भाव न उर में जागेगा ।
तो कैसे मिथ्यात्व भाव मेरे भीतर से भागेगा ॥
निज गुण अर्घ्य बनाऊंगा मैं पद अनर्घ्य पाने को नाथ ।
जब तक है संसार दशा तब तक न तजूंगा तुव पद साथ॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

निज शाश्वत आनंद गंध की सुरभि प्राप्त करले तत्क्षण।
भाव मरण अरु द्रव्य मरण क्षय कर ले पा निज आत्म शरण॥

अर्घ्यावलि

षोडशम अध्याय

शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति के लिए निर्जन स्थान का उपदेश

(१)

सदबुद्धेः पररंजनाकुलविधित्यागस्य साम्यस्य च,
ग्रन्थार्थग्रहणस्य मानसवचोरोधस्य वाधाहतेः ।
रागादित्यजनस्य काव्यजमतेश्चेतोविशुद्धेरपि,
हेतुः स्वोत्थसुखस्य निर्जनमहो ध्यानस्य वा स्थानकम् ॥१॥

अर्थ- उत्तम ज्ञान पर को रंजायमान करने में आकुलता का त्याग, समता, शास्त्रों के अर्थ का ग्रहणमन और वचन का निरोध राग द्वे, आदि का त्याग काव्यों में बुद्धि का मन की निर्मलता, आत्मिक सुख का लाभ और ध्यान निर्जन एकांत स्थान के आश्रय करने से ही होता है ।

१. ॐ ह्रीं काव्यादिमतिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्बाधचिद्रूपोऽहम् ।

गीतिका

मोक्ष अभिलाषी पुरुष को चाहिए एकान्त थल ।
हृदय समता निराकुलता शास्त्र ज्ञान परम विमल ॥
मन वचन का हो निरोधी राग द्वेष विभाव तज ।
आत्म सुख के हेतु विघ्न विनाश कर चिद्रूप भज ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥१॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२)

पार्श्ववर्त्यगिना नास्ति केनचिन्मे प्रयोजनम् ।
मित्रेण शत्रुणा मध्यवर्त्तिना वा शिवार्थिनः ॥२॥

निज चैतन्य वास ज्ञानमय गुण अनंत का जहाँ निवास ।
निजाराधना साधक हो तो निज ज्ञायक ही शिव सुख़राशि ॥

अर्थ- मैं शिवार्थी हूं। अपनी आत्मा को निराकुलतामय सुख का आस्वाद कराना चाहता हं, इसलिये मुझे शत्रु मित्र और मध्यस्थ किसी भी पास में रहने वाले जीव मित्र शत्रु और मध्यस्थ सब मेरे कल्याण के बाधक है ।

२. ॐ ह्रीं मित्रशत्र्वादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

एकोऽहम् ।

गीतिका

मैं शिवार्थी निराकुल सुख का करूंगा आस्वाद ।
नहीं कोई प्रयोजन है नहीं कोई उर विवाद ॥
शत्रु मित्र सभी हैं कल्याण में बाधक सदा ।
किन्तु मै मध्यस्थ हूं है साम्य भाव हृदय सदा ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥२॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

इन्दौर्वृद्धौ समुद्रः सरिदमृतमलं वर्द्धते मेघवृष्टौ–
मोहानां कर्मबन्धो गद इव पुरुषस्यामभुक्तेरवश्यं ।
नानावृत्ताक्षराणामवनिवरतले छन्दसां प्रस्तरश्च,
दुःखौघागो विकल्पास्रववचनकुलं पार्श्ववर्त्यङ्गिनां हि ॥३॥

अर्थ- जिस प्रकार चन्द्रमा के सम्बन्ध से समुद्र, वर्षा से नदी का जल, मोह के संबंध से कर्मबंध, कच्चे भोजन से पुरुषों के रोग और नाना प्रकार के छन्द के अक्षरों से शोभित प्रस्तारों के सम्बन्ध से छन्द उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार पार्श्ववर्ती जीवों के संबंध से नाना प्रकार के दुःख और विकल्पमय वचनों का सामना करना पड़ता है ।

३. ॐ ह्रीं विकल्पास्रववचनकुलरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

सुखौघस्वरूपोऽहम् ।

गीतिका

पर द्रव्यों से दुर्गति होती निज स्वद्रव्य से सुगति महान ।
पर द्रव्यों से विरत बनो तुम निज स्वद्रव्यसे नेह प्रधान॥

चंद्रमा से सिन्धु बढ़ता नदी जल बरसात से ।
मोह से ही कर्म बढ़ते रोग कच्चे भात से ॥
पत्र बढ़ते अक्षरों से छंद से विस्तार ग्रंथ ।
पार्श्ववर्त्ती जीव से दुख सुख बढ़ें हो कर्म द्वंद ॥
छोड़कर अभिलाषियों को वर्जनीय विभाव भाव ।
उन्हें तो बस चाहिए चिद्रूप निज का शुद्ध भाव ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥३॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

वृद्धि यात्येधसो वन्हिर्वृद्धौ धर्मस्य वा तृषा ।
चिंता संगस्य रोगस्य पीड़ा दुःखादि संगतेः ॥४॥

अर्थ- जिस प्रकार ईधन से अग्नि की धूप से प्यास की और परिग्रह से चिंता और रोग से पीड़ा की वृद्धि होती है। उसी प्रकार प्राणियों की संगति से दुःख आदि सहन करने पड़ते हैं ।

४. ॐ ह्रीं परसंगतिकारणपीडादुखादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

आनन्दसागरोऽहम् ।

अग्नि ईधन से बढ़े अरु धूप से बढ़ती है प्यास ।
परिग्रह से बढ़े चिन्ता रोग से पीड़ा विकास ॥
उस तरह से प्राणियों की सुसंगति से दुख बहुत ।
सहन करना सदा पड़ता जीव को भव दुख बहुत ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥४॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

वज्र वृषभ नाराच संहनन से भी होता कभी न काम ।
जाए सप्तम नरक जीव अरु निज बल से पाए ध्रुवधाम॥

(५)

विकल्पः स्याज्जडजीवे निगडनगजंबालजलधि–
प्रदावाग्न्यातापप्रगदहिमताजालसदृषः ।
वरं स्थानं छेत्री पविरविकरागस्ति जलदा–
गदज्वालाशस्त्रीसममतिभिदे तस्य विजनम् ॥५॥

अर्थ- जीवों के विकल्प बेड़ीपर्वत कीचड़ समुद्र दावाग्नि का संताप रोग शीतलता और जाल के समान होते है। इसलिये उनके नाश के लिये छैनी वज सूर्य अगस्त नक्षत्र मेघ औषध अग्नि और छुरी के समान निर्जन स्थान का ही आश्रय करना उचित है ।

५. ॐ ह्रीं निगडनगादिनाशकारणविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानरसायनस्वरूपोऽहम् ।

गीतिका

विकल्पों के नाश हित सुस्थान निर्जन आश्रय ।
चाहिए मुनिराज को निज आत्मा का आश्रय ॥
एक दूजे को मिटाने में निमित्त हैं द्रव्य बहु ।
राग द्वेषों को मिटाने में सबल समभाव बहु ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥५॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

तपसां बाह्यभूतानां विविक्तशयनासनम् ।
महत्तपो गुणोद्भूते रागत्यागस्य हेतुतः ॥६॥

अर्थ- बाह्य तपों से विविक्त शयनासन (एकान्त स्थान में सौना और बैठना) तप को महान तप बतलाया है। क्योंकि इसके आराधन करने से आत्मा में गुणों की प्रगटता होती है। और मोह का नाश होता है ।

ज्ञेय वस्तु से ज्ञान नहीं होता है निश्चित लो यह जान ।
ज्ञेय वस्तु को ज्ञान जानता ज्ञान स्वभाव महा बलबान॥

६. ॐ ह्रीं रागत्यागकारणविविक्तशयनासनादितपविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

एकत्वधामोऽहम् ।

गीतिका

बाहय तप में विविक्त शैय्यासन सुखद होता महान ।
मोह का यह नाश करता गुण प्रकाशक है प्रधान ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥६॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

काचिच्चिंता संगतिः केनचिच्च रोगादिभ्यो वेदना तीव्रनिद्रा ।
प्रादुर्भूतिः क्रोधमानादिकानां मूर्च्छा ज्ञेया ध्यानविध्वंसिनी च ॥७॥

अर्थ- स्त्री पुत्र आदि की चिन्ता प्राणियों के साथ संगति रोग आदि से वेदना तीव्र निद्रा और क्रोध मान आदि कषायों की उत्पत्ति होना मूर्च्छा हैं। और इस मूर्च्छा से ध्यान का सर्वथा नाश होता है ।

७. ॐ ह्रीं निराकुलानन्दमन्दिरशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्मलसुखोऽहम् ।

हरिगीतिका

परिवार चिन्ता प्राणियों की कुसंगति अरु रोग दुख ।
तीव्र निद्रा क्रोध आदिक् विषम मूर्छा बहुत दुख ॥
किन्तु ऐसी मूर्छा से ध्यान का होता है नाश ।
ध्यान बिन होता नहीं चिद्रूप शुद्ध परम प्रकाश ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥७॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

जैसे घट से दीप नहीं उत्पन्नित होता है जानो ।
किन्तु प्रकाशित करता धट को दीपक का स्वभाव मानो॥

(८)

संगत्यागो निर्जनस्थानकं च तत्वज्ञानं सर्वचिंताविमुक्तिः ।
निवार्धत्वं योगरोधो मुनीनां मुक्तयै ध्याने हेतवोऽमी निरुक्ताः ॥८॥

अर्थ- बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग, एकांत स्थान तत्वों का ज्ञान समस्त प्रकार की चिन्ताओं के रहितपना, किसी प्रकार की बाधा का न होना और मन वचन काय का वश करना, ये ध्यान के कारण हैं। और इन्हीं का आश्रय करने से मुनियों को मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

८. ॐ ह्रीं विभावस्वभावपरिणामविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

समृद्धोऽहम् ।

हरिगीतिका

बाह्य अभ्यंतर परिग्रह त्याग दो एकान्त हो ।
तत्त्व का हो ज्ञान सम्यक् नहीं चिन्ता पास हो ॥
नहीं कोई भी हो बाधा मन वचन तन स्ववश हो ।
ध्यान कारण मुख्य हो अरु नहीं मुनि कुछ विवश हो ॥
इन्हीं का जो आश्रय करते वही पाते है मोक्ष ।
ध्यान निज चिद्रूप का कर पूर्णतः पाते हैं सौख्य ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥८॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

विकल्पपरिहाराय संगं मुञ्चन्ति धीधनाः ।
संगतिं च जनैः सार्द्धं कार्य किंचित्स्मरन्ति न ॥९॥

अर्थ- जो मनुष्य बुद्धिमान हैं। स्व और पर के स्वरूप के जानकार होकर अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहते हैं। वे संसार के कारण स्वरूप विकल्पों का नाश करने के लिये बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग कर देते हैं। दूसरे मनुष्यों के

सम्यक् हेतु प्राप्त करने को नहीं चाहिए हेत्वाभास ।
नहीं कोई आभास चाहिए निश्चय या व्यवहाराभास ॥

साथ संगति और किसी कार्य का चिंतवन भी नहीं करते ।

९. ॐ ह्रीं इहपरभवविषयकसुखदुःखादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अभयोऽहम् ।

हरिगीतिका

स्वपर ज्ञानी आत्मा का चाहते कल्याण हैं ।
विकल्पों का नाश करते परिग्रह अवसान हैं ॥
दूसरों की कुसंगति करते नहीं हैं भूलकर ।
चिन्तवन करतें न पर के कार्य को वे भूलकर ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥९॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

वृश्चिका युगपत्स्पृष्टाः पीडयन्ति यथाङ्गिनः ।
विकल्पाश्च तथात्मानं तेषु सत्सु कुतः सुखम् ॥१०॥

अर्थ- जिस प्रकार शरीर पर एक साथ लगे हुए अनेक विच्छु प्राणी को काटते और दुखित बनाते हैं। उसी प्रकार अनेक प्रकार के विकल्प भी आत्मा को बुरी तरह दुःखाते हैं। जरा भी शांति का अनुभव नहीं करने देते, इसलिए उन विकल्पों की मौजूदगी में आत्मा को कैसे सुख हो सकता है। विकल्पों के जाल में फंसकर रत्तीभर भी यह जीव सुख का अनुभव नहीं कर सकता ।

१०. ॐ ह्रीं गुरुशास्त्रादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजाधीनज्ञानरत्नोऽहम् ।

हरिगीतिका

बिच्छुओं का झुंड इक संग देह को करता दुखी ।
विकल्पों से आत्मा होता सतत पूरा दुखी ॥

पर वश होकर पाप किए बहु निज वश कभी न होता पाप।
पर द्रव्यों से प्रीत लगाई बिन निज प्रीत मिला संताप ॥

शान्ति का अनुभव न होगा विकल्पों के जाल से ।
सुख कहाँ से प्राप्त हो उलझा है भव जंजाल से ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥१०॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

बाह्यसंगतिसंगस्य त्यागे चेन्मे परं सुखम् ।
अंतःसंगतिसंगस्य भवेत् किं न ततोऽधिकम् ॥११॥

अर्थ- जब मुझे बाह्य संगति के त्याग से ही परम सुख की प्राप्ति होती है, तब अंतरंग संगति के त्याग से तो और भी अधिक सुख मिलेगा ।

११. ॐ ह्रीं परद्रव्यनाशकारणशोकरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अक्षयचिन्मात्रोऽहम् ।

हरिगीतिका

बाहय संगति त्यागने से परम सुख होता मुझे ।
तज कुसंगति अंतरंगी मोक्ष सुख होगा मुझे ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥११॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

बाहयसंगतिसंगेन सुखं मन्येत मूढ़धीः ।
तत्यागेन सुधीः शुद्धचिद्रूपध्यानहेतुना ॥१२॥

अर्थ- जो पुरुष मुग्ध हैं अपना पराया जरा भी भेद नहीं जानते । वे बाह्य पदार्थो की संगति से अपने को सुखी मानते हैं। परन्तु जो बुद्धिमन हैं, तत्त्वों के भलें प्रकार वेत्ता हैं, वे यह जानते हैं कि बाह्य पदार्थो की संगति का त्याग ही शुद्धचिद्रूप के ध्यान में कारण हैं। उसक त्याग से ही शुद्धचिद्रूप का ध्यान हो सकता है। अतः वे बाह्य पदार्थो का सहवान न करने से ही अपने को सुखी मानते हैं .

राग जनित या प्रशम जनित आनंद अतीन्द्रिय है न कभी।
निजात्मोत्थ आनंद अतीन्द्रिय है सम्यक् आनंद सभी ॥

१२. ॐ ह्रीं बाह्यसङ्गकारणसुखमान्यतारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

स्वाधीनानन्दनिलयोऽहम् ।

हरिगीतिका

स्वपर भेद न जानते हैं मुग्ध हैं परभाव में ।
बाह्य संगति से सुखी जो मानते निज भाव में ॥
तत्त्व वेत्ता त्याग पर संगति लगे निज ध्यान में ।
नहीं पर सहवास है वे सुखी हैं निज ज्ञानमे ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥१२॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

अवमौदर्यात्साध्यं विविक्तशय्यासनाद्विशेषेण ।
अध्ययनं सध्यानं मुमुक्षुमुख्याः परं तपः कुर्युः ॥१३॥

अर्थ- जो पुरुष मुमुक्षुओं में मुख्य हैं। बहुत जल्दी मोक्ष जाना चाहते हैं। उन्हें चाहिये कि वे अवमौदर्य और विविक्ताश्यायसन की सहायता से निष्पन्न ध्यान के साथ अध्ययन स्वाध्याय रूप परमतप का अवश्य आराधन करें ।

१३. ॐ ह्रीं अवमौदर्यादितपविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानामृताहारोऽहम् ।

हरिगीतिका

जो मुमुक्षु शीघ्र पाना चाहते हैं मोक्ष पद ।
करें अवमौदर्य तप अरु विविक्त शैय्यासन सुतप ॥
ध्यान के संग अध्ययन स्वाध्याय तप आराधना ।
तभी होती पूर्ण उनकी मुक्ति सुख की साधना ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥१३॥

जो प्रत्यक्ष प्रकाश प्राप्त करने का उद्यम करते हैं ।
वे ही सम्यक् दर्शन पाकर मिथ्याभ्रम तम हरते हैं ॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

ते वंद्या गुणिनस्ते च ते धन्यास्ते विदांवराः ।
वसन्ति निर्जने स्थाने ये सदा शुद्धचिद्व्रतः ॥१४॥

अर्थ- जो मनुष्य शुद्धचिद्रूप में अनुरक्त हैं और उसकी प्राप्ति के लिये निर्जन स्थान में निवास करते हैं। संसार में वे ही वंदनीय सत्कार के योग्य गुणी धन्य और विद्वानों के शिरोमणि हैं। अर्थात् उत्तम पुरुष उन्हीं का आदर सत्कार करते हैं और जिन्हें वे गुणी धन्य और विद्वानों में उत्तम मानते हैं

१४. ॐ ह्रीं निर्जनस्थानादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजयैतन्यस्थानस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीतिका

चिद्रूप शुद्ध अनुकरण करते विजन वन में ही निवास ।
गुणी हैं वे धन्य हैं वे आत्मा में है निवास ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥१४॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

निर्जनं सुखदं स्थानं ध्यानाध्ययनसाधनम् ।
रागद्वेषविमोहां शातनं सेवते सुधीः ॥१५॥

अर्थ- यह निर्जन स्थान अनेक प्रकार के सुध प्रदान करने वाला है। ध्यान और अध्यय का कारण है। राग द्वेष और मोह का नाश करने वाला हैं, इसलिये बुद्धिमान पुरुष अवश्य उसका आश्र करते हैं।

१५. ॐ ह्रीं ध्यानध्ययनसाधननिर्जनस्थानादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शाश्वतनिजज्ञाननिवासमंदिरोऽहम् ।

हरिगीतिका

निष्कषाय शुद्धात्म तत्त्व से चार कषायें है प्रतिशकूल ।
व्रत स्वरूप शुद्धात्म तत्त्व के अविरति भी न रंच अनुकूल॥

स्थान निर्जन सुख प्रदाता ध्यान का कारण महान ।
राग द्वेष अरु मोह क्षय में श्रेष्ठ है यह है प्रधान ॥
उसी का ही मुक्ति प्रेमी सदा करते आश्रय ।
शुद्ध निज चिद्रूप भज कर प्राप्त करते शिव निलय ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥१५॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

सुधाया लक्षणंलोका वदन्ति बहुधा मुधा ।
वाधाजंतुजनैर्मुक्तं स्थानमेव सतां सुधा ॥१६॥

अर्थ- लोक सुधा (अमृत) का लक्षण भिन्न ही प्रकार से बतलाते हैं। परन्तु वह ठीक नहीं, मिथ्या है। क्योंकि जहां पर किसी प्रकार की बाधा डांस मच्छर आदि जीव और जनसमुदाय न हो, ऐसे एकांत स्थान का नाम ही वास्तव में सुधा है ।

१६. ॐ ह्रीं बाधाजन्तुजनादिमुक्तस्थानविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अव्याबाधचिन्निवासोऽहम् ।

भिन्न लक्षण सुधा को जग में कहा वह झूठ है ।
जहाँ बाधा होन कोई वह सुधा सुअनूप है ॥
एकान्त का ही नाम वास्तव में सुधा है जान लो ।
बनो एकाकी स्वयं एकत्व निज पहचान लो ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥१६॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

भूमिगृहे समुद्रादितटे पितृवने वने ।
गुहादौ वसति प्राज्ञः शुद्धचिद्ध्यानसिद्धये ॥१७॥

जाग्रत निज शुद्धात्म तत्त्व में तो प्रमाद का नाम नहीं ।
तीनों योगों से विरहित है भव विभ्रम का काम नहीं ॥

अर्थ- जो मनुष्य बुद्धिमान हैं। हित अहित के जानकार हैं। वे शुद्धचिद्रूप के ध्यान की सिद्धि के लिये जमीन के भीतर घरों में सुरंगों में समुद्र नदी आदि के तटों पर श्मसान भूमियों में और वनगुफा आदि निर्जन स्थानों में निवास करते हैं ।

१७. ॐ ह्रीं भूमिगृहगुहादिनिवासविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शाश्वतज्ञानगुहास्वरूपोऽहम् ।

हरिगीतिका

हित अहित को जानकर जो गुफा में रहते हैं सम ।
विपिन वन में सरिपुलिन शमशान आदिक में हैं सम ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥१७॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

विविक्तस्थाकाभावात् योगिनां जनसंगमः ।
तेषामालोकनेनैव वचसा स्मरणेन च ॥१८॥

अर्थ- एकांत स्थान के अभाव से योगियों को जनों के संघट्ट में रहना पड़ता है, इसलिये उनके देखने, वनच सुनने और स्मरण करने से उनका मंच चचंल हो उठता है। मन की चंचलता से विशुद्धि का नाश होता है। और विशुद्धि के बिना शुद्धचिद्रूप का चिंतवन नहीं हो सकता। तथा बिना उसके चिन्तवन किये समस्त कर्मो के नाश होने वाला मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता, इसलिये मोक्षाभिलाषो योगियों को चाहिये कि वे एकांत स्थान को समस्तच दुखों का दूर करने वाला मोक्ष का कारण और संसार का नाश करने वाला जान अवश्य उसका आश्रय करें । १८-१९-२०-२१

१८. ॐ ह्रीं जनसंगमालोकनादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

बोधालोकस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीतिका

एकान्त बिन योगी जनों का संघ में होता निवास ।
विविध संगति से हृदय चंचल हुआ रुकता विकास ॥

यथाख्यात् चारित्र प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय निज ध्यान।
इसी ध्यान से मिलात है कैवल्य और मिलता निर्वाण ॥

शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥१८॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

जायते मनसः सस्पंदस्ततो रागादयोऽखिलाः ।
तेभ्यः क्लेशो भवेत्तस्मान्नाशं याति विशुद्धता ॥१९॥

१९. ॐ ह्रीं मनःपरिस्पन्दरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

टङ्कोत्कीर्णज्ञानोऽहम् ।

हरिगीतिका

नाश होती है विशुद्धि चिन्तवन चिद्रूप बिन ।
बिना निज चिद्रूप चिन्तन ध्यान को भी शून्य गिन ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥१९॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

तया बिना न जायेत शुद्धचिद्रूप चिंतनम् ।
विना तेन न मुक्तिः स्यात् परमाखिलकर्मणाम् ॥२०॥

२०. ॐ ह्रीं क्लेशरहितविशुद्धिविक्लपरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शुद्धावबोधस्वरूपोऽहम् ।

हरिगीतिका

कर्म क्षय से मोक्ष होता वह कभी होता नहीं ।
कर्म का ही बंध बढ़ता कर्म क्षय होता नहीं ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥२०॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

राग द्वेष के तृण कंटक बीने बिन आत्म न होता स्वच्छ।
संशय अरु एकान्त विपर्यय ज्ञान भाव दुखमय प्रत्यक्ष ॥

(२१)

तस्माद्विविक्तसुस्थानं ज्ञेयं संक्लेशनाशनम् ।
मुमुक्षुयोगिनां मुक्तेः कारणं भववारणम् ॥२१॥

२१. ॐ ह्रीं संक्लेशनाशनविविक्तस्थानादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निश्चलात्मनिवासोऽहम् ।

हरिगीतिका

मोक्ष अभिलाषी पुरुष एकान्त का आश्रय करे ।
दुख विनाशक ध्यान निज चिद्रूप का प्रतिक्षण करे ॥
दुक्ख क्षय सक्षम सदा एकान्त का ले आश्रय ।
मोक्ष का कारण यही है यही दाता शिव निलय ॥
शुद्ध निज चिद्रूप का आनंद ही सिर मौर है ।
तीन लोक त्रिकाल में यह ज्ञान मंदिर और है ॥२१॥

ॐ ह्रीं भट्टारकज्ञानभूषणविरचिततत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपलब्ध्यै निर्जनस्थानाश्रयण प्रूपादकषोडशाध्याये निजानन्दधामनिवासस्वरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्य

छंद भुजंगी

स्वभावों को अपने हृदय में सजाना ।
सतत शुद्ध भावों की वंशी बजाना ॥
अगर तुमको पाना है चिद्रूप अपना ।
विभावों को उर में न अब तुम बिठाना ॥
अगर चाहिए तुमको संवर की महिमा ।
तो आस्रव को घर में कभी भी न लाना ॥
अगर बंध कर्मो के हरना है तुमको ।
तो फिर गीत भी निर्जरा के ही गाना ॥

राग द्वेष की पूँजी से होता न मुक्ति पथ में व्यवसाय ।
निजाभ्यास के बिना न रुकते भव समुद्र के अध्यवसाय॥

तुम्हें मुक्ति मंदिर मिलेगा सुनिश्चित ।
सहज आत्म अनुभव स्वरस खोज लाना ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पित करूं निज शिव सुख के काज ।
एक शुद्ध चिद्रूप हित हो जाऊं मुनिराज ॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्यं नि. ।

जयमाला

ताटंक

अनुभव रस की पियो रसायन फिर भव रोग हरो चेतन।
मिथ्या तिमिर विनाशक सम्यक् दर्शन प्रगटाओ चेतन॥
इन्द्रिय विषय भोग रुचि तज दो जीवन सफल बनाओ तुम।
प्राप्त अनंत चतुष्टय करके निज अनुभूति जगाओ तुम ॥
मोह जन्य इस राग भाव को सदा सदा के लिए तजो ।
अपने निज ज्ञायक स्वभाव को प्रतिपल प्रतिक्षण नित्य भजो ॥
सकल वस्तुएं हैं असहाय वस्तु सभी समझा स्वाधीन।
वस्तु वस्तु में कभी न मिलती होती कभी न पर आधीन॥
जीवों को सोने पर मरने की आशंका होती है ।
जगने पर आनंद मानता किन्तु मृत्यु तो होती है ॥
एक समय में मर जाता है बचने का करता अभ्यास ।
मगर अमर होने की इच्छा से करता पर का विश्वास ॥
जो जन जन्म मरण से रहित आत्मा में थिर होते हैं ।
वे ही अमृतमयी मोक्ष पद पा परमात्मा होते हैं ॥

इन्द्रिय जनित सौख्य के पीछे सौख्य अतीन्द्रिय खोया है।
आनंदभासी जीवन जी चारों गति में रोया है ॥

जैसे गहन समुद्र मध्य जो रत्न गिरे मिलता न कभी ।
त्यों मानव भव बार बार मिलता क्या अरे महान कभी ॥
कुनर कुदेव त्रियंच नरक गति में पाए मर कष्ट अनंत।
आत्म तत्त्व भावना अगर भाते तो होते भव दुखअंत॥
सप्त तत्त्व में श्रेष्ठ सार अविनश्वर अजर अमर आत्मा।
शुद्ध ज्ञान अवतार यही निज समयसार ध्रुव परमात्मा ॥

ॐ ह्रीं षोडशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

परम शुद्ध चिद्रूप का महाअर्घ्य शिवकार ।
सभी सिद्ध मोहित हुए पाकर बारंबार ॥

इत्याशीर्वाद :

भजन

जप तप न मोक्ष देगा व्रत भी न मोक्ष देगा ।
समकित बिना कभी भी संयम न मोक्ष देगा ॥
पूजन न सौख्य देगी दर्शन न सौख्य देगा ।
बिनेद विज्ञान चेतन कोई न सौख्य देगा ॥
बिन आत्म ज्ञान कोई बिन आत्म भान कोई ।
बेकार ध्यान सारा कुछ भी न सौख्य देगा ॥
तत्त्वों का करो निर्णय शुद्धात्म का लो आश्रय ।
निर्मल स्वभाव के बिन कोई न मोक्ष देगा ॥
रागों का राग छोड़ो मिथ्यात्व मोह छोड़ो ।
जब तक है राग भीतर कोई न मोक्ष देगा ॥

अन्तर्मनयदि निर्मल होतो ज्ञान सहज हो जाता है ।
परिणाम सरल हो जाते हैं आनंद बहुत हो जाता है ॥

ॐ

पूजन क्रमांक १८

तत्त्वज्ञान तरंगिणी सप्तदशम अध्याय पूजन

स्थापना

छंद गीतिका

तत्त्व ज्ञान तंरगिणी अध्याय सप्तदशम पढ़ो ।
भाव पूर्वक ज्ञान के सोपान पर सविनय चढ़ो ॥
शुद्ध निज चिद्रूप से ही प्रेम हो अनुराग हो ।
निराकुल सुख प्राप्ति के हित स्वयं से ही राग हो ॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवोषट् ।

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद राधिका

चैतन्य शक्ति का दाता जल ही लाऊं ।
जन्मादि रोग त्रय पर स्वामी जय पाऊँ ॥
परिपूर्ण शुद्ध चिद्रूप महा महिमा मय ।
आनंद अतीन्द्रिय का समुद्र गरिमामय ॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

द्वंद बंद होता कषाय का पर में राग न होता है ।
चारों प्रत्यय का अभाव भी स्वयं शक्ति से होता है ॥

चैतन्य शक्ति युत शीतल चंदन लाऊं ।
भव ज्वर पर अब अविलम्ब नाथ जय पाऊं ॥
परिपूर्ण शुद्ध चिद्रूप महा महिमा मय ।
आनंद अतीन्द्रिय का समुद्र गरिमामय ॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

चैतन्य शक्ति के अक्षत शालि मनोहर ।
अक्षय पद के दाता अपूर्व अति सुन्दर ॥
परिपूर्ण शुद्ध चिद्रूप महा महिमा मय ।
आनंद अतीन्द्रिय का समुद्र गरिमामय ॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

चैतन्य शक्ति के पुष्प कामहर लाऊं ।
निष्काम भावना प्रतिक्षण प्रतिपल भाऊं ॥
परिपूर्ण शुद्ध चिद्रूप महा महिमा मय ।
आनंद अतीन्द्रिय का समुद्र गरिमामय ॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

चैतन्य शक्ति पाने को सुचरु चढ़ाऊँ ।
परिपूर्ण तृप्ति पाने को चरण बढ़ाऊं ॥
परिपूर्ण शुद्ध चिद्रूप महा महिमा मय ।
आनंद अतीन्द्रिय का समुद्र गरिमामय ॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

समदर्शी का नृत्य देख नाचना ज्ञान हर्षित होकर ।
आ जाता चारित्र स्वयं ही प्राणी संयम को लेकर ॥

चैतन्य शक्ति ज्योतिर्मय जगमग जगमग ।
मोहान्धकार नाशूं मैं पाऊं शिवमग ॥
परिपूर्ण शुद्ध चिद्रूप महा महिमा मय ।
आनंद अतीन्द्रिय का समुद्र गरिमामय ॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

चैतन्य शक्ति युत धर्म धूप मैं लाऊं ।
वसु कर्मो को सम्पूर्णतया विनशाऊं ॥
परिपूर्ण शुद्ध चिद्रूप महा महिमा मय ।
आनंद अतीन्द्रिय का समुद्र गरिमामय ॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनााय धूपं नि. ।

चैतन्य शक्ति से ओत प्रोत हो जाऊं ।
फल मोक्ष नाथ अन्तमुहूर्त्त में पाऊं ॥
परिपूर्ण शुद्ध चिद्रूप महा महिमा मय ।
आनंद अतीन्द्रिय का समुद्र गरिमामय ॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

चैतन्य शक्ति ही है अनर्घ्य पद दाता ।
यह अर्घ्य भावना का प्रतीक विख्याता ॥
परिपूर्ण शुद्ध चिद्रूप महा महिमा मय ।
आनंद अतीन्द्रिय का समुद्र गरिमामय ॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

अवलंबन पर का न कभी है सतत स्वावलबंन है पास ।
अपने निज बल के द्वारा ही पा लेता है मुक्ति निवास ॥

अर्घ्यावलि

सप्तदशम अध्याय

(१)

मुक्ताविद्रुमरत्नधातुरसभूवस्त्रान्नरुग्भूरुहां–
स्त्रीभावश्वाहिगवां नृदेवविदुषां पक्षाम्बुगानामपि ।
प्रायः संति परीक्षका भुवि सुखस्यात्यल्पका हा यतो,
दृश्यन्ते खभवे रताश्च बहवः सौख्ये च नातींद्रिये ॥१॥

अर्थ- संसार में मोती, मूङ्गा रत्न धातु रस पृथ्वी वस्त्र अन्न रोग वृक्ष स्त्री हाथी, घोड़े, सर्प गाय, मनुष्य, देव विदान पक्षी और जलचर जीवों की परीक्षा करनेवाले अनेक मनुष्य हैं परन्तु सुख की परीक्षा करनेवाले बहुत थोड़े हैं, क्योकि इन्द्रियों से उत्पन्न हुए ऐन्द्रियिक सुख में तो बहुत से अनुरक्त हैं। परन्तु निराकुलतामय अतीन्द्रिय सुख में अनुराग करने वाले नहीं है ।

१. ॐ ह्रीं ऐन्द्रियकसुखरतिविषयकपरीक्षाविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानमुक्तासौख्यस्वरूपोऽहम् ।

छंद मानव

मोती मूंगा रत्नादिक पृथ्वी गज अश्व पारखी ।
सुर मनुज आदि द्रव्यों के तो होचत बहुत पारखी ॥
इन्द्रय सुख के अनुरक्ती है बहुत मनुज धरती पर ।
पर शुद्ध निराकुल सुख के पारखी अल्प पृथ्वी पर ॥
शाश्वत शिव सुख अनुरागी तो यहां बहुत थोडे हैं ।
चिद्रूप शुद्ध के प्रेमी भीबहुत नहीं थोड़े हैं ॥
चिद्रूप शुद्ध की रुचि ही मिथ्यत्व दोष रहती है ।
ज्यों ज्यों संवर्धन होता त्यों त्यों जलती रहती है ॥१॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

निंदक पास अगर रहता है तो निर्मल हो जाता है ।
बिना नीर ही बिन श्रम के ही परम स्वच्छ हो जाता है॥

(२)

निर्द्रव्यं स्ववशं निजस्थमभयं नित्यं निरीहं शुभ–
निर्द्वन्द्वं निरुपद्रवं निरुपमं निर्बधमूहातिगम् ।
उत्कृष्टं शिवहेत्वदोषममलं यददुर्लभं केवलं–
स्वात्मोत्थं सुखमीदृशं च खभवं तस्माद्विरुद्धं भवेत् ॥२॥

अर्थ- यह आत्मोत्थ निराकुलतामय सुख निर्द्रव्य है-परद्रव्यों के संपर्क से रहित है। स्वाधीन, आत्मीय यों से रहित नित्य समस्त प्रकार की इच्छाओं से रहित अनुपम कर्म बंधों से रहित तर्क वितर्क के अगोचर, उत्कृष्ट कल्याणों का करने वाला निर्दोष निर्मल और दुर्लभ है। परन्तु इन्द्रिय जन्य सुख सर्वथा इसके विरुद्ध है। वह परद्रव्यों के संबंध से होता है। पराधीन, पर नाना प्रकार के भयों का करने वाला विनाशीक, अनेक प्रकार की इच्छा उत्पन्न करने वाला अशुभ आकुलतामय अनेक प्रकार के उपद्रवों को खड़ा करने वाला महानिंदनीय, कर्मबंध का कारण महानिकृष्ट दुःख देने वाला अनेक प्रकार के दोष और मलों का भंडार और सुलभ है इसलिये सुखाभिलाषी जीवों को चाहिये कि निराकुलतामय सुख की प्राप्ति का उपाय करें ।

२. ॐ ह्रीं निर्द्रव्यस्ववशनिरुपमनिराकुलसुखस्वरूपाय नमः ।

निर्द्वन्द्वोऽहम् ।

छंद मानव

आत्मोत्थ निराकुल सुख तो पर के संपर्क रहित है ।
इच्छाओं से विरहित है कर्मो के बंध रहित है ॥
है तर्क वितर्क अगोचर कल्याणी सुख दाता है ।
इन्द्रिय सुख रहित सर्वथा दुर्लभ सुख निर्माता है ॥
पर द्रव्यों से सम्बंधित जो पराधीनता दुख है ।
है महा उपद्रव कर्त्ता इसमें न रंच भी सुख है ॥
जो हैं सुखाभिलाषी खोजे सुख उपाय अपना ।
चिद्रूप शुद्ध ही शाश्वत संसार शेष है सपना ॥२॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

सोने के प्याले में मैंने मोह महामद पिया सदा ।
मोह जन्य मोहिनी जाल में निज को भूला किया सदा ॥

(३)

वैराग्यं त्रिविधं निधाय हृदये, हित्वा च संग् त्रिधा,
श्रित्वा सदगुरुमागमं च विमलं, धृत्वा च रत्नत्रयम् ।
त्यक्त्वान्यैः सह संगतिं च सकलं रागादिकं स्थान के,
स्थातव्यं निरुपद्रवेऽपि विजने स्वात्मोत्थसौख्याप्तये ॥३॥

अर्थ- जो पुरुष आत्मीय शांतिमय सुख के अभिलाषी है, उस सुख को हस्तगत करना चाहते हैं। उन्हें चाहिये कि वे संसार शरीर और भोगों का त्यागरूप तीन प्रकार का वैराग्य धारण कर चेतन अचेतन और मिश्र तीनों प्रकार का परिग्रह छोड़कर निर्द्रन्थ गुरु निर्दोष शास्त्र और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र स्वरूप रत्नत्रय का आश्रय कर दूसरे जीवों का सहवास और रागद्वेष आदि का सर्वथा त्याग कर सब उपद्रवों से रहित एकांत स्थान में निवास करें।

३. ॐ ह्रीं संसारशरीरभोगविषयकवैराग्यविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निरुपद्रवज्ञानानन्दस्वरूपोऽहम् ।

जो आत्मिक सुख अभिलाषी हों वे निज को ही ध्याएं ।
संसार शरीर भोग को त्यागें वैराग्य सजाएं ॥
अब मिश्र अचेतन चेतन तीनों ही तजें परिग्रह ।
सदगुरु निर्दोष शास्त्र सुन पर से हो जाएं निस्पृह ॥
रत्नत्रय का आश्रय लें सत संगति करें ज्ञानमय ।
एकान्तावास हो निर्भय हो जाएं आत्म ध्यान मय ॥
चिद्रूप शुद्ध की धारा अन्तर्मन पुलकित करती ।
भव भव की कर्म वेदना अर्न्तमुहूर्त में हरती ॥३॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

खसुखं न सुखं नृणां किंत्वभिलाषाग्निवेदनाप्रतीकारः ।
सुखमेव स्थितिरात्मनि निराकुलत्वाद्विशुद्धपरिणामात् ॥४॥

अवसर आया तो चूका मैं अपने को ही भूल गया ।
महाक्रूर अपराधीबनकर निज के ही प्रतिकूल गया ॥

अर्थ- इन्द्रिय जन्य सुख, सुख नहीं है। किन्तु मनुष्यों की अभिलाषा रूप अग्न जन्य देवनाओं का प्रतीकार मात्र है। और वह सुख निराकुलरूप से और शुद्ध परिणाम से जो अपने चिदानंदस्वरूप आत्मा मैं स्थिति का होना है, वह है ।

४. ॐ ह्रीं अभिलाषाग्निवेदनारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निहीरात्मसौख्यस्वरूपोऽहम् ।

छंद मानव

इन्द्रिय सुख सुर बन कर भी अभिलषमयी दुख का घर।
वेदना मिटाना है तो ध्याओ चिद्रूप सौख्यकर ॥
निज चिदानंद चिद्रूपी आत्मा में सुस्थित होलो ।
परिणाम विशुद्ध करो अब निज सौख्य अनाकुल ले लो॥४॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(५)

नो द्रव्यात्कीर्तितः स्याच्छुभस्वविषयतः सौधतौर्यत्रिकाद्वा,
रूपादिष्टागमाद्वा तदितरविगमात् क्रीडनाद्यादृतुभ्यः ।
राज्यात्संराज्यमानात् बलवसनसुतात्सत्कलत्रात्सुगीताद्-
भूषाद् भूजागयानादिहजगति सुखं तात्त्विकं व्याकुलत्वात् ॥५॥

अर्थ- वह निराकुलतामय तात्विक सुख, न द्रव्य से प्राप्त हो सकता है, न कीर्ति, इंद्रियोंके शुभ विषय, उत्तम महल और गाजे बाजों से मिल सकता है। उत्तम रूप, इष्ट पदार्थो का समागम, अनिष्टों का वियोग और उत्तमोत्तम क्रीड़ा आदि भी इसे प्राप्त नहीं करा सकते। छह ऋतु, राज्य राजा की ओर से सन्मान सेना, उत्तम वस्त्र, पुत्र मनोहारिणी स्त्री, कर्णप्रिय गायन, भूषण, एवं वृक्ष पर्वत और सवारी आदि से भी प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि द्रव्य आदि के संबंध से चित्त व्याकुल रहता है। और चित्त की व्याकुलता, निराकुलतामय सुख को रोकने वाली होता है ।

५. ॐ ह्रीं सौधतूर्यत्रिकरूपेष्टागमक्रीडनादितुच्छसुखरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शाश्वतातीन्द्रियसौख्यज्ञानसौधस्वरूपोऽहम् ।

मानव

भोगाकाँक्षारूप विभावी परिणामों को किया न त्याग ।
दृढ़ वैराग्य तथा संवेग भाव से किया नहीं अनुराग ॥

शाश्वत सुख पूर्ण निराकुल पर द्रव्यों से ना मिलता ।
हो इष्ट समागम शुभमय उत्तम तो भी ना मिलता ॥
षडऋतु नृप कृपा कीर्ति से यह प्राप्त नहीं होता है ।
अन्तर्मन व्याकुल रहता सुख कभी नहीं होता है ॥
चिद्रूप शुद्ध के बिन जब संसार लगे यह सूना ।
तब समझो निज अंतर में होता सुख दूनादूना ॥५॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(६)

पुरे ग्रामेऽटव्यां नगशिरसि नदीशादिसु तटे,
मठे दर्या चैत्यौकसि सदसि रथादौ च भवने ।
महादुर्गे स्वर्गे पथनभसि लतावस्रभवने,
स्थितो मोही न स्यात् परसमयरतः सौख्यलवभाक् ॥६॥

अर्थ- जो मनुष्य मोह से मूढ़ और पर समय में रत हैं-पर पदार्थो को अपनाने वाले हैं- वे चाहे पुर, पर्वत के अग्रभाग, समुद्र नही आदि के तट मठ, गुफा, चैत्यालय, सभा रथ, महल, किले स्वर्ग, भूमि, मार्ग, आकाश, लतामंडप और तंबू आदि स्थानों में किसी स्थान पर निवास करें, उन्हें निराकुलतामय सुख का कण तक प्राप्त नहीं हो सकता। अर्थात् मोह और पर द्रव्यों का प्रेम निराकुलतामय सुख का बाधक है ।

६. ॐ ह्रीं पुरग्रामअटवीमठचैत्याद्योकसरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शाश्वतनिजज्ञानोकस्स्वरूपोऽहम् ।

मानव

पर समयी मूढ़ मोह से पर द्रव्यों को अपनाते ।
पुर ग्राम महल स्वर्गो में रहते फिर भी दुख पाते ॥
चाहे जी जहाँ रहें पर सुख का कण भी न मिलेगा ।
जब तक है मोह महातम सुख कैसे हृदय झिलेगा ॥

पंचेन्द्रिय के भोगों की रुचि प्रतिपल बढ़ती जाती है ।
लौकिक सुख की अभिलाषा ही ऊपर चढ़ती आती ह ॥

चिद्रूप शुद्ध दुख का घर आकुलता रहित अनूठा ।
पर चेतन मूढ़ अभी तक चिद्रूप शुद्ध से रूठा ॥६॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

निगोते गूथकीटे पशुनृपतिगणे भाववाहे किराते,
सरोगे मुक्तरोगे धनवति विधने वाहनस्थे च पद्ने ।
युवादौ बालवृद्धे भवति हि खसुखं तेन किं यत् कदाचित्,
सदा वा सर्वदैवैतदपि किल यतस्तन्न चाप्राप्तपूर्वम् ॥७॥

अर्थ- निगोदिया जीव, विष्टा की कीड़ा, पशु, राजा, भार वह करनेवाले, भील, रोग नीरोगी, धनवान, निर्धन, सवारी पर घूमने वाले, पैदल चलनेवाले, युवा, बालक, वृद्ध और देवों में जो इन्द्रिय से उत्पन्न सुख कभी वा सदा देखने में आता है। उससे क्या प्रयोजन? अथवा वह सर्वथा ही बना रहे, तब भी क्या प्रयोजन? क्योंकि वह पहिले कभी नहीं प्राप्त हुआ, ऐसा निराकुलामय सुख नहीं है। अर्थात् इन्द्रियं से उत्पन्न सुख विनाशीक है और सुलभरूप से कहीं न कहीं कुछ न कुछ अवश्य मिल जाता है। परन्तु निराकुलतामय सुख नित्य अविनाशी है और आत्मा को बिना विशुद्ध किये कभी प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिये इन्द्रिय सुख कैसा भी क्यों न हो, वह कभी निराकुलतामय सुख की तुलना नहीं कर सकता ।

७. ॐ ह्रीं निगोतगूथकीटादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

सनातनस्वरूपोऽहम् ।

मानव

जीवों के जो भी सुख हैं वे इन्द्रिय सुख है नश्वर ।
देवों के इन्द्रिय सुख भी होते हैं सदा विनश्वर ॥
उनसे क्या हमें प्रयोजन वे नहीं निराकुल सुख हैं ।
सुख का आभास मात्र हैं वास्तव में तो वे दुख हैं ॥
अविनाशी नित्य अनाकुल सुख आत्मा में मिलता है ।
आत्मा को शुद्ध बनाए बिन कभी न उर झिलता है ॥

आत्म ज्ञान रूपी गंगा जल से न नव्हन मैं कर पाया ।
लौकिक शुद्धि हेतु जल कायिक जीवों को दुख पहुंचाया॥

रूठे चेतन को देखो यह ज्ञान मनाने आया ।
चेतन ने भी दृग खोले चिद्रूप शुद्ध दरशाया ॥७॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

ज्ञेयावलोकनं ज्ञानं सिद्धानां भविनां भवेत् ।
अद्यानां निर्विकल्पं तु परेषां सविकल्पकम् ॥८॥

अर्थ- पदार्थो का देखना और जानना सिद्ध और संसारी दोनों के होता है। परन्तु सिद्धों के वह निर्विकल्प-आकुलता रहित और संसारी जीवों के सविकल्प आकुलता सहित होता है ।

८. ॐ ह्रीं ज्ञेयावलोकनविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

शुद्धज्ञानघनस्वरूपोऽहम् ।

मानव

दर्शन व ज्ञान सिद्धों को संसारी को भी होता ।
पर सिद्धों को अविकल्पी, सविकल्पी जग को होता ॥
चिद्रूप शुद्ध हूं मैं तो कोन जल्प है मन में ।
संकल्प विकल्प रहित है आभास न कोई तन में ॥८॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

व्यातकुलः सविकलुपः स्याान्निर्विक पो निराकुलः ।
कर्मबंधोऽसुखं चाद्ये कर्माभाव सुखं परे ॥९॥

अर्थ- जिस ज्ञान की मौजूदगी में आकुलता हो, वह ज्ञान सविकल्प और जिसमें आकुलता न हो वह ज्ञान निर्विकल्प कहा जाता है। उनमें सविकल्प ज्ञान के होने पर कर्मो का बंध और दुःख भोगना पड़ता है और निर्विकल्पक ज्ञान के हो पर कर्मो का अभाव और परम सुख प्राप्त होता है ।

९. ॐ ह्रीं व्याकुलताकारणसविकल्पत्वरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निराकुलशिवोकस्स्वरूपोऽहम् ।

धर्म प्रवर्त्तन में जो बाधक वह प्रमाद क्षय किया नहीं ।
निज जीवत्व शक्ति को भूला उसको संग में लिया नहीं॥

मानव

आकुलता होती हो तो वह ज्ञान विद्य सविकल्पक ।
आकुलता अगर नहीं है तो ज्ञान विद्य अविकल्पक ॥
सविकल्प ज्ञान होने पर कर्मो का बंधन होता ।
अविकल्पी ज्ञान अगर हो तो सौख्य निराकुल होता ॥
चिद्रूप शुद्ध अति पावन यह निर्विकल्प अविकल्पी ।
अपना स्वरूप जब पाया तो क्यों होगा सविकल्पी ॥९॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

बहून् वारान् मया भुक्तं सविकल्पं सुखं ततः ।
तन्नापूर्व निर्विकल्पे सुखेऽस्तीहा ततो मम ॥१०॥

अर्थ- आकुलता के भंडार इस सविकल्प सुख का मैने बहुत बार अनुभव किया है। जिस गति के अन्दर गया हूं, वहाँ मुझे सविकल्प ही सुख प्राप्त हुआ है। इसलिये वह मेरे लिये अपूर्व नहीं है। परन्तु निराकुलतामय निर्विकल्प सुख मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ, इसलिये उसी की प्राप्ति के लिये मेरी अत्यन्त इच्छा है। वह कब मिले, इस आशा से सदा मेरा चित्त भटकता फिरता है ।

१०. ॐ ह्रीं सविकल्पसुखरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।
निर्विकल्पसौख्यस्वरूपोऽहम् ।

मावन

आकुलता गृह सविकल्पी सुख का अनुभव है बहुधा ।
जिस गति में गया वहाँ ही पाया ऐसा सुख बहुधा ॥
यह सुख न अपूर्व मुझे है सुख निर्विकल्प ना पाया ।
उसको पाने की इच्छा ने मुझको आज जगाया ॥
कब उसे प्राप्त मैं कर लूं यह चित्त भटकता मेरा ।
चिद्रूप शुद्ध में भी तो मन नहीं रमा है मेरा ॥१०॥

निष्क्रिय निर्विकल्प आत्मा को पूर्ण विकारी बना दिया ।
संयम युत निज तरणी पायी उसको मैंने डुबा दिया ॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

ज्ञेयज्ञानं सरागेण चेतसा दुःखमंगिनः ।
निश्चयश्च विरागेण चेतसा सुखमेव तत् ॥११॥

अर्थ- रागी द्वेषी और मोही चित्त से जो पदार्थो का ज्ञान किया जाता है, वह दुःखरूप है। उस ज्ञान से जीवों को दुःख भोगना पड़ता है। और वीतराग वीरद्वेष और वीतमोह चित्त से जो पदार्थो का ज्ञान होता है वह सुख स्वरूप है। उस ज्ञान से सुख की प्राप्ति होती है ।

११. ॐ ह्रीं सरागचित्तयुक्तज्ञेयज्ञानरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

विरागोकसोऽहम् ।

मानव

रागी द्वेषी मोही चित स पदार्थ ज्ञान होता है ।
वह दुख स्वरूप है उससे दुख ही दुख तो होता है ॥
पर वीतराग मति से तो जो पदार्थ ज्ञान होता है ।
वह सुख स्वरूप है उससे सुख ज्ञान प्राप्त होता है ॥
केवल चिद्रूप शुद्ध को ज्ञानी जन ही पाते हैं ।
वे ही निजात्मा में रह प्रतिपल इसको ध्याते है ॥११॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

रवेः सुधायाः सुरपादपस्य चिंतामणेरुत्तमकामधेनोः ।
दिवो विदग्धस्य हरेरखर्व गर्व हरन् भो विजयी चिदात्मा ॥१२॥

अर्थ- हे आत्मन् ! यह चिदात्म, सूर्य अमृत, कल्पवृक्ष, चिंतामणि, कामधेनु स्वर्ग, विद्वान और विष्णु के भी अखंड गर्व को देखते देखते चूर करने वाला है और विजय शील है ।

१२. ॐ ह्रीं रविसुधासुरपादपादिगर्वहरणविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अनुत्सेकज्ञानस्वरूपोऽहम् ।

जड़ से भिन्न निजात्म ज्ञान का अनुभव ही सुखदायी है।
यदि अनात्मा की प्रतीति है तो भव भव दुखदायी है ॥

मानव

हे आत्मन् यह चिदात्मा भव गर्व चूर करता है ।
अपने स्वभाव में रहकर वसु कर्म बंध हरता है ॥
रवि अमृत कल्पतरु चिन्तामणि कामधेनु कोई भी ।
सबपर यह विजय शील है इससे न बढ़ा कोई भी ॥
केवल चिद्रूप शुद्ध को ज्ञानी जन ही पाते हैं ।
वे ही निजात्मा में रह प्रतिपल इसको ध्याते हैं ॥१२॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

चिंता दुःखं सुखं शांतिस्तस्या एतत्प्रतीयते ।
तच्छांतिर्जायते शुद्धचिद्रूपे लयतोऽचला ॥१३॥

अर्थ- जिस अचल शांति से संसार में यह मालूम होता है कि यह चिन्ता है, यह दुःख हैं, यह सुख और शांति हैं, वह (शांति) इसी शुद्धचिद्रूप में लीनता प्राप्त करने से होती है। बिना शुद्धचिद्रूप में लीनता प्राप्त कि चिन्ता दुःख आदि के अभाव के स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता ।

१४. ॐ ह्रीं चिन्तादुःखनाशनोपायविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

सहजसौख्योकस्स्वरूपोऽहम् ।

छंद मानव

जिस अचल शान्ति से इसको मालूम होता यह चिन्ता ।
यह दुख यह सुख शान्ति है यह शुद्ध चिद्रूप लीनता ॥
चिद्रूप शुद्ध लीनता बिन चिन्ता दुख बन जाते ।
दुख रहित स्वरूप ज्ञान भी यह जीव नहीं कर पाते ॥
चिद्रूप शुद्ध ध्रुवधामी ध्रुव की धुन से मिलता है ।
जब ध्रुव की धुन होती है तब ज्ञानाम्बुज खिलता है ॥१३॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

ज्ञान स्वभाव स्वतंत्र सदा ही त्रैकालिक ध्रुव है स्वाधीन।
पर अवलंबन रहित सदा है नहीं किसी के है आधीन ॥

(१४)

मुबं सर्वाणि कार्याणि संगं चान्यैश्च संगतिम् ।
भो भव्य शुद्धचिद्रूपलये वांछास्ति ते यदि ॥१४॥

अर्थ- हे भव्य! यदि तू शुद्धचिद्रूप में लीन होकर जल्दी मोक्ष प्राप्त करना चाहता है तो तू सांसारिक समस्त कार्य, आभ्यान्तर दोनों प्रकार के परिग्रह और दूसरों का सहवास सर्वथा छोड़ दे ।

१४. ॐ ह्रीं सर्वकार्यादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

असङ्गचिदोकस्स्वरूपोऽहम् ।

मानव

चिद्रूप शुद्ध में रत हो यदि मोक्ष चाहता जल्दी ।
सांसारिक कार्य छोड़ दे तज सभी परिग्रह जल्दी ॥
सहवास छोड़ दे पर का निज में ही कर निवास तू ।
चिद्रूप शुद्ध का चिन्तन पाएगा मोक्ष वास तू ॥१४

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

मुक्ते बाह्ये परद्रव्ये स्यात्सुखं चेच्चितो महत् ।
साम्प्रतं किं तदादोऽतः कर्मादौ न महत्तरम् ॥१५॥

अर्थ- जब बाह्य परद्रव्य से रहित हो जाने पर आत्मा को महान सुख मिलता है। तब क्या कर्म आदि के नाश हो जाने पर उससे भी अधिक महान सुख प्राप्त न होगा ?।

१५. ॐ ह्रीं बाह्यपरद्रव्यमुक्तत्वविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

सदाशिवोऽहम् ।

मानव

जब बाह्य परिग्रह विरहित होते ही सुख मिलता है ।
तब कर्म नाश होने पर बहु महान सुख झिलता है ॥

हमने अपनी स्वतंत्रता को परपरिणति आंधीन किया ।
निज परिणति को नहीं बुलाया इसे नहीं स्वाधीन किया॥

चिद्रूप शुद्ध दीपक लो कर्मो का क्षय करने को ।
इसका अभ्यास करो नित भव की पीड़ा हरने को ॥१५॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

इद्रियैश्च पदार्थानां स्वरूप जानतोंऽगिनः ।
यो रागस्तत्सुखं द्वेषस्तद्दुःखं भ्रांतिजं भवेत् ॥१६॥

अर्थ- इन्द्रियों द्वारा पदार्थो के स्वरूप जानने वाले इस जीव को जो उनमें राग होता हैं, वह सुख और द्वेष होता है, वह दुख हैं, यह मानना नितांत भ्रम है, किन्तु जो पुरुष राग और द्वेष आदि से रहित है। समस्त पदार्थो का जानकार है। उसके जो समस्त प्रकार की आकुलता का त्याग है- निराकुलता है, वही वास्तविक सुख है । १६-१७

१६. ॐ ह्रीं रागद्वेषजनितसुखदुःखभ्रान्तकल्पनारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अभ्रान्तचैतन्योकस्स्वरूपोऽहम् ।

मानव

इन्द्रिय द्वारा पदार्थ का जो स्वरूप ज्ञान होता है ।
उसमें तो राग होता है जो सुख व द्वेष होता है ॥
वह सुख हैं यही मान्यताा तेरा नितान्त विभ्रम है ।
अज्ञान भाव है तेरा पूरा पूरा मति भ्रम है ॥
अभ्यास शुद्ध चिद्रूपी विभ्रम विनाश करता है ।
अंतर का अंधियारा हर निर्मल प्रकाश करता है ॥१६॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१७)

यो रागादिविनिर्मुक्तः पदार्थानखिलानपि ।
जानन्निराकुलत्वं यत्तात्त्विकं सत्य तत्सुखम् ॥१७॥

१७. ॐ ह्रीं रागद्वेषरहिताखण्डज्ञानस्वरूपाय नमः ।

नीरागोकस्स्वरूपोऽहम् ।

मत्त रहे परभावों में हम चारों गतियों में बहके ।
सुस्थित आत्म स्वभाव न जाना चारों गतियों में रह के॥

मानव

जो राग द्वेष से विरहित सारे पदार्थ जानता ।
आकुलता रहित वही तो सुखमय स्वरूप मानता ॥
चिद्रूप शुद्ध कैसे हो पर में आकुल व्याकुल है ।
आकुलता छोड़ सभी तू चिद्रूप शुद्ध निर्मल है ॥१७॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

इन्द्राणां सार्वभौमानां सर्वेषां भावनेशिनाम् ।
विकल्पसाधनैः खार्थे व्याकुलत्वात्सुखं कुतः ॥१८॥

अर्थ- इन्द्र चक्रवर्ती ओर भवनवासी देवों के स्वामियों के जितने इन्द्रियों के विषय होते हैं, वे विकल्पों से होते हैं। अपने अर्थो के सिद्ध करने में उन्हें नाना प्रकार के विकल्प करने पड़ते हैं. और उन विकल्पों से चित्त सदा आकुलतामय रहता है, इसलिये सुख नाम का पदार्थ वास्तविक सुख उन्हें कभी प्राप्त नहीं होता। परन्तु जो पुरुष उनके सुख को वास्तविक सुख मसझते हैं और उस सुख की वास्तविक सुख में गणना करते हैं। मैं (ग्रन्थकार) समझता हूँ, उनकी वह बड़ी भारी भूल हैं। वह सुख कभी वास्तविक सुख नहीं हो सकता । १८-१९

१८. ॐ ह्रीं इन्द्रसार्वभौमत्वादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

ज्ञानेन्द्रस्वरूपोऽहम् ।

मानव

इन्दिादि चक्रवर्त्ती के इन्द्रिय विषयी जो सुख हैं ।
वे सब विकल्प से युत हैं अतएव वे सभी दुख हैं ॥
दुख सुख ो परिभाषाएं करता है यह प्रतिक्षण मन ।
चिद्रूप शुद्ध परिभाषा सुख की करते ज्ञानीजन ॥१८॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

शुद्ध अमूर्त्त आत्मा में रस गंध पर्श या वर्ण ही ।
दर्शन ज्ञान स्वरूपी है यह पुदगल से संबंध नहीं ॥

(१९)

तात्विकं च सुखं तेषां ये मन्यन्ते ब्रुवन्ति च ।
एवं तेषामहं मन्ये महती भ्रांतिरुद्गता ॥१९॥

१९. ॐ ह्रीं इन्द्रियादिविषयेतात्त्विकसुखरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

सच्चिदानन्दोकस्स्वरूपोऽहम् ।

मानव

जब जब विकल्प होते हैं चित आकुलता मय रहता ।
वास्तविक न सुख है उनमें सच्चा सुख कभी न होता ॥
उस सुख में सुख की गणना करते रहते दुख पाते ।
यह भारी भूल जीव की सुख सच्चा कभी न पाते ॥
चिद्रूप शुद्ध तो आस्रव के पार सतत रहता है ।
जो नहीं जानता इसको वह आस्रव में बहता है ॥१९॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

विमुच्य रागादि निजं तु निर्जने पदे स्थितानां सुखमत्र योगिनाम्।
विवेकिनां शुद्धचिदात्मचेतसां विदां यथास्यान्न हि कस्यचित्तथा ॥२०॥

अर्थ- इसलिये जो योगीगण बाह्य आभ्यंतर दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग कर निरुपद्रव एकांत स्थान में निवसा करते हैं। विवेकी हित अहित के जानकार हैं। शुद्धचिद्रूप में रक्त हैं। और विद्वान हैं। उन्हें यह निराकुलतामय सुख प्राप्त होता है। उनसे अन्य किसी भी मनुष्य को नहीं ।

२०. ॐ ह्रीं निर्जनापदनिवासविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अचलविविक्तात्मोकस्स्वरूपोऽहम् ।

मानव

योगी जन बाह्याभ्यंतर तजते हैं सभी परिग्रह ।
निरुपद्रव थल एकान्त में करते निवास हो निस्पृह ॥

द्रव्य प्राण से सदा प्रथक है शुद्ध चेतना प्राण सहित ।
नव तत्त्वों छह द्रव्यों मे सर्वोत्तम है परभाव रहित ॥

हित अहित विवेकी हैं वे चिद्रूप शुद्ध में रत ही ।
विद्वान निराकुल सुख को पाते हैं निज शाश्वत ही ॥
ऐसा सुख अन्य मनुज को मिलता है नहीं कभी भी ।
पाता वह सौख्य अनाकुल ध्याता चिद्रूप जभी भी ॥२०॥

ॐह्रीं भट्टारकज्ञानभूषणविरचिततत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपरुचयेसुखस्वरूप प्रतिपादकसप्तदशाध्याये सहजानन्दोकस्स्वरूपाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्यं

छंद गीतिका

ज्ञान भाव महान का आनंद ही कुछ और है ।
एक शुद्ध महान निज चिद्रूप ही सिर मौर है ॥
चिद्रूप का जो ध्यान करते वही पाते मोक्ष सुख ।
जो न इसको जानते है वही पाते विविध दुख ॥
इसलिए चिद्रूप निज का ध्यान करना चाहिए ।
शुद्ध बुद्ध स्वरूप मय निर्वाण पाना चाहिए ॥

छंद गीत

रसिक चेतन सुनो मेरी । स्वपरिणति क्यों नहीं हेरी ॥
कहाँ तुम जा रहे बोलो । लगा संसार की फेरी ॥
भूल अपना स्वभावी बल । बने हो तुम सदा निर्बल ॥
ये परिणति मोह दुष्टा है । इसी ने आत्मा घेरी ॥
विभावी विष ही पीते हो । ज्ञान से पूर्ण रीते हों ॥
अभी तुम त्याग दो इसको । करो मत तुम तनिक देरी॥
अनंतों गुण के स्वामी तुम । शुद्ध हो निज विरामी तुम ॥
शुद्ध चिद्रूप छवि देखो । जिसे सिद्धों ने भी टेरी ॥

दोहा

महाअर्घ्य की भावना भी मंगलमय होय ।
परम शुद्ध चिद्रूप को पाये जो भी जोय ॥

बहिरात्मा तो आस्रव बंध पाप भाव का कर्त्ता है ।
कभी कभी पापानुबंधि पुण्यों का भी यह कर्त्ता है ॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्यं नि. ।

जयमाला

छंद सखी

पुण्यों का पुंज बढ़ाया स्वर्गो को शीष चढ़ाया ।
फिर गिरा अधोगति स्वामी सुधि जांगी अन्तर्यामी ॥
उन्माद हृदय में आया चिद्रूप शुद्ध बिसराया ।
निज आत्म तत्त्व जब ध्याया चिद्रूप शुद्ध निज पाया ॥
पापों के गढ़ सब जीते भवरोग हो गए रीते ।
हैं पुण्य सभी दुखकारी हैं रंच नहीं सुखकारी ॥
हैं शुद्ध भाव ही अपना दुखमय विभाव है सपना ।
चिद्रूप शुद्ध को ध्याया तो आतम ध्यान लगाया ॥
आत्मानुभूति उर जागी पर परिणति तत्क्षण भागी ।
आनन्द अतीन्द्रिय आया अपना वैभव जब पाया ॥
रागादिक दोष हरे है निज गुण के कोष भरे हैं ।
सर्वज्ञ स्वपद के स्वामी अरहंत देव हैं नामी ॥
चिद्रूप शुद्ध को पाकर हैं सुखी मोक्ष में जाकर ।
मैं भी उनका अनुयायी मैं भी हूं अमृत पायी ॥

ॐ ह्रीं सप्तदशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

परम शुद्ध चिद्रूप ही है रत्नत्रय स्रोत ।
ज्ञान भावना रूप है सुख से ओतः प्रोत ॥

इत्याशीर्वाद :

अन्तरात्मा तो पुण्यानुबंधि पुण्य ही करता है ।
शुद्ध भाव की ललक हृदय में शुद्ध भाव भी करता है ॥

ॐ

पूजन क्रमांक १९

तत्त्वज्ञान तरंगिणी अष्टादशम अध्याय पूजन

स्थापना

छंद गीतिका

तत्त्व ज्ञान तंरगिणी अध्याय अष्टादशम परम ।
सतत जाग्रत रहूं निज में सतत हो अविकार श्रम ॥
शुद्ध हूं चिद्रूप हूँ यह ध्यान करना है उचित ।
महा श्रम क्रम पूर्वक परिपूर्ण करना सुनिश्चत ॥

दोहा

यह अंतिम अध्याय है जिन आगम का सार ।
द्रव्य भाव जिन मुनि बनूँ पाऊं पद अविकार ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ।

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्व ज्ञान तरंगिणी जिनागम अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद तांटक

निर्विकार मन से लाया हूँ उज्ज्वल जल भव भयहारी ।
जन्म जरा मरणादि नाश हित पाऊं शिवपद अविकारी ॥
एक शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति का लक्ष्य हृदय में धारा है ।
राग द्वेष मोहादि भाव से मैंने किया किनारा है ॥

अंतरात्मा भव स्थिति छेदन में तत्पर रहता है ।
फिर यह परमात्मा हो जाता निज स्वभाव में बहता है ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. ।

निर्विकार शीतल चंदन की सुरभि मुझे अब भायी है ।
भव आताप नाश करने की मैंने शपथ उठायी है ॥
एक शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति का लक्ष्य हृदय में धारा है ।
राग द्वेष मोहादि भाव से मैंने किया किनारा है ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. ।

निर्विकार तंदुल धवलोज्ज्वल बड़े भाव से लाया हूं ।
अक्षय पद पाने को स्वामी चरण शरण में आया हूं ॥
एक शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति का लक्ष्य हृदय में धारा है ।
राग द्वेष मोहादि भाव से मैंने किया किनारा है ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि. ।

निर्विकार पुष्पों की पावन गंध काम ज्वर नाशक है ।
उर निष्काम भावना जागी जो गुणशील प्रकाशक है ॥
एक शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति का लक्ष्य हृदय में धारा है ।
राग द्वेष मोहादि भाव से मैंने किया किनारा है ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय कामबाण विनाशनाय पुष्पं नि. ।

निर्विकार नैवेद्य रसमयी परम तृप्ति के दाता हैं ।
क्षुधारोग विध्वंसक हैं ये त्रिभुवन में विख्याता हैं ॥
एक शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति का लक्ष्य हृदय में धारा है ।
राग द्वेष मोहादि भाव से मैंने किया किनारा है ॥

रागादिक मिथ्या विकल्प जालों से यह बाहर रहता ॥
अविरति से भी नहीं मित्रता संयम सरिता में बहता ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. ।

निर्विकार दीपक स्व ज्योतिमय भ्रम अज्ञान तिमिर विनाशक।
अविकारी है शुद्ध आत्मा केवलज्ञानमयी शासक ॥
एक शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति का लक्ष्य हृदय में धारा है ।
राग द्वेष मोहादि भाव से मैंने किया किनारा है ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

निर्विकार निज धर्म धूप ही कर्म नाश में सक्षम है ।
भाव पूर्वक कर्म नाश में होता नहीं कभी श्रम है ॥
एक शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति का लक्ष्य हृदय में धारा है ।
राग द्वेष मोहादि भाव से मैंने किया किनारा है ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. ।

निर्विकार भावों का तरु ही महामोक्ष फल दाता है ।
एकमात्र ज्ञायक स्वभाव ही केवल दृष्टा ज्ञाता है ॥
एक शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति का लक्ष्य हृदय में धारा है ।
राग द्वेष मोहादि भाव से मैंने किया किनारा है ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय मोक्षफल प्राप्ताय फलं नि. ।

निर्विकार भावों के अर्घ्य महान विश्व कल्याण मयी ।
पद अनर्घ्य के ये दाता हैं शुद्ध बुद्ध निर्वाणजयी ॥
एक शुद्ध चिद्रूप प्राप्ति का लक्ष्य हृदय में धारा है ।
राग द्वेष मोहादि भाव से मैंने किया किनारा है ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं नि. ।

अंतरंग में निज परमात्म स्वरूप भावना भरी हुई ।
परम सुखामृत में रति करता ज्ञान भावना हरी हुई ॥

अर्घ्यावलि

अष्टादशम अध्याय

शुद्ध चिद्रूप की प्राप्ति का क्रम

(१)

श्रुत्वा श्रद्धाय वाचा ग्रहणमपि दृढ़ं चेतसा यो विधाय,
कृत्वांतःस्थैर्यबुद्ध्यापरमनुभवनं तल्लयं याति योगी।
तस्य स्यात् कर्मनाशस्तदनु शिवपदं च क्रमेणेति शुद्ध-
चिद्रूपोऽहं हि सौख्य स्वभवमिहि सदान्नभव्यस्य नूनम् ॥१॥

अर्थ- जो योगी "मैं शुद्धचिद्रूप हूं" ऐसा भले प्रकार श्रवण और श्रद्धान कर, वचन और मन से उसे ही दृढ़ रूप से धारण कर, अन्तरंग को थिर कर; और पर पदार्थो को जानकर उससका (शुद्धचिद्रूप का) अनुभव और उसमें अनुराग करता है। वह आसन्न भव्य बहुत जल्दी मोक्ष जाने वाला योगी क्रम से समस्त कर्मो का नाशकर अतिशय विशुद्ध मोक्षमार्ग और निराकुलतामय आत्मिक सुख का लाभ करता है ।

१. ॐ ह्रीं श्रवणवचनग्रहणादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चित्सौख्यस्वरूपोऽहम् ।

छंद विधाता

शुद्ध चिद्रूप हूं ऐसा श्रवण श्रद्धान कर प्राणी ।
वचन मन पूर्वक दृढ़ रूप से तुम धार लो प्राणी ॥
निजंतर में उसे थिर कर उसे सर्वोत्तम जानो ।
तुम्ही आसन्न उत्तम भव्य अपनी शक्ति पहचानो ॥
मोक्ष का मार्ग पा करके क्रमिक कर्मो को क्षय कर दो ।
शुद्ध चिद्रूप निधि पाओ आत्मिक सौख्य उर भर लो ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥१॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

निश्चय से परमात्मा निष्क्रिय उपशम मूर्त्ति परम गुणवान।
केवल ज्ञानादिक अनंत गुण का स्वामी है यह भगवान ॥

(२)

गृहिभ्यो दीयते शिक्षा पूर्व षट्कर्मपालने ।
व्रतांगीकरणे पश्चात्संयमग्रहणे ततः ॥२॥

अर्थ- जो मनुष्य गृहस्थ हैं उन्हें सबसे पहिले देवपूजा गुरु उपासना आदि छह आवश्यक कर्मो के पालने के पस्चात् व्रतों के धारण करने की और फिर संयम ग्रहण करने की शिक्षा देनी चाहिये ।

२. ॐ ह्रीं गृहस्थयोग्यषट्कर्मपालनविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

नित्यानन्दरत्नोऽहम् ।

छंद विधाता

शुद्ध चिद्रूप की शिक्षा निजंतर में ग्रहण करता ।
तिमिर मिथ्यात्व का क्षय कर शुद्ध समकित वरण करता॥
ग्रहस्थों को देव पूजा आदि आवश्यकी पालन ।
बाद में धार व्रत संयम ग्रहण शिक्षा हो अति पावन ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥२॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(३)

यतिभयो दीयते शिक्षा पूर्व संयमपालने ।
चिद्रूपचिंतने पश्चादयमुक्तो बुधैः क्रमः ॥३॥

अर्थ- परन्तु जो यति हैं निग्रन्थ रूप धारण कर वनवासी हो गये हैं- उन्हें सबसे पहिले संयम पालने की और पीछे शुद्धचिद्रूप के ध्यान करने की शिक्षा देनी चाहिये ।

३. ॐ ह्रीं संयमपालनशिक्षायुक्तयतिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अभेदोऽहम् ।

विधाता

गुण अनंत आधार भव्य शुद्धात्म तत्त्व ही महा महान ।
शुद्ध आत्मा का संवेदन प्राप्त कराता है निर्वाण ॥

साधु निर्ग्रंथ वनवासी करें संयम का दृढ़ पालन ।
शुद्ध चिद्रूप को ध्यायें यही शिक्षा हो मन भावन ॥
शुद्ध चिद्रूप की निधियाँ भरीं है ज्ञान सागर में ।
मगर वैचित्र्य तो यह है भरी वे आत्म गागर में ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥३॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४)

संसारभीतितः पूर्व रुचिमुक्ति सुखे दृढ़ा ।
जायते यदि तत्प्राप्तेरुपायः सुगमोस्ति तत् ॥४॥

अर्थ- जिन मनुष्यों की संसार के भय से पहिले ही मोक्ष सुख की प्राप्ति में रुचि दृढ़ है। जल्दी संसार के दुःखों से मुक्त होना चाहते हैं। समझ लेना चाहिये। उन्हें मुक्ति की प्राप्त का सुगम उपाय मिल गाय। वे बहुत शीधघ मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं ।

४. ॐ ह्रीं संसारभयरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्भयानन्दस्वरूपोऽहम् ।

विधाता

शुद्ध चिद्रूप के ही रत्न आभूषण मुझे भाए ।
शुद्ध चिद्रूप पाने को अतः निज भाव उर आए ॥
जिन्हें संसार से है द्रोह मोक्ष की प्राप्ति में रुचि है ।
मुक्ति की विधि सुगम पाते हृदय में पूर्णतः शुचि है ॥
वेश निर्ग्रंथ धारण कर पूर्ण संयम हृदय लाते ।
शुद्ध चिद्रूप को ध्याते मुक्ति सुख शीघ्र वे पाते ॥
शुद्ध चिद्रूप से भूषित त्रिकाली ध्रुव ही है आत्मा ।
यही सिद्धात्मा जानो यही है श्रेष्ठ परमात्मा ॥

भावास्रव द्रव्यास्रव विरहित संवर सहित ज्ञान गुण भूप ।
भाव बंध अरु द्रव्य बंध से रहित निर्जरा पति निजरूप॥

शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥४॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय. अर्घ्यं नि. ।

(५)

युगपज्जायते कर्ममोचनं तात्विकं सुखम् ।
लयाच्च शुद्धचिद्रूपे निर्विकल्पस्य योगिनः ॥५॥

अर्थ- जो योहग निर्विकल्प हैं। समस्त प्रकार की आकुलताओं से रहितहैं। और शुद्धचिद्रूप में लीन है। उन्हें एक साथ समस्त कर्मो का नाश और सात्विक सुख प्राप्त होता है ।

५. ॐ ह्रीं कर्ममोचनादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निष्कर्मसुखस्वरूपोऽहम् ।

विधाता

सुदर्शन मेरु से ऊंचा शुद्ध चिद्रूप का पर्वत ।
लोक तीनों से हैं ऊंचा शुद्ध चिद्रूप ध्रुव शाश्वत ॥
वही आकुलता से विरहित सुमुनि अविकल्प जो होता ।
शुद्ध चिद्रूप में लय हो आत्मिक सुख सहित होता ॥
शुद्ध चिद्रूप सरिता से करो अभिषेक निज चेतन ।
शुद्ध निर्मल बनोगे तुम ज्ञान पति तुम बनो चेतन ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥५॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय. अर्घ्यं नि. ।

(६)

अष्टावंगानि योग्स्य यमो नियम आसनम् ।
प्राणयामस्तथा प्रत्याहारो मनसि धारणा ॥६॥

अर्थ- यह, यम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान प्रत्याहार और समाधि ये आठ अंग योग के हैं इन्हें के द्वारा योग की सिद्धि होती है। इसलिये जो मुनि मोक्षाभिलाषी हैं।

ध्रुव चैतन्य विलास स्वरूप आत्मा की अनुभूति करो ।
अब विभाव परिणति को क्षय कर निर्मल आत्म प्रतीति करो॥

समस्त कर्मो से अपनी आत्मा को मुक्त करना चाहते हैं। उन्हें चाहिए कि शास्त्र से इनका यथार्थ स्वरूप जानकर सदा अभ्यास करते रहें । ५-६-७

६. ॐ ह्रीं यमनियमासमप्राणायामप्रत्याहारादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

नियोगोऽहम् ।

विधाता

शुद्ध चिद्रूप अति पावन संदेशा शुद्ध लाया है ।
चतुर्गति के दुखों का अंत मेरे पास आया है ॥
शुद्ध चिद्रूप का पावन सरोंवर मैंने पाया है ।
शुद्ध चिद्रूप अति पावन संदेशा शुद्ध लाया है ॥
यम नियम आसन प्राणायाम धारणा प्रत्याहार स्वध्यान ।
समाधि युक्त आठों संग योग के होते श्रेष्ठ प्रधान ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥६॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(७)

ध्यानञ्चैव समाधिश्च विज्ञायैतानि शास्त्रतः ।
सदैवाभ्यसनीयानि भदेतेन शिवार्थिना ॥७॥

७. ॐ ह्रीं ध्यानसमाध्यादिरूपाभ्यासविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अयोगोऽहम् ।

विधाता

योग की सिद्धि है इनसे मोक्ष अभिलाषी में पायी ।
शास्त्र से ज्ञान करने का किया अभ्यास सुखदायी ॥
शुद्ध चिद्रूप का सागर हृदय में लहलहाता है ।
स्वर्ग सुख दे के फिर यह मुक्ति का सुख उर में लाता है॥

भाव बंध के निमित्त से ही द्रव्य बंध होता तत्काल ।
द्रव्य बंध के निमित्त से ही बढ़ता है संसार विशाल ॥

शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥७॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८)

भावान्मुक्तो बवेच्छुद्धचिद्रुपोहमिति स्मृतेः ।
यद्यात्मा क्रम तो द्रव्यात्स कथं न विधीयते ॥८॥

अर्थ- यह ात्मा "मैं शुद्धचिद्रूप हूं" ऐसा स्मरण करते ही जब भावमुक्त हो जाता है। तब वह क्रम से द्रव्यमुक्त तो अवश्य ही होगा ।

८. ॐ ह्रीं भावद्रव्यमुक्तत्वविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

आत्मरत्नोऽहम् ।

विधाता

शुद्ध चिद्रूप का कर ध्यान भाव से मुक्त हो जाता ।
क्रमिक पुरुषार्थ बल से फिर द्रव्य से मुक्त हो जाता ॥
शुद्ध चिद्रूप का ही ध्यान सर्वोत्तम सुखो का घर ।
यही अरहंत पद दाता सिद्ध पद देता है सत्वर ॥
शुद्ध चिद्रूप की छाया जगत में श्रेष्ठ सर्वोत्तम ।
स्मरण मात्र से शिव सुख प्रदाता पूर्ण परमोत्तम ॥
शुद्ध चिद्रूप का ही ध्यान परमोत्तम ज्ञान का घर ।
शुद्ध चिद्रूप का ही ज्ञान सर्वोत्तम सुखो का घर ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥८॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(९)

क्षणे क्षणे विमुच्येत शुद्धचिद्रूपचिंतया ।
तदन्यचितया नूनं वध्येतैव त संशयः ॥९॥

जब तक है चारित्र मोह का उदय तभी तक है संसार ।
बारहवें में क्षय होता है क्षय हो जाता सर्व विकार ॥

अर्थ- यदि शुद्धचिद्रूप का चिंतवन किया जायगा, तो प्रतिक्षण कर्मो की निर्जरा होती चली जाएगी। और यदि पर पदार्थो का चिंतवन होगा, तो प्रतिसमय कर्म बंध होता रहेगा । इसमें कोई संदेह नहीं ।

९. ॐ ह्रीं बन्धकारणान्यचिन्तारहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्मलानन्दस्वरूपोऽहम् ।

विधाता

शुद्ध चिद्रूप के बल से हुए सब सिद्ध अविकारी ।
निरंजन नित्य पद पाया अनंतों गुण के भंडारी ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन कर्म से मुक्त करता है ।
द्रव्य पर का अल्प चिन्तन कर्म के बंध करता है ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥९॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१०)

सयोगक्षीणमिश्रेषु गुणस्थानेषु नो मृतिः ।
अन्यत्र मरणं प्रोक्तं शेषत्रिक्षपकै र्विना ॥१०॥

अर्थ- संयोग केवली क्षीणमोह मिश्र तथा आठवें नवमें और दशवे गुणस्थान की क्षपक श्रेणी में मरण नहीं होता। परन्तु इनसे भिन्न गुणस्थानों में मरण होता है ।

१०. ॐ ह्रीं मरणरहितसयोगादिगुणस्थानविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अमरज्ञानस्वरूपोऽहम् ।

विधाता

सयोगी क्षीण मोही मिश्र थल में ना मरण होता ।
क्षपक अष्टम नवम इसमें अंत तन का नहीं होता ॥
शेष के गुण स्थानों में मरण होता ही रहता है ।
गुणस्थानों का जय कर्त्ता मोक्ष के मध्य रहता है ॥

परम परिणामिक स्वभाव ही एक मात्र है आश्रय योग्य ।
शेष भाव चारों ही पूरे पूरे हैं सम्पूर्ण अयोग्य ॥

शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥१०॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११)

मिथ्यात्वेऽविरते मृत्या जीवा यान्ति चतुर्गतीः ।
सासादने विना श्वभ्रं तिर्यगादिगतित्रयम् ॥११॥

अर्थ- जो जीव मिथ्यात्व और अविरत सम्यग्दृष्टि (जिसने सम्यत्व होने के पहिले आयुबंध कर लिया हो) गुणस्थानों में मरते हैं, वे मनुन्य तिर्यंच देव नारक चारों गतियों में जन्म लेते हैं। और सासाधन गुणस्थान में मरनेवाले नरकगति में न जाकर शेष तिर्यंच आद तीनों गतियों में जाते हैं ।

११. ॐ ह्रीं मरणयुक्तमिथ्यात्वादिगुणस्थानविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अमृतचैतन्यस्वरूपोऽहम् ।

विधाता

प्रथम चौथे में जो मरते चतुर्गतियों में जाते हैं ।
मरण सासादन में यदि हो तो नहीं नरकों में जाते हैं ॥
आयु का पूर्व में हो बंध समकित प्राप्ति के पहिले ।
वही नरकों में जाते हैं अन्य तो सुगति ही पाते ॥
शुद्ध चिद्रूप पाने को क्रमिक धीरज सहित चलना ।
सुविधि पूर्वक निजंतर में ध्यान से कर्म वसु छलना ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥११॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२)

अयोगे मरणं कृत्वा भव्या यान्ति शिवालयम् ।
मृत्वा देवगतिं यान्ति शेषेषु सप्तसु ध्रुवम् ॥१२॥

नयातीत पक्षातिक्रान्त हूं शब्दातीत व वचनातीत ।
रसातीत हूं गंध अतीती पर्श रहित हूँ राग़ातीत ॥

अर्थ- अयोग केवली चौदहवें गुणश्तान से मरने वाले जीव मोक्ष जाते हैं। और शेष सात गुणस्थानों से मरने वाले देव होते हैं ।

१२. ॐ ह्रीं देवोत्पन्नयोग्यसप्तगुणस्थानविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अजन्माज्ञानस्वरूपोऽहम् ।

विधाता

चौदवाँ त्यागते तत्क्षण मोक्ष में ही त्वरित जाते ।
शेष सातों गुण थानों मे मरें तो देव पद पाते ॥
गुण स्थानों में मत उलझो इन्हें तजना ही है आगे ।
भजो चिद्रूप ही अपना सतत अनवरत मन लागे ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥१२॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१३)

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानं कृत्वा यान्त्यधुना दिवम् ।
तत्रेन्द्रियसुखं भुक्तवा श्रुत्वा वाणी जिनागताम् ॥१३॥

अर्थ- इस समय भी जो जीव शुद्धचिद्रूप के ध्यान करने वाले हैं। वे मरकर स्वर्ग जाते हैं। और वहाँ भले प्रकार इन्द्रियजन्य सुखों को भोगकर भगवान जिनेन्द्र के मुख से जिनवाणी श्रवण कर समस्त जिन मंदिरों में जा और उनकी पूजन आदि कर मनुष्य भव और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र को प्राप्त कर, शुद्धचिद्रूप के ध्यान से समस्त कर्मो का क्षय कर सिद्धस्थान को प्राप्त होकर तीन लोक के शिखर पर जा विराजते हैं १३-१४-१५

१३. ॐ ह्रीं इन्द्रियसुखभोगरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

चैतन्यमृताहारस्वरूपोऽहम् ।

विधाता

शुद्ध चिद्रूप के ध्यानी जिस समय स्वर्ग जाते हैं ।
वहाँ पाते हैं इन्द्रिय सुख दिव्य ध्वनि सहज पाते हैं ॥

पूर्ण शुद्ध हूं तन प्रमाण हूँ गुण अनंत ज्ञानादि सहित ।
अविकल्पी हूं अमूर्तिक हूं पंचेन्द्रिय से पूर्ण रहित ॥

शुद्ध चिद्रूप के ध्यानी जगत में विरले होते हैं ।
किन्तु वे जो भी होते हैं एक दिन सिद्ध होते हैं ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥१३॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४)

जिनालयेषु सर्वेषु गत्वा कृत्वार्चनादिकम् ।
ततो लब्धा नरत्वं च रत्नत्रयविभूषणम् ॥१४॥

१४. ॐ ह्रीं जिनालयादिगमनविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजालयोऽहम् ।

विधाता

जिनालय पूजते हैं वे मनुज भव फिर से पाते हैं ।
रत्नत्रय पूर्ण पाते हैं ध्यान चिद्रूप ध्याते हैं ॥
शुद्ध चिद्रूप का उपवन सुरभि गुण से ये है संयुत ।
गंध जो इनकी लेता है वही होता है शिवसुख युत ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥१४॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१५)

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानबलात्कृत्वा विधिक्षयं ।
सिद्धस्थानं परिप्राप्य त्रैलोक्यशिखरे क्षणात् ॥१५॥

१५. ॐ ह्रीं विधिक्षयविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्विधिस्वरूपोऽहम् ।

विधाता

वैय्यावृत्ति धर्म श्रावक का मुनि जन की सेवा करना ।
दुखिया मुनियों की पीड़ा को विनय सहित तत्क्षण हरना॥

शुद्ध चिद्रूप के ध्याता कर्म क्षय त्वरित करते हैं ।
शिखर लोकाग्र राजित हो सिद्ध पद पूर्ण वरते हैं ॥
शुद्ध चिद्रूप का आकाश शिव सुख रस का ही है स्रोत।
इसी में लीन होता जो सौख्य से होता ओतः प्रोत ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥१५॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६)

साक्षाच्च शुद्धचिद्रूपा भूत्वात्यंतनिराकुलाः ।
तिष्ठन्त्यनन्तकालं ते गुणाष्टकसमन्वित्ताः ॥१६॥

अर्थ- तथा वहां पर साक्षात् शुद्धचिद्रूप होकर अत्यन्त निराकुल और केवदर्शन केवलज्ञान अव्याबाध सुख आदि आठों गुणों से भूषित हो अनंत काल पर्यंत निवास करते हैं ।

१६. ॐ ह्रीं सिद्धपर्यायविकल्परहितशुद्धचिद्रपाय नमः ।

स्वभावसिद्धालयोऽहम् ।

विधाता

वहाँ सम्मान होता है शुद्ध चिद्रूप से पूरा ।
निराकुल ज्ञान दर्शन सुख वीर्य गुण है प्रचुर पूरा ॥
अष्ट गुण भूषित होता है अनंतों गुण का बन स्वामी ।
अनंतानंत कालों तक सिद्ध पति आत्म विश्रामी ॥
शुद्ध चिद्रूप का यह फल हमें भी प्राप्त हो स्वामी ।
जगे पुरुषार्थ शिवसुख का हृदय में ऊर्जा नामी ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥१६॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

रत्नत्रय से युक्त अभेद समाधि न होगी जब तक प्राप्त।
विषय कषायों में उलझेगा सुख की होगी अल्प न व्याप्ति॥ .

(१७)

क्रमतः क्रमतो याति कीटिका शुकवत्फलम् ।
नगस्थं स्वस्थितं ना च शुद्धचिद्रूपचिंतनम् ॥१७॥

अर्थ- जिदस प्रकार कीड़ा क्रम क्रम से धीरे धीरे वृक्ष के ऊपर चड़कर शुक के समान फल का आस्वादन करती है। उसी प्रकार यह मनुष्य भी क्रम क्रम से शुद्धचिद्रूप का चिंतवन करता है ।

१७. ॐ ह्रीं कीटिकाफलभक्षणविकल्परहितशुद्धचिद्रपाय नमः ।

ज्ञानपीयूषहारोऽहम् ।

विधाता

जिस तरह कीड़ी क्रम क्रम से वृक्ष ऊपर है चढ़ जाती।
प्राप्त कर शुक समान सुफल स्वाद उसका वह पा जाती ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन एक संग जो न कर पाएँ ।
त्याग पर द्रव्य से ममता क्रमिक चिद्रूप निज ध्याएँ ॥
शुद्ध चिद्रूप हो तन में शुद्ध चिद्रूप हो मन में ।
शुद्ध चिद्रूप चिन्तन में शुद्ध चिद्रूप जीवन में ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥१७॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१८)

गुर्वादीनां च वाक्यानि श्रुत्वा शास्त्राण्यनेकशः ।
कृत्वाभ्यासं यदा याति तद्धिध्यानं क्रमागतम् ॥१८॥

अर्थ- जो पुरुष गुरु आदि के वचनों को भले प्रकार श्रवणकर और शास्त्रों का भले प्रकार अभ्यास कर शुद्धचिद्रूप का चिंतवन करता है उसके क्रम से शुद्धचिद्रूप का चिन्तवन ध्यान कहा जाता है ।

निज शुद्धात्म भावना से उत्पन्न सहज आनंद प्रधान ।
पर परिणाम नष्ट होते ही प्राणी पाता है निर्वाण ॥

१८. ॐ ह्रीं शास्त्राभ्यासादिविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

परिपूर्णबोधामृतोऽहम् ।

विधाता

पुरुष जो सुगुरु से सुनकर तत्त्व का होता अभ्यासी ।
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन नित्य का तत्त्व अभ्यासी ॥
शुद्ध चिद्रूप का अभ्यास ही शिव सौख्य दाता है ।
सिद्ध सम आत्मा जो जानता शिव सौख्य पाता है ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥१८॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९)

जिनेशागमनिर्यासमात्रं श्रुत्वा गुरोर्वचः ।
विनाभ्यासं यदा याति तद्ध्यानं चाक्रमागतम् ॥१९॥

अर्थ- किन्तु जो पुरुष भगवान जिनेन्द्र के शास्त्रों के तात्पर्य मात्र को बतलाने वाले गुरु के वचनों को श्रवण कर अभ्यास नहीं करता बारबार शास्त्रों का मनन चिंतवन नहीं राता। उसके जो शुद्धचिद्रूप का ध्यान होता है वह क्रम से नहीं होता ।

१९. ॐ ह्रीं जिनेशागमनिर्यासमात्ररहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

स्वयंपूर्णोऽहम् ।

विधाता

पुरुष जिनशास्त्र गुरु से सुन तत्त्व अभ्यास ना करता।
ध्यान चिद्रूप अक्रम वह कहाता यही श्रुत कहता ॥
शुद्ध चिद्रूप का लक्षण ग्रंथ यह पढ़ के तुम जानो ।
शुद्ध चिद्रूप के भीतर चलो शिव सौख्य उर आनो ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥१९॥

निःशंकित वात्सल्य आदि ये सम्यक् दर्शन के है अंग ।
भोगों की आकांक्षा है तो सम्यक दर्शन होगा भंग ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२०)

न लाभमानकीर्त्यर्था कृता कृतिरिंय मया ।
किंतु मे शुद्धचिद्रूपे प्रीतिः सैवात्र कारणम् ॥२०॥

अर्थ- अनत में ग्रन्थकार ग्रन्थ के निर्माण का कारण बतलाते हैं, कि यह जो मैंने ग्रन्थ बनाया है। वह किसी प्रार के लाभ मान व कीर्ति की इच्छा से नहीं बनाया। परंच शुद्ध चिद्रूप में मेरा गाढ़ा प्रेम है। इसी कारण इसका निर्माम किया है ।

२०. ॐ ह्रीं लाभमानकीर्त्यादिरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

अलोभज्ञानरूपोऽहम् ।

विधाता

लाभ अरु मान वश मैंने ग्रंथ रचना नहीं की है ।
कीर्त्ति की इच्छा से भी तो ग्रंथ रचना नहीं की है ॥
शुद्ध चिद्रूप से है प्रेम मेरा गाढ़ अंतर से ।
अतः इस ग्रंथ की रचना रची मैंने निजंतर से ॥
शुद्ध चिद्रूप की महिमा का इसमें पूरा वर्णन है ।
शुद्ध चिद्रूप के विपरीत जो है उसका खंडन है ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥२०॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२१)

जातः श्रीसकलादिकीर्तिमुनिपः श्रीमूलसंधेऽग्रणी-
स्तत्पद्योदयपर्वते रविरभूद्भव्यांबुजानंदकृत् ।
विख्यातो भुवनादिकीर्तिस्थ यस्तत्पादकंजे रतः,
तत्त्वज्ञानतरङ्गिणीं स कृतवानेतां हि चिद्भूषण् ॥२१॥

अर्थ- मूल संघ के आचार्यो में अग्रणी सर्वोत्तम विद्वान आचार्य सकलकीर्ति हुए। उनके

आत्म भावना से परांग मुख आत्म सुखामृत स्वाद रहित।
दुर्ध्यानों में समय बिताता बंध भाव से सदा सहित ॥

पट्टरूपी उदयाचल पर सूर्य के समान भव्यरूपी कमलों को आन्द प्रदान करने वाले प्रसिद्ध भट्टारक भुवनकीर्ति हुए। उन्हीं के चरण कमलों का भक्त मैं ज्ञानभूषण भट्टारक हूँ। जिसने कि इस तत्त्वज्ञान तरंगिणी ग्रन्थ का निर्माण किया है ।

२१. ॐ ह्रीं सकलकीर्त्यादिनामविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्नामोऽहम् ।

विधाता

मूल संघ के श्री आचार्य सकल कीर्त्ति अग्रणी थे ।
उन्हीं के अनुयायी आचार्य भुवन कीर्त्ति बहु गुणी थे ॥
उन्हीं के चरणों का सेवन ज्ञान भूषण भट्टारक हैं ।
तत्त्वज्ञान तरंगिणि ग्रंथ का निर्माण कारक हैं ॥
तरंगिणि ज्ञान की हमको तुम्हीं ने दी हैं हे आचार्य ।
धन्य जीवन उसे पाकर हुआ है सिद्ध सारा कार्य ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥२१॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२२)

क्रीणन्ति ये प्रविश्येमां तत्त्वज्ञान तरङ्गिणीम् ।
ते स्वर्गादिसुखं प्राप्य सिद्धयन्ति तदनन्तरम् ॥२॥

अर्थ- जो महानुभाव इस तत्वज्ञान तरंगिणी तत्त्वज्ञान रूपी नदी में प्रवेशकर क्रीड़ा अवगाहन करेंगे। वे स्वर्ग ादिके सुखों को भोगकर मोक्ष सुख को प्राप्त होंगे स्वर्ग सुख भोगने के बाद उन्हें अवश्य मोक्ष सुख की प्राप्ति होगी ।

२२. ॐ ह्रीं स्वर्गादिसुखरहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निजात्मसौख्यालयोऽहम् ।

विधाता

तरंगिणि ज्ञान में क्रीड़ा करें जो सुख के हैं इच्छुक ।
स्वर्ग सुख मोक्ष सुख होगा जो होते सदैव अनइच्छुक ॥

सब संकल्प विकल्प त्याग दे यदि सामायिक करना है ।
रागादिक जल्पों को क्षय कर अगर कर्म वसु हरना है ॥

शुद्ध चिद्रूप की छाया जिसे भी प्राप्त हो जाती ।
जागती हैं सुमति उसकी बुद्धि भी शुद्ध हो जाती ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥२२॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२३)

यदैव विक्रमातीताः शतपंचदशाधिकाः ।
षष्टिःसंवत्सरा जातास्तदेयं निर्मिता कृतिः ॥२३॥

अर्थ- जिस समय विक्रम संवत् के पंद्रह सौ साठ वर्ष (शक संवतं के चौदह सौ पच्चीस अथवा खृीष्ट संवत् के पंद्रह सौ तीन वर्ष) बीत चुके थे। उस समय इस तत्त्वज्ञान तरंगिणी रूपी कृति का निर्माण किया गया ।

२३. ॐ ह्रीं विक्रमातीतादिकालविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

सुखविक्रमोऽहम् ।

विधाता

नृपति विक्रम के पंद्रह सौ साठ जब वर्ष हैं बीते ।
तभी रचना हुई इसकी भाव दुर्भाव से रीते ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥२३॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(२४)

ग्रन्थसंख्यात्र विज्ञेया लेखकैः पाठकै किल ।
षटत्रिंशदधिका पंचशती श्रोतृजनैरपि ॥२४॥

अर्थ- इस ग्रन्थ की सब श्लोक संख्या पांच सौ छत्तीस है, ऐसा लेखक पाठक और श्रोताओं को समझ लेना चारिये। अर्थात् यह ग्रन्थ पांच सौ छत्तीस श्लोकों में समाप्त हुआ है । (मगंर सम्पिरिति ३९७ श्लोक ही है)

मोक्षमार्ग में चलते जाना नहीं अटकना तू क्षण भर ।
राग द्वेष के भाव न आने देना अतंर में कण भर ॥

२४. ॐ ह्रीं ग्रन्थसंख्याविकल्परहितशुद्धचिद्रूपाय नमः ।

निर्ग्रन्थोऽहम् ।

विधाता

ग्रंथ श्लोक संख्या पांच सौ छत्तीस है जानो ।
मगर अब तीन सौ सत्तानवे श्लोक हैं मानो ॥
शेष श्लोक काल के गर्त्त में जा कर समाए हैं ।
मगर जो हैं वे पूरे हैं भाग्य से हमने पाए हैं ॥
शुद्ध चिद्रूप का चिन्तन शुद्ध चिद्रूप का मन्थन ।
शुद्ध चिद्रूप है सक्षम नाशता कर्म के बंधन ॥
ज्ञान भूषण नमन तुमको किया पुरुषार्थ हे मुनिवर ।
ज्ञान धारा हमें दे दी शुद्ध चिद्रूप युत सत्वर ॥
किया है यह विधान हमने शान्ति पाने को हे स्वामी ।
शुद्ध चिद्रूप का बल पा बनें हम आत्म विश्रामी ॥
भूल इसमें अगर हो तो क्षमा करना हमें मुनिवर ।
भेद विज्ञान ही देना मिले सम्यक् स्वपथ सुखकर ॥
शुद्ध चिद्रूप के स्वामी जगत के जीव सारे हैं ।
मगर अज्ञान के कारण हृदय मिथ्यात्व धारे हैं ॥२४॥

ॐ ह्रीं भट्टारकज्ञानभूषणविरचिततत्त्वज्ञान तरंगण्यां शुद्धचिद्रूपप्राप्तिक्रम प्रतिपादकाष्टादशाध्याये परमानन्दस्वरूपाय पूर्णार्घ्यं नि.र्वपामीति स्वाहा ।

महाअर्घ्यं

गजल

कोई भी कर्म नहीं कर्म बंध करता है ।
अपनी ही भूल से ये जीव बंध करता है ॥
कर्म को देना दोष यह पुरानी आदत है ।
खोटी आदत को समझदार जीव हरता है ॥

पंचाचार स्वरूप जानकर चेतन बन पंचाचारी ।
महातपो धन आनंद घन बन तू ही तो है गुण धारी ॥

जिसने भी संग किया पर का उसने दुख पाया ।
लोहा भी अग्नि संग रह के कष्ट भरता है ॥
यह अनादि का नियम भूल गया तू चेतन ।
कर्म से जो न चिपकता वह बंध हरता है ॥
जैसा बोया है बीज वैसा ही फल पाएगा ।
जैसा जो करता है वह वैसा ही तो भरता है ॥
शुद्ध चिद्रूप की महिमा जो हृदय लाता है ।
वही संसार दुख समुद्र पार करता है ॥

दोहा

परम शुद्ध चिद्रूप का महाअर्घ्य सुविशाल ।
यह स्वतंत्र चिद्रूप है परभावों का काल ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाअर्घ्यं नि.।

जयमाला

छंद विजया

जिनागम का स्वाध्याय निज ज्ञान के हित ।
सतत करना होगा तुम्हें मेरे चेतन ॥
यही योग सर्वोच्च उत्तम मनोहर ।
महा पुण्य से पाया तुमने मेरे मन ॥
ये प्रथमानुयोग बड़े काम का है ।
ये करुणानुयोग स्वपरिणाम का है ॥
ये चरणानुयोग स्वचारित्र दाता ।
ये द्रव्यानुयोग परम धाम का है ॥
ये चारों ही अनुयोग कल्याणमय हैं ।
महा बुद्धि दाता परम श्रेष्ठ हित कर ॥
सुरुचि पूर्वक करते हैं अध्ययन जो ।
वहीप्राप्त करते हैं निज ज्ञान सुखकर ॥

कर्मो ने आवरण तुम्हारे ऊपर जैसे डाला है ।
तुम उन पर आवरण डाल दो जिन को तुमने पाला है॥

विकथाओं से मुख मोड़ कर तुम करो अब ।
जिनागम का स्वाध्याय निज मेरे चेतन ॥
यही ज्ञान का स्रोत हैं सौख्य दाता ।
इसी का करो अध्ययन मेरे चेतन ॥
स्वपर ज्ञान पाने की विधि भी यही है ।
तुम्हें भेद विज्ञान की प्राप्ति होगी ॥
सरलता से तत्त्वों का निर्णय करोगे ।
हृदय में सहज शान्ति की व्याप्ति होगी ॥
तुम्हें होंगे समकित के दर्शन अनूठे ।
तुम्हे आत्म दर्शन का अवसर मिलेगा ॥
सहज ज्ञान धारा का निर्झर झरेगा ।
तुम्हरा हृदय ज्ञान पाकर खिलेगा ॥
विभावों के बंधन स्वयं होंगे ढीले ।
स्वभावों की महिमा हृदय में जगेगी ॥
महामोह मिथ्यात्व की क्रूर बदली ।
तुम्हें जागता लख स्वयं ही भगेगी ॥
यही माता जिनवाणी का है संदेशा ।
यही तीर्थेशों की आज्ञा है पावन ॥
इसे मान कंर यदि चलोगे स्वपथ पर ।
तो सुख शान्ति पाओगे अपनी सुहागिन ॥

ॐह्रीं अष्टादशम अध्याय समन्वित श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

दोहा

परम शुद्ध चिद्रूप ही त्रैकालिक निर्बंध ।
लखकर रवि शशि ज्योति भी हो जाती है मंद ॥

इत्याशीर्वाद :

जो शुद्धात्मं तत्त्व पांचों द्रव्यों से भली भांति जाना ।
दर्शन ज्ञान स्वरूप .आत्मा गुण अनंतधारी माना ॥

अंतिम महाअर्घ्य

छंद त्रिभंगी

मैं जिन गुण गाऊँ निज को ध्याऊं आत्म तत्त्व वैभव पाऊं।
ज्ञानामृत लाऊँ निजपुर जाऊँ शुद्ध सिद्ध पद प्रगटाऊँ॥
स्वाध्याय करूं मिथ्यात्व हरूँ उर भेद ज्ञान की निधि लाऊं ।
धर पंच महाव्रत पंच समिति त्रय गुप्ति पूर्ण संयम पाऊं॥
लूँ तत्त्वज्ञान फल से अपना बल सम्यक् दर्शन उर लाऊं।
बन सम्यक् ज्ञानी जिनमुनि ध्यानी परम पवित्र स्वपद पाऊं ॥
मैं निज को ध्याऊं निज पद पाऊं निजपुर में आनंद करूं।
भव भाव विनाशूँ ज्ञान प्रकाशूँ भव के सारे द्वंद हरूं ॥
ले परम शुद्ध चिद्रूप शक्ति अब मुक्ति मार्ग पर आ जाऊं।
त्रैलोक्य शिखर तनुवात वलय अंतिम सीमा तक मैं जाऊं॥

ताटंक

आगे हैं धर्मास्ति काय का प्रभु अभाव यह ज्ञान करूं ।
मैं लोक द्रव्य अतएव लोक के अंतिम थल विश्राम करूं॥
जीव रु पुद्गल धर्म अधर्म अरु काल द्रव्य अंतिम सीमा।
आगें तो आकाश अखंड अनंत एक विरहित सीमा॥
मै त्रिभवन पति है पंचमगति त्रिलोकाग्र का स्वामी हूँ।
सकल द्रव्य पर्यायों का युगपत अन्तर्यामी है ॥

दोहा

महाअर्घ्यं अर्पित करूँ नाश दशा विद्रूप ।
महामोक्ष का मूल है एकमात्र चिद्रूप ॥

ॐ ह्रीं तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय अंतिम महाअर्घ्यं नि. ।

है घोर महा विपरीत बुद्धि है भक्ष्य अभक्ष्य विवेक नहीं ।
परिणाम विकारी है हिंसक पापादि भाव से द्वेष नहीं ॥

महाजयमाला

छंद गीत

ज्ञान का दीप मिला ज्ञान उर शुद्ध झिला ।
मोह संताप टला राग पूरा ही गला ॥
आँखें भी तृप्त हुई ज्ञान अभिषिक्त हुई ।
कली अंतर की खिली पूर्ण आनंद मिला ॥
भाव शुभ भाग गए शुद्ध उर जाग गए ।
आत्म अनुभव भी मिला शुद्ध पद आन मिला ॥
मोह की रात गई राग की बात गई ।
सौख्य साम्राज्य मिला ज्ञान रवि कमल खिला ॥

गीतिका

भावना भवनाशिनी निज बल बिना किस काम की ।
मात्र भव वर्धक अगर है तो नहीं शिव धाम की ॥
भावना बदनाम करते हैं कुमुनि संसार में ।
क्रिया आडंबर सहित हैं लीनं हैं व्यवहार में ॥
आत्म घातक भावना से लिप्त हैं तो कुमुनि है ।
आत्म रक्षा कार्य में जो लीन हैं तो सुमुनि है ॥
सुमुनि ही शिवमार्ग को सम्पूर्ण करते पार है ।
स्वपद हित सम्पूर्ण सुख के बने वे भंडार हैं ॥
भावलिंगी सुमुनियों को धुन लगी ध्रुवधाम की ।
भावना भवनाशिनी चिद्रूप विन किस काम की ॥

ताटंक

तत्त्वज्ञान की तरंगिणी पा मेरे मन का कमल खिला ।
तत्त्व ज्ञान की विरुदावलि सुन तत्त्व ज्ञान उर मध्य झिला॥

विपदाओं से धबराकर यह तत्क्षण सत्पथ को तज देता।
निज जीवन की रक्षा के हित वर्जित भावों को भज लेता॥

तत्त्व ज्ञान की गंगा पायी नित अवगाहन करने को ।
हिंसादिक पांचों पापों का मूल सर्वथा हरने को ॥
क्रोधादिक चारों कषाय की खेती अब बह जाएगी ।
निष्कषाय भावना सदा को ही निज में रह जाएगी ॥
पंच महाव्रत धारूं पाचों समिति गुप्ति त्रय शुद्धि सहित ।
तेरह विध चारित्र पालकर पाप पुण्य से बनूं रहित ॥
धर्म ध्यान की शुभबेंला का मैं समुचित उपयोग करूं ।
आज्ञा विचय अपाय विचय संस्थान विचय सब हृदय धरूं॥
फिर में शुक्ल ध्यान धारूंगा निर्विकल्प हो जाऊंगा ।
शुक्ल ध्यान के चारों पाये ध्याकर शिवपद पाऊंगा ॥
इस क्रम से मैं सिद्ध बनूंगा त्रिभुवन शीर्ष मुकुटमणि बन।
त्रिलोकाग्र पर सदा रहूंगा बात वलय तनु में ही तन ॥
युगपत लोकालोक लखूंगा सकल द्रव्य गुण पर्यायें ।
एक समय में ही पाऊंगा राग नहीं आने पाए ॥
परम शुद्ध चिद्रूप ध्यान का फल में ही तो पाऊंगा ।
चारों गतियों के कुचक्रसे बच पंचम गति पाऊंगा ॥
मिथ्या भ्रम रजनी की रेखा सदा सदा दुर्गण धामी ।
इसका ही विषरस पीपी कर होता हूं कुमार्गगामी ॥
ज्ञानानंद स्वरूप आत्मा ध्रुव त्रैकालिक सिद्ध समंत ।
वर्त्तमान में भी यह है भगवान यही अरहंत महंत ॥
तत्त्व ज्ञान की रुचि होते ही ऐसा हो जाता है ज्ञान ।
फिर धीरे धीरे विकास कर हो जाता है यह भगवान ॥
पूर्णानंद रूप हो जाएं सभी जीव शिव सुखपाएं ।
शाश्वत समयसार निज ध्यायें कभी न कोई दुख पाएं ॥

हे नाथ सर्व कल्याण मूल कारण आगम-अभ्यास करो ।
फिर शुद्ध प्रयोजन भूत वस्तु निजका ही दृढ़ विश्वास करो॥

ज्ञेय ज्ञान ज्ञायक संबंधों को जानें ये भली प्रकार ।
ज्ञेय ज्ञेय है ज्ञान ज्ञान है ज्ञायक तो है ही अविकार ॥
तू है सिद्ध स्वयं में निज को सिद्ध रूप से थापित कर।
सिद्ध स्वपद से ही संयुत हो अन्य याचना तू मत कर॥
धर्म अर्थ अरु काम रूप भावों की ममता छोड़ अभी ।
निज स्वतत्त्व को पाने की ही शुद्ध भावना जोड़ अभी ॥
सर्वज्ञों की श्रद्धा भी शुभ भाव बंताते हैं जिनदेव ।
केवल आत्म तत्त्व श्रद्धा ही परम शुद्ध कहते जिनदेव ॥
तन बाणी मन दया दान व्यवहार आदि परिणाम सभी ।
ये पुदगल के कार्य आत्मा इनका कर्त्ता नहीं कभी ॥
निर्विकल्प विज्ञान ज्ञानघन आत्मा परद्रव्यों से भिन्न ।
दर्शन ज्ञान स्वरूप आत्मा निज स्वद्रव्य से सदा अभिन्न॥
एकमात्र चिद्रूप शुद्ध का ही आश्रय है करने योग्य ।
परभावों पर द्रव्यों का तो आश्रय करना सदा अयोग्य ॥
समता रूपी कुलदेवी की परम अनुग्रह कृपा मिले ।
साम्य भावी रूपी समरस ही निजॉ अंतर में सतत झिले॥

ॐ ह्रीं तत्त्वज्ञान तरंगिणी जिनागमाय महाजयमाला पूर्णार्घ्यं नि. ।

आशीर्वाद

वीरछंद

प्रथम श्री अरहंत परम गुरु तथा अमर गुरु गणधर आदि।
इनका ही उपदेश ग्रहण कर क्षय कर लूँ सब वाद विवाद॥
कभी न अटकूँ परभावों में राग द्वेष से रहूँ सुदूर ।
निज स्वभाव के भीतर जाऊँकर्म स्वयं होगें चकचूर॥
एक शुद्ध चिद्रूप ज्ञान मैं धारूँ बन ज्ञायक अविकार ।
इसी युक्ति से मिल जाए प्रभु निमिष मात्र में भव का पार॥

रागादिक चिदविकार को तुम मत समझो चैतन्य स्वरूप।
सर्व अवस्थाओं में जो रहता चैतन्य वही निज रूप ॥

दोहा

परम शुद्ध चिद्रूप का गगनांगन सुविशाल ।
क्षय करता है निमिष में वसु कर्मो का जाल ॥

इत्याशीर्वाद :

शान्ति पाठ

गीतिका

परम शान्ति महान की इच्छा जगी है हे प्रभो ।
मोह की मादक तंरगें अब भगी हैं हे विभो ॥
विश्व भर में शान्ति हो प्रभु नष्ट सर्व अशान्ति हो ।
सौख्य शाश्वत सभी पाएं सभी के उर क्रान्ति हो ॥
परम शान्ति महान ही कल्याण मय प्रभु प्राप्त हो ।
अहिंसा की भावना हो शान्ति उर में व्याप्त हो ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

नौ बार णमोकार मंत्र का जाप्य

क्षमापना

ताटंक

इस विधान में अगर भूल हो तो प्रभु क्षमा करें तत्क्षण ।
वत्सल निधि परमेश्वर भगवन दया करें प्रतिपल प्रतिक्षण ॥
ज्ञान भावना का आदर ही करूं सतत मैं सदा विशेष ।
निज चिद्रूप शुद्ध प्रगटाऊं इस विधान का है उद्देश ॥

पुष्पांजलि क्षिपामि

जाप्य मंत्र

ॐ ह्रीं तत्त्वनज्ञान तरंगिणी शुद्धचिद्रूपाय नमः

मैं तो जिन हूँ यह अनुभव ही शुद्ध मोक्ष पद दाता है ।
जिन हैं अन्य, अन्य मैं ही हूँ चेतन भाग्य विधाता है ॥

भजन

पाया नर भव महान मिला जिनश्रुत प्रधान ।
और चेतन को क्या चाहिए ॥
ज्ञान सच्चा मिला आज सौभाग्य से ।
और चेतन को क्या चाहिए ॥
शुद्ध समकित मिला भेदज्ञान सहित ।
और चेतन को क्या चाहिए ॥
पाया शुद्ध स्वरूपाचरण पहिली बार ।
और चेतन को क्या चाहिए ॥
आया संयम का रथ श्रेष्ठ लेने को आज ।
और चेतन को क्या चाहिए ॥
दूर अविरति हुई मोह भ्रम तम गया ।
और चेतन को क्या चाहिए ॥
मोक्ष मार्ग मिला इसको आज अपूर्व ।
और चेतन को क्या चाहिए ॥
पाया इसने यथाख्यात चारित्र श्रेष्ठ ।
और चेतन को क्या चाहिए ॥
मोह क्षीण हुआ केवल ज्ञान मिला ।
और चेतन को क्या चाहिए ॥
सिद्ध पद इसके चरणों में आया स्वयं ।
और चेतन को क्या चाहिए ॥
पाया इसने समयसार ग्रंथाधिराज ।
और चेतन को क्या चाहिए ॥
निज समय के हुए इसको दर्शन सहज ।
और चेतन को क्यां चाहिए ॥

आत्म गुणों की शुद्ध भावना से ही मोक्ष सौख्य मिलता।
रत्नत्रय का तल पाते ही केवल ज्ञान सूर्य खिलता ॥

मिली पावन कृपा कुन्द कुन्द की आज ।
और चेतन को क्या चाहिए ॥
अपना ज्ञान हुआ अपना भान हुआ ।
और चेतन को क्या चाहिए ॥

यह आत्म धर्म है मेरा ।
शुद्धात्म धर्म है मेरा ॥
परभावों से रहित सर्वथा ज्ञान भाव है मेरा ।
यह आत्म धर्म है मेरा ॥
निज आत्मा का चिन्तन कर मैं मोक्ष मार्ग पर आया ।
पाकर साम्य भाव रस मैंने जीवन सफल बनाया ॥
मिट चला जगत का फेरा ।
यह आत्म धर्म है मेरा ॥
मैं हुआ सुसज्जित गुण अनंत से निज महिमा को पाकर।
शुद्ध ज्ञान दर्शनधारी हो गया स्वयं को ध्याकर ॥
संयम है मेरा चेरा ।
यह आत्म धर्म है मेरा ॥
अब यथाख्यात ने मोह क्षीण थल मुझे प्रदान किया है ।
निज अरहंत दशा ने मुझको महा महान किया है ॥
आया आनंद घनेरा ।
यह आत्म धर्म है मेरा ॥
है आत्म धर्म ही महा मोक्ष फल सबको देने वाला ।
गुण सिद्धत्व प्रगट करता है सिद्ध बनाने वाला ॥
इस जग में यही अनेरा ।
यह आत्म धर्म है मेरा ॥

ॐ

श्री तत्त्वज्ञान तरंगिणी विधान

दिवंगता तारादेवी पवैया



की स्मृति में संस्थापित

तारादेवी पवैया ग्रंथमाला

४४ इब्राहीमपुरा भोपाल

शुद्ध ज्ञान सौष्ठव से भूषित आध्यात्मिक विधानों को प्रकाशन करने वाली अद्वितीय गरिमाशाली श्रेष्ठ संस्था

मुद्रक : अंजना प्रिंटर्स रम्भा टाकीज भोपाल फोन : 764251